BAOU
Education for All

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी

(गुजरात सरकार द्वारा स्थापित)

NAAC ACCREDITED A++ GRADE 3.55/4

बी. ए. (ऑनर्स)
हिंदी मेजर
(HNDMJ-201)
आदि और मध्यकालीन कविता

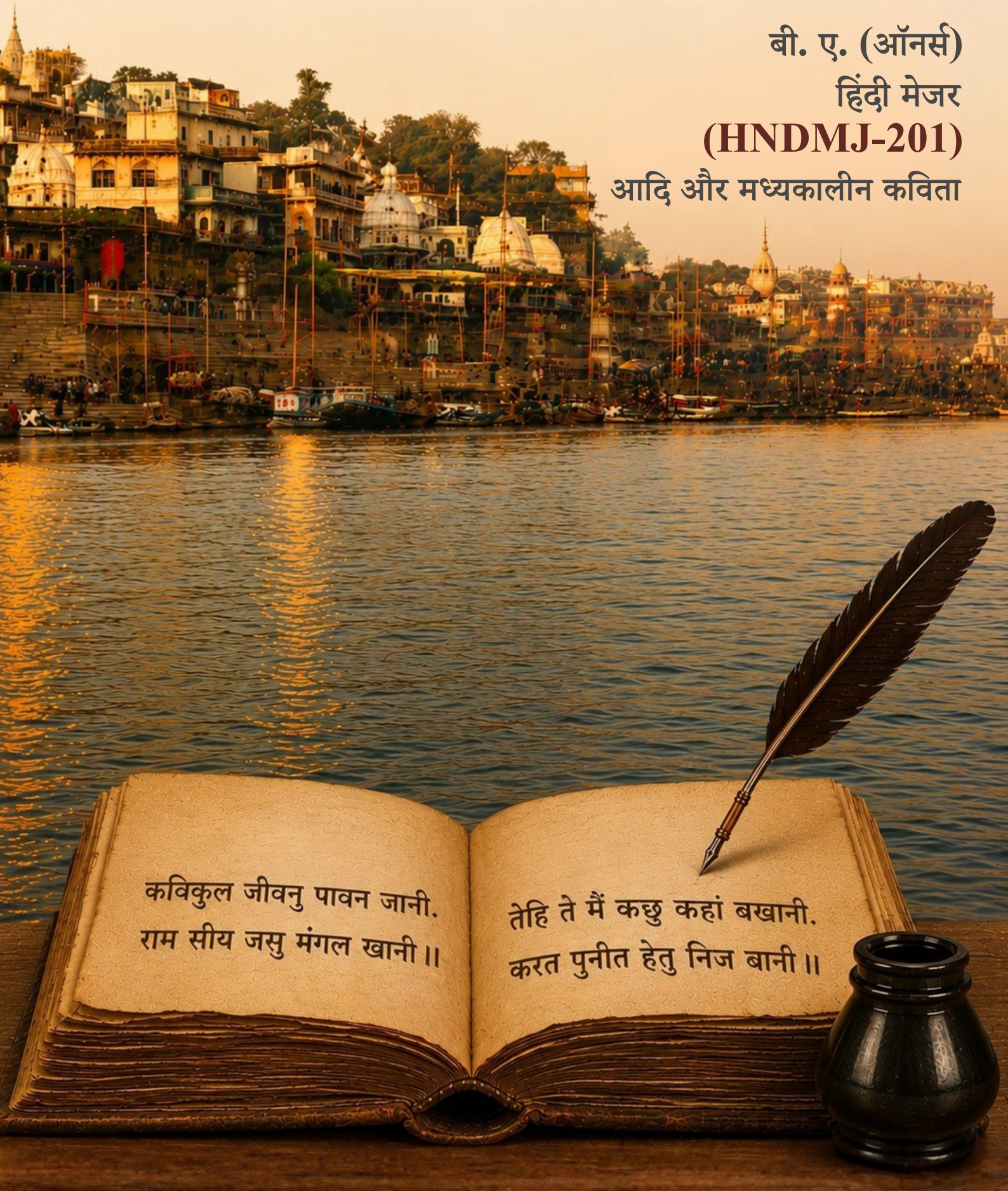

स्वाध्याय का उजास

भारत के संविधान के निर्माता भारतरत्न बाबासाहेब आंबेडकर जी की पुण्य स्मृति में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और डिस्टेंस एजुकेशन काउन्सिल की मान्यता के साथ गुजरात सरकार ने सन् 1994 ई. में अहमदाबाद में गुजरात के एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी की स्थापना की. स्थापना के क्रम में यह देश की सातवीं ओपन यूनिवर्सिटी है. गुजरात राज्य के शैक्षिक गतिविधियों को तीव्रता प्रदान करते हुए यूनिवर्सिटी आज सन् 2025 ई. में मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा (ODL) माध्यम से सर्टिफिकेट, डिप्लोमा, स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर के 79, यू.जी.सी. मानदंडों के तहत पीएच.डी. स्तर के 16, ऑनलाइन माध्यम से 10 और स्वयं (SWAYAM) माध्यम से 07 पाठ्यक्रमों के लिए प्रवेश आमंत्रित कर रही है.

बाबासाहेब आंबेडकर जी की जन्म शताब्दी के अवसर पर गुजरात सरकार ने यूनिवर्सिटी को एक सुगम शांत स्थान उपलब्ध कराया और आधुनिक सुविधाओं से लैस इमारतों के साथ यूनिवर्सिटी का अपना परिसर – 'ज्योतिर्मय परिसर' विकसित करने में सहायता दी. यूनिवर्सिटी प्रबंध मंडल के प्रत्येक सदस्य ने संपूर्ण समर्पण और लगन के साथ इस यूनिवर्सिटी को उस मुकाम पर पहुँचाने में अपना पूरा योगदान दिया है और आगे भी देते रहेंगे.

कहते हैं, शिक्षा वह निवेश है, जो बिना व्यवधान के निरंतर लाभ प्रदान करता है और लोगों के जीवन में गुणवत्ता का आधान करता है, बढ़ाता है. मै स्वामी विवेकानंद जी के शिक्षा दर्शन का मूल यहाँ उल्लेखित करना चाहूँगी:

"हम ऐसी शिक्षा चाहते हैं, जो चरित्र का निर्माण करे, बौद्धिक शक्ति का वर्धन करे, मेधा का विस्तार करे और जिसके माध्यम से प्राप्तकर्ता अपने पैरों पर खड़ा हो सके."

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी अपने विद्यार्थियों को उनके द्वार पर ऐसी ही गुणवत्तापूर्ण कौशल और वास्तविक जीवन संकेंद्रित शिक्षा देने के प्रति कटिबद्ध है. गुजरात राज्य के बृहत्तर जन समुदाय को उच्च शिक्षा उपलब्ध कराने की दिशा में यूनिवर्सिटी सतत कार्यलीन है, जिससे वे आने वाली नित नयी चुनौतियों का सफलतापूर्वक सामना कर सके और अपनी पूरी क्षमता के साथ समाज और राष्ट्र की उन्नति के लिए सन्नद्ध हो सके.

अपने मुख्य आदर्श वाक्य **"स्वाध्यायः परमं तपः"** का अनुसरण करते हुए यूनिवर्सिटी विद्यार्थियों को समृद्ध पाठ्यचर्या उपलब्ध कराने में विश्वास रखती है. इसी आवश्यकता की पूर्ति के क्रम में यूनिवर्सिटी यह नवीन, अधिक सुस्पष्ट पाठ्यसामग्री लेकर उपस्थित हुई है, जिससे विद्यार्थियों की उनके विषय में बेहतर समझ बन सके. इसके माध्यम से यूनिवर्सिटी ने उन विद्यार्थियों के लिए संभावनाओं का विस्तार किया है, जिनके लिए नियमित पारंपरिक शिक्षा पद्धति के द्वार बंद हो चुके हैं. सभी विषयों में विद्यार्थियों की आवश्यकता के अनुरूप स्वाध्याय सामग्री निर्माण के लिए पाठ्यक्रम सलाहकार समिति के सदस्यों से आरंभ करते हुए, स्वाध्याय सामग्री लेखकों, विषय और भाषा परामर्शकों का एक समर्पित दल गठित किया गया है.

आज की डिजिटल दुनिया की गति से एकरूपता रखते हुए यूनिवर्सिटी ने स्वयं का एक डिजिटल मंच – ओमकार-ई (OMKAR-E) विकसित किया है, जो ICT (इनफार्मेशन एंड कम्युनिकेशन टेक्नोलॉजी) के माध्यम से शिक्षा प्रदान करता है. जल्द ही योग, प्राकृतिक चिकित्सा और भारतीय शास्त्रीय नृत्य जैसे विषयों पर ऑनलाइन सर्टिफिकेट और डिप्लोमा पाठ्यक्रम भी यूनिवर्सिटी के माध्यम से उपलब्ध होंगे, जो वैकल्पिक विषय के रूप में चयनित किये जा सकेंगे.

अपने सभी प्रयासों के साथ डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी ज्ञान और शिक्षा का प्रमुख केंद्र बनने की प्रक्रिया में है और हम आपको इस पवित्र यज्ञ में सम्मिलित होकर डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी के समरस समाज निर्माण के स्वप्न को साकार करने के लिए आमंत्रित करते हैं.

प्रो. (डॉ.) अमी उपाध्याय
कुलपति
डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद

बी.ए. (ऑनर्स)
HNDMJ-201 : आदि और मध्यकालीन कविता

प्रधान संपादक :

प्रो. (डॉ.) योगेंद्र पारेख — निदेशक, स्कूल ऑफ़ ह्यूमैनिटीज़ एंड सोशल साइंसेज़, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद.

संपादक :

डॉ. अर्चना मिश्रा — असिस्टेंट प्रोफ़ेसर हिंदी, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद.

सह संपादक :

डॉ. कृति कुमारी पांडिया — असिस्टेंट प्रोफ़ेसर हिंदी, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद.

विषय समिति :

प्रो. अलोककुमार गुप्त — (सेवा निवृत) प्रोफ़ेसर, हिंदी भाषा एवं साहित्य अध्ययन केंद्र, भाषा, साहित्य एवं सांस्कृतिक अध्ययन संकाय, गुजरात केंद्रीय विश्वविद्यालय, गाँधीनगर.

डॉ. ओमप्रकाश शुक्ल — एसोसिएट प्रोफ़ेसर हिंदी, गुजरात कॉलेज ऑफ़ आर्ट्स एंड कॉमर्स, अहमदाबाद.

डॉ. अर्चना मिश्रा — असिस्टेंट प्रोफ़ेसर हिंदी, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद.

इकाई लेखक :

डॉ. सुनील कुमार 'मानस' — विभागाध्यक्ष हिंदी, सरकारी विनयन कॉलेज, बेचराजी, महेसाणा.

डॉ. सुमन शर्मा — असिस्टेंट प्रोफ़ेसर हिंदी, श्रीमती वी. पी. कापडिया महिला आर्ट्स कॉलेज, भावनगर.

डॉ. शुभम सिंह — सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, सरकारी कला एवं वाणिज्य महालिद्यालय, जाफराबाद, अमरेली.

डॉ. अर्चना मिश्रा — असिस्टेंट प्रोफ़ेसर हिंदी, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद.

डॉ. आशीष कुमार सिंह — असिस्टेंट प्रोफ़ेसर हिंदी, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद.

डॉ. महारुद्रप्रतापसिंह चौहान — असिस्टेंट प्रोफ़ेसर हिंदी, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद.

डॉ. रश्मि सुरेश सिंह राजपूत — असिस्टेंट प्रोफ़ेसर हिंदी, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद.

डॉ. दक्षा मेरैया — असिस्टेंट प्रोफ़ेसर हिंदी, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद.

परामर्शक :

प्रो. अलोक कुमार गुप्त — (सेवा निवृत) प्रोफ़ेसर, हिंदी भाषा एवं साहित्य अध्ययन केंद्र, भाषा, साहित्य एवं सांस्कृतिक अध्ययन संकाय, गुजरात केंद्रीय विश्वविद्यालय, गाँधीनगर.

प्रो. दयाशंकर त्रिपाठी — प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष (सेवानिवृत), हिंदी विभाग, सरदार पटेल यूनिवर्सिटी, वल्लभ विद्यानगर, आणंद.

डॉ. ओमप्रकाश शुक्ल — एसोसिएट प्रोफ़ेसर हिंदी, गुजरात कॉलेज ऑफ़ आर्ट्स एंड कॉमर्स, अहमदाबाद.

आवरण सज्जा :

डॉ. कृति कुमारी पांडिया — असिस्टेंट प्रोफ़ेसर हिंदी, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद.

प्रकाशक : कुलसचिव, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद.

मुद्रक : साहित्य मुद्रणालय, अहमदाबाद

ISBN : 978-93-5598-489-0

मई, 2026 डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित : यह स्वाध्याय सामग्री डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी द्वारा मुक्त दूरस्थ शिक्षा के उद्देश्यों को केंद्र में रखते हुए विद्यार्थियों के स्वाध्याय के लिए तैयार की गयी है, जिसका सर्वाधिकार यूनिवर्सिटी के पास सुरक्षित है. इस स्वाध्याय सामग्री का पूर्ण या आंशिक रूप से किसी भी प्रकार डिजिटली या इलेक्ट्रॉनिकली पुनरुत्पादन डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी की लिखित अनुमति के बिना अवैध माना जायेगा.

BAOU
Education for all

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी

(गुजरात सरकार द्वारा स्थापित)

बी.ए. (ऑनर्स)

BAHONSHND

हिंदी मेजर

HNDMJ-201

आदि और मध्यकालीन कविता

इकाई-1	हिंदी काव्य की पृष्ठभूमि	05-12
इकाई-2	हिंदी काव्य का परिचयात्मक इतिहास (मध्यकाल तक)	13-26
इकाई-3	हिंदी काव्य का आदिकाल : युग परिचय एवं प्रवृत्तियाँ	27-36
इकाई-4	आदिकालीन कविता : पृथ्वीराज रासो	37-45
इकाई-5	हंदी काव्य का भक्तिकाल : युग परिचय एवं प्रवृत्तियाँ	46-58
इकाई-6	निर्गुण ज्ञानमार्गी भक्तिकालीन कविता : कबीर के दोहे	59-64
इकाई-7	निर्गुण प्रेममार्गी भक्तिकालीन कविता : 'पदमावत' - जायसी	65-84
इकाई-8	सगुण कृष्णभक्ति काव्य : 'भ्रमरगीतसार' – सूरदास	85-103
इकाई-9	सगुण रामभक्ति काव्य : 'श्रीरामचरितमानस' – तुसलीदास	104-111
इकाई-10	मीरां के पद	112-120
इकाई-11	हिंदी काव्य का रीतिकाल : युग परिचय एवं प्रवृत्तियाँ	121-128
इकाई-12	रीतिबद्ध कवि केशव का काव्य	129-144
इकाई-13	रीतिसिद्ध कवि बिहारी की सतसई	145-154
इकाई-14	रीतिमुक्त कवि धनानंद के कवित	155-171

(पाठ्यक्रम आरंभ करने से पहले विद्यार्थी कृपया इसे अवश्य पूरा पढ़ें)

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी के स्कूल ऑफ ह्यूमैनिटीज़ एंड सोशल साइंसेज़ में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 द्वारा निर्देशित चार वर्षीय बी.ए. (ऑनर्स) अध्ययन कार्यक्रम के अंतर्गत यह मेजर कोर्स **'आदि और मध्यकालीन कविता' (HNDMJ-201)** प्रस्तुत किया जा रहा है.

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 (NEP-2020) का प्रमुख उद्देश्य विद्यार्थियों को भारतीय ज्ञान-परंपरा, सांस्कृतिक विरासत, साहित्यिक चेतना तथा समकालीन आवश्यकताओं से जोड़ते हुए बहुआयामी शिक्षा प्रदान करना है. इसी दृष्टि से हिंदी साहित्य के इतिहास और विकासक्रम को समझने के लिए आदि और मध्यकालीन काव्य का अध्ययन अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना गया है. हिंदी साहित्य की आधारभूत काव्यधाराओं, प्रमुख प्रवृत्तियों तथा प्रतिनिधि कवियों और कृतियों अध्ययन के माध्यम से यह पाठ्यक्रम विद्यार्थियों को हिंदी साहित्य की समृद्ध परंपरा से परिचित कराता है.

प्रस्तुत पाठ्यक्रम में हिंदी काव्य की पृष्ठभूमि तथा मध्यकाल तक के हिंदी काव्य के विकासक्रम का परिचय दिया गया है. इसके अंतर्गत आदिकाल की साहित्यिक प्रवृत्तियों तथा पृथ्वीराज रासो जैसे प्रतिनिधि ग्रंथ का अध्ययन सम्मिलित है. साथ ही भक्तिकाल की निर्गुण एवं सगुण दोनों धाराओं का विस्तृत अध्ययन कबीर, जायसी, सूरदास, तुलसीदास और मीराबाई जैसे महान कवियों की प्रतिनिधि रचनाओं के माध्यम से कराया गया है. इसके अतिरिक्त रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियों तथा केशवदास, बिहारी और धनानंद जैसे महत्त्वपूर्ण कवियों के काव्य का अध्ययन भी इस पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग है.

इस पाठ्यक्रम के माध्यम से विद्यार्थी हिंदी साहित्य के विकासक्रम, विभिन्न काव्यधाराओं, साहित्यिक प्रवृत्तियों तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे. वे मध्यकालीन भारतीय समाज, धर्म, दर्शन, लोकजीवन तथा मानवीय मूल्यों के साहित्यिक स्वरूप का अध्ययन करेंगे. साथ ही, प्रमुख कवियों की भाषा, शैली, काव्य-दृष्टि और साहित्यिक योगदान का विश्लेषण करने की क्षमता भी विकसित करेंगे.

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-२०२० की भावना के अनुरूप यह पाठ्यक्रम –

- विद्यार्थियों को हिंदी साहित्य की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परंपरा से परिचित कराता है.
- भारतीय ज्ञान-परंपरा, भक्ति आंदोलन तता लोकचेतना की समझ विकसित करता है.
- साहित्यिक विश्लेषण, आलोचनात्मक चिंतन और व्याख्यात्मक क्षमता को सुदृढ़ करता है.
- भाषा-संवेदनशीलता, सौंदर्यबध तथा मानवीय मूल्यों के प्रति जागरुकता उत्पन्न करता है.
- विद्यार्थियों को उच्च अध्ययन, शोध तथा साहित्यिक-सांसकृतिक क्षेत्रों में आगे बढ़ने के लिए आवश्यक आधार प्रदान करता है.

इस प्रकार, 'आदि और मध्यकालीन कविता' पाठ्यक्रम विद्यार्थियों को हिंदी साहित्य की आरंभिक और मध्यकालीन काव्यधाराओं का व्यवस्थित ज्ञान प्रदान करता है. यह पाठ्यक्रम न केवल साहित्यिक विरासत की समझ विकसित करता है, बल्कि भारतीय संस्कृति, समाज और मानवीय चिंतन की गहरी पहचान भी कराता है.

इस पाठ्यक्रम में कुल 14 इकाइयाँ सम्मिलित हैं. प्रत्येक इकाई का लेखन विषय के विशेषज्ञ प्राध्यापकों द्वारा किया गया है. ये इकाइयाँ वैसी ही है, जैसे पारंपरिक विश्वविद्यालयों में होने वाले व्याख्यान. कुछ इकाइयाँ आपको पहली बार पढ़ने में ही सरल और सहज प्रतीत होंगी, जबकि कुछ विषयों को समझने के लिए बार-बार अध्ययन की आवश्यकता हो सकती है. यदि अध्ययन के दौरान आपके मन में कोई प्रश्न उत्पन्न हों, तो उनके उत्तर खोजने का प्रयास अवश्य कीजिए. यही खोज आपकी वास्तविक अध्ययन-यात्रा को सार्थक बनाएगी. जिन प्रश्नों के उत्तर आप स्वयं खोजेंगे, वे आपके वे ज्ञान को अधिक स्थायी और समृद्ध बनाएँगे.

आपकी इस अध्ययन-यात्रा में विश्वविद्यालय सदैव आपके साथ है. अध्ययन संबंधी किसी भी जिज्ञासा अथवा प्रश्न के लिए आप नीचे दिए गए ईमेल पते पर संपर्क कर सकते हैं.

हिंदी अध्ययन के लिए संपर्क ईमेल आई.डी. : hindi@baou.edu.in

आपके सफल एवं आनंददायक अध्ययन हेतु हार्दिक शुभकामनाएँ!

इकाई 1 हिंदी काव्य की पृष्ठभूमि

रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 अपभ्रंश का भाषा के रूप में विकास

1.4 अपभ्रंश काव्यसाहित्य का परिचय

1.5 अपभ्रंश और हिंदी का संबंध

1.6 सारबिंदु

1.7 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

1.8 संदर्भ सूची

1.1 उद्देश्य

विद्यार्थी मित्रो! आप बी.ए. हिंदी मुख्य / गौण अभ्यासक्रम के दूसरे प्रश्नपत्र 'हिंदी कविताएँ' के पहले खंड 'हिंदी काव्य परिचय' की पहली इकाई पढ़ने जा रहे हैं. यह इकाई आपको हिंदी काव्य, या कहें कि साहित्य के आरंभ, उसके स्रोत से परिचित कराएगी. इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- साहित्यिक भाषा के रूप में अपभ्रंश का विकास जान पाएँगे.
- अपभ्रंश काव्य के विविध रूपों - प्रबंध काव्य, मुक्तक काव्य आदि से, इन विद्याओं में लिखने वाले प्रमुख कवियों से और उनकी रचनाओं से परिचित हो सकेंगे.
- अपभ्रंश और हिंदी के बीच के संबंध को समझ पाएंगे.

1.2 प्रस्तावना

विद्यार्थी मित्रो ! क्या आप जानते हैं कि भाषा स्वत: विकासमान और सतत प्रवाहमान होती है. यानी कि ऐसा नहीं कि किसी भाषा को कुछ विद्वान बैठ कर रचते हैं और फिर उसमें साहित्य का निर्माण कर उसका प्रचार करते हैं फिर कुछ सदियों बाद कोई दूसरी भाषा रची जाती है, फिर उसका प्रचार होता है. - ना ! ऐसा बिलकुल नहीं होता. भाषाएँ भी वैसे ही विकसित हुई हैं, जैसे मनुष्य खुद. मानव के विकासक्रम में उसके मुख से कुछ ध्वनियाँ निकलीं, जो आदिमानव के आपस में बातचीत करने के संकेत के रूप में काम आईं. बार बार प्रयोग करने के क्रम में उनमें सुधार और परिवर्तन आते गये और भाषाएँ बनती चली गयीं.

तो, जब हम हिंदी भाषा, हिंदी साहित्य, हिंदी काव्य की बात करने बैठते हैं, तो सबसे पहले प्रश्न यह उठता है कि हिंदी भाषा की शुरुआत कहाँ से मानी जाय ? हिंदी की पहली साहित्यिक रचना कौन सी है ? हिंदी का पहला काव्य कब रचा गया ? ये प्रश्न भले ही छोटे दिख रहे हों, पर लगभग सौ - डेढ़ सौ साल से विद्वान इन प्रश्नों पर बौद्धिक व्यायाम करते आ रहे हैं और सही उत्तर, एक ऐसा उत्तर, जिससे सभी सहमत हों अभी तक सामने नहीं आया है.

हिंदी को जिस रूप में आज हम जानते हैं, जिस हिंदी में यह स्वाध्याय सामग्री लिखी जा रही है, उसका प्रादुर्भाव तो उन्नीसवीं शती के मध्य में कभी हुआ है, जिसे हिंदी साहित्य का आधुनिक काल कहा जाता है. किंतु आप जानते हैं कि हिंदी साहित्य में आधुनिक काल

के पहले रीतिकाल, भक्तिकाल और आदिकाल भी है. और इन कालों के काव्य नमूनों में हिंदी के बदलते स्वरूपों को हम देख सकते हैं. इस सतत प्रवाहमान काव्यधारा का स्रोत और पीछे जाता है- अपभ्रंश काल तक कुछ विद्धान अपभ्रंश को हिंदी की पूर्ववर्ती भाषा मानते हैं, तो कुछ उसे हिंदी का पूर्वरुप. हिंदी के सर्वमान्य मूर्धन्य आलोचकों- चिंतको में से एक डॉ. नामवर सिंह की शोधात्मक पुस्तक है - 'हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग'. स्पष्ट है कि वे अपभ्रंश को हिंदी से अलग भाषा मानते हैं. हिंदी के शीर्षस्थ साहित्यकारों में से एक चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' जी अपभ्रंश पर लिखी गयी अपनी पुस्तक का नाम 'पुरानी हिंदी' रखते हैं, यानी वे अपभ्रंश को हिंदी का पूर्वरुप मानते हैं. इन दोनों ही मतों के पास अपने अपने तर्क हो सकते हैं, पर एक बात तो तय है कि हिंदी भाषा, साहित्य, काव्य के विकास में अपभ्रंश साहित्य की भूमिका को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता. इसलिए हिंदी काव्य की पृष्ठभूमि के रूप में हम इस इकाई में अपभ्रंश काव्य का अध्ययन करेंगे.

1.3 अपभ्रंश का भाषा के रूप में विकास :

अपभ्रंश भाषा आठवीं शताब्दी से लेकर चौदहवीं शताब्दी तक साहित्य में प्रचलित रही. क्षेत्रीय विशेषताओं के कारण इसके कई रूप जैसे पश्चिमी अपभ्रंश, पूर्वी अपभ्रंश सामने आए, भारत के विभिन्न क्षेत्रों में इसका विस्तार हुआ. जब से प्राकृत बोलचाल की भाषा न रह गयी तभी से अपभ्रंश साहित्य का आविर्भाव समझना चाहिए, पहले जैसे 'गाथा' या 'गाहा' कहने से प्राकृत का बोध होता था वैसे ही पीछे 'दोहा' या 'दूहा' कहने से अपभ्रंश या लोकप्रचलित काव्यभाषा का बोध होने लगा. इसी पुरानी प्रचलित काव्यभाषा में नीति, श्रृंगार, वीर आदि की कविताएँ तो चली ही आती थीं, जैन और बौद्ध धर्माचार्य अपने मतों की रक्षा और प्रचार के लिए भी इसमें उपदेश आदि की रचना करते थे. प्राकृत से बिगड़कर जो रूप बोलचाल की भाषा ने ग्रहण किया वह भी आगे चलकर कुछ पुराना पड़ गया और काव्य रचना के लिए रूढ़ हो गया. अपभ्रंश नाम उसी समय से चला, जब तक भाषा बोलचाल में थी तब तक वह भाषा या देशभाषा ही कहलाती रही, जब वह भी साहित्य की भाषा हो गयी तब उसके लिए अपभ्रंश शब्द का व्यवहार होने लगा.

अपभ्रंश या प्राकृताभास हिन्दी में रचना होने का पता हमें विक्रम की सातवीं शताब्दी से मिलता है. उस काल की रचना के नमूने बौद्धों की वज्रयान शाखा के सिद्धों की कृतियों के बीच मिलते हैं.

संवत् 990 में देवसेन नामक एक जैन ग्रंथकार हुए हैं. उन्होंने भी 'श्रावकाचार' नाम की एक पुस्तक दोहों में बनायी थी, जिसकी भाषा अपभ्रंश का अधिक प्रचलित रूप लिये हुए है.

वज्रयान शाखा में जो योगी 'सिद्ध' के नाम से प्रसिद्ध हुए, वे अपने मत का संस्कार जनता पर भी डालना चाहते थे. इससे वे संस्कृत रचनाओं के अतिरिक्त अपनी बानी अपभ्रंश मिश्रित देशभाषा में भी बराबर सुनाते रहे.

आठवीं शताब्दी से लेकर चौदहवीं शताब्दी तक अपभ्रंश भाषा साहित्य जगत पर छाई रही. सुदूर दक्षिण को छोड़कर समस्त भारत में इस काल में अपभ्रंश काव्य की रचना हुई. जिन प्रमुख कवियों ने इस भाषा को साहित्यिक गरिमा प्रदान की उनमें स्वयंभू और पुष्पदंत प्रमुख हैं. स्वयंभू को अपभ्रंश का पहला कवि माना जाता है. स्वयंभू की 'रामायण' और पुष्पदंत का 'महापुराण' भारतीय साहित्य के अनुपम ग्रंथ हैं. अन्य कवियों में जोइन्दु, रामसिंह, हेमचन्द्र, सोमप्रभ, जिनप्रभ, जिनदत्त, राजशेखर, शालिभद्र, अब्दुल रहमान (अद्दहमाण) सरह और कण्ह आदि उल्लेखनीय है. इन कवियों ने चरित काव्य, गीत काव्य, विरह काव्य, रहस्यप्रधान काव्य तथा कथा काव्य लिखे हैं.

आज उपलब्ध अपभ्रंश साहित्य का बहुत बड़ा भाग जैन कवियों द्वारा रचित धार्मिक साहित्य के रूप में मिलता है. जैन कवियों ने पौराणिक कथाप्रबंध, रहस्य और नीतियों पर रचनाएँ की हैं. जैन अपभ्रंश साहित्य की भाँति ही बौद्धों की अपभ्रंश रचनाएँ भी धार्मिक दृष्टिकोण से लिखी गई हैं. जैन-बौद्ध ग्रंथों के अतिरिक्त अपभ्रंश साहित्य की एक लौकिक धारा भी है जिसमें श्रृंगारप्रधान प्रबंध एवं मुक्तक दोनों प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं.

आइये ! आगे बढ़ने से पहले जाँचें कि हमने क्या सिखा.

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक वाक्य में दें:

(1) साहित्यिक भाषा के रूप में अपभ्रंश कब से कब तक प्रचलित रही ?

(2) अपभ्रंश काव्य के प्राचीनतम नमूने किनकी कृतियों में मिलते हैं ?

(3) 'श्रावकाचार' किसका ग्रंथ है ?

(4) अपभ्रंश के दो सर्वप्रमुख कवियों के नाम बताइए.

(5) बौद्धों की वज्रयान शाखा के योगी किस नाम से प्रसिद्ध हुए ?

1.4 अपभ्रंश काव्यसाहित्य का परिचय :

प्रबंधात्मक काव्य :

स्वयंभू का काव्य : इस धारा के प्राचीन और श्रेष्ठ कवि स्वयंभू है. स्वयंभू ने राम और कृष्ण से सम्बन्धित चरितकाव्य परम्परा का विस्तार और विकास किया है. राम को लेकर 'पउमचरिउ' (पद्मचरितम्) तथा कृष्ण को लेकर 'रिट्ठणेमिचरिउ' (अरिष्टनेमिचरित) की रचना की है. स्वयंभू (अनुमानतः 8वीं शताब्दी) अपभ्रंश के पहले प्रमुख कवि है. स्वयंभू ने चार ग्रंथ लिखे -

(1) पउमचरिउ (पद्मचरित अथवा रामचरित) (2) रिट्ठणेमिचरिउ (अरिष्टनेमिचरित या हरिवंश पुराण) (3) पचमिचरिउ (नागकुमारचरित) और (4) स्वयंभू छंद, पर स्वयंभू की प्रसिद्धि का आधार उनका रामकाव्य अर्थात् पउमचरिउ है.

पउमचरिउ पाँच कांड और तिरासी संधियों (सर्गो) वाला एक विशाल महाकाव्य है. रामकाव्य लिखने से पूर्व स्वयंभू अपना उद्देश्य स्पष्ट कर देते हैं कि मैं जनता की भाषा में जनता के लिए काव्य का निर्माण कर रहा हूँ. राम का चरित्रांकन करते समय न तो उन्होंने आदर्श का दामन पकड़ा और न ही उसमें किसी प्रकार की अलौकिकता का समावेश किया है. उन्होंने अपने मुख्य चरित्र राम को एक साधारण मनुष्य के रूप में प्रस्तुत किया है, जो आपदाओं के खिलाफ लड़ता है और जिसमें सहज मानवीय दुर्बलताएँ भी हैं.

'रिट्ठणेमिचरिउ' या हरिवंशपुराण में स्वयंभू ने जैन परम्परा के बाइसवें अवतार तीर्थंकर अरिष्टनेमि, कृष्ण और कौरव-पांडवों की कथा का वर्णन किया है. कथा कहने की शैली तथा कवित्व शक्ति 'पउमचरिउ' से मिलती है.

अपनी कृतियों में स्वयंभू संगीत, कला तथा काव्यशास्त्र के गहरे अध्ययन और चिंतन का संकेत देते हैं.

पुष्पदंत :

पुष्पदंत अपभ्रंश के दूसरे बड़े कवि हैं. पुष्पदंत की प्रसिद्धि का आधार उनकी प्रमुख रचना 'महापुराण' है. इसमें उन्होंने रामकथा, कृष्णकथा और जैन तीर्थंकरों की जीवन गाथाओं को शामिल किया है. कट्टर जैन धर्मावलंबी होने के कारण उन्होंने स्वभावतः राम और कृष्ण कथा की अपेक्षा ऋषभदेव को अधिक स्थान और महत्त्व दिया है. पुष्पदंत का काव्य कौशल रामकाव्य में प्रकट नहीं हो सका है. पर कृष्ण की बाललीला का वर्णन उन्होंने बड़ी कुशलता से किया है.

स्वयंभू और पुष्पदंत अपभ्रंश के प्रमुख कवि हैं. इन्होंने अपभ्रंश की भाषा को साहित्यिक गरिमा प्रदान की. डॉ. नामवर सिंह के शब्दों में 'इस तरह स्वयंभू और पुष्पदंत दोनों ही कवि अपभ्रंश-साहित्य के सिरमौर हैं. यदि स्वयंभू में भावों का सहज सौन्दर्य है तो पुष्पदंत में बंकिम भंगिमा है, स्वयंभू की भाषा में सहज प्रवाह है तो पुष्पदंत की भाषा में अर्थगौरव की अलंकृत झाँकी, एक सादगी का अवतार है तो दूसरा अलंकरण का उदाहरण.

चरित काव्य :

जैन कवियों ने पौराणिक पात्रों और लोकप्रिय व्यक्तियों को केन्द्र में रखकर अनेक काव्य लिखे हैं. इसमें हरिभद्र सूरि (1159 ई.) का 'नेमिनाथचरिउ', विनयचन्द्र सूरि (1200 ई.) का 'नेमिनाथचउपड', पुष्पदंत का 'णयकुमारचरिठ' और 'जसहरचरिउ' प्रमुख हैं. इसके अतिरिक्त अपभ्रंश में ऐसे चरित काव्य भी लिखे गये, जिसका मुख्य पात्र या तो कवि की कल्पना की उपज होता था या फिर चरित्र लोक कथाओं से लिया गया होता था. इस प्रकार के काव्य को 'कथाकाव्य' कहने का भी प्रचलन था. इस दृष्टि से धनपाल (10 वीं शताब्दी ई.) रचित 'भविसयत्तकहा' उल्लेखनीय है.

मुक्तक काव्य :

मुक्तक काव्य-धारा में दो तरह की भाव-धाराएँ देखने को मिलती हैं (1) देह में बसने वाले देव का ध्यान करके लिखी गईं रचनाएँ. (2) जैन गृहस्थों (श्रावकों) को संबोधित करके लिखी गई रचनाएँ; जिनमें तीर्थ, व्रत, उपवास तथा अन्य कर्मों का उपदेश है. इन रचनाओं में कवित्व का अभाव है.

जैन कवियों का रहस्यवादी काव्य :

जैन कवियों ने प्रबंधकाव्य तो लिखे ही साथ ही साथ उन्होंने दोहों के माध्यम से मुक्तक काव्य की रचना भी की. इस प्रकार के काव्य में रहस्यवादी साधना का स्वर सुनाई पड़ता है. इन्होंने अपनी कविता के माध्यम से जैन और ब्राह्मण धर्म की रुढ़ियों और बाह्याड़म्बरों का विरोध किया है. भाषा, भाव और शैली की द्दष्टि से ये दोहे निर्गुण काव्य के अन्तर्गत आते हैं.

अपभ्रंश में निर्गुण काव्य लिखने वाले कवियों में जोइन्दु (10 वीं शताब्दी ईस्वी, परमात्म प्रकाश और योगसार) और रामसिंह (1100 ई. के आसपास, पाहुडदोहा) प्रमुख हैं.

'पाहुडदोहा', 'परमात्म प्रकाश' और 'योगसार' से श्रेष्ठ रचना है. इसमें लोकजीवन की घटनाओ के माध्यम से तत्त्वज्ञान की बात आसानी से रखी गयी है.

बौद्ध सिद्ध काव्य :

जैन कवियों के समानान्तर पूर्वी प्रदेशों में सिद्ध कवि भी साहित्यिक अपभ्रंश में कविता लिख रहे थे. यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि मगध में रहने के कारण इनकी भाषा में पूर्वी प्रयोग देखने को मिलता है. इसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल देशभाषा मिश्रित अपभ्रंश, अर्थात् पुरानी हिन्दी की काव्यभाषा मानते हैं.

सिद्धों की संख्या 84 थी. पर इनमें सरहपा अथवा 'सरोरुह वज्र' (8 वीं शताब्दी ई.) और कण्हपा या कृष्णपाद आचार्य (10 वीं शताब्दी ई.) उल्लेखनीय हैं. सिद्ध साहित्य में सरहपा रचित 32 ग्रंथों का उल्लेख है जिनमें दोहाकोश सबसे प्रसिद्ध है. इनके अलावा शबरपा, लुइपा आदि अन्य 14 सिद्धों की भी रचनाएँ मिलती हैं

इन सिद्ध कवियों का जीवन के प्रति दृष्टिकोण सकारात्मक था. जैन कवियों के समान इन सिद्ध कवियों ने बाह्य आड़म्बरों का विरोध किया और अन्तस्साधना पर बल दिया. जाति-

पाँति का खंडन, झूठे शास्त्र ज्ञान की निन्दा, सद्‌गुरु की महिमा का बखान इनके काव्य की विशेष प्रवृत्ति रही है. सिद्धों की भाषा बिहार के जन समुदायों में प्रचलित अर्धमागधी अपभ्रंश के निकट की भाषा है. इसमें आधुनिक भाषा के विकास के चिह्न पाये जाते हैं. सिद्धों की भाषा को विद्धानों ने 'संधाभाषा' कहा है.

नाथ साहित्य :

नाथ साहित्य आध्यात्मप्रधान उपदेशमूलक साहित्य है. इनमें शांत रस का परिपाक पाया जाता है और बाह्याचारों का खंडन है. नाथ साहित्य के प्रमुख सर्जक गोरखनाथ हैं. गोरखनाथ की रचनाओं में गुरु महिमा, इंद्रियनिग्रह, प्राणसाधना, वैराग्य, कुण्डलिनी शक्ति का जागरण, शून्य समाधि आदि का वर्णन है. इनकी रचनाओं में अनुभूति का स्वर प्रधान है. डॉ. रामकुमार वर्मा का अभिमत है कि "संधिकाल का आध्यात्मिक साहित्य भक्तिकालीन साहित्य की जड़ है." नाथ पंथ के जोगियों ने नागर अपभ्रंश या ब्रज का ढाँचा लिया. इसमें खड़ी बोली और राजस्थानी मिश्रित भाषा की भी झलक मिलती है.

वीर और श्रृंगार काव्य :

हेमचंद प्राकृत-व्याकरण के दोहे:

हेमचंद्र ने 10 वीं शताब्दी में 'सिद्धहेमचंद्रशब्दानुशासन' नामक एक व्याकरण ग्रंथ लिखा. इसमें उन्होंने संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तीनों का समावेश किया. किंतु विशेष बात यह है कि अपभ्रंश का उदाहरण देते समय उन्होंने पूरा का पूरा दोहा उदधृत किया है. उन्होंने अपभ्रंश के जिन दोहों को उद्‌धृत किया है उनके रचयिताओं के बारे में ठीक से कुछ मालूम नहीं हो सका है. हेमचंद्र के व्याकरण में जो अपभ्रंश के दोहे संकलित है, उनमें अपभ्रंश के श्रृंगार और वीर काव्य का परिचय मिलता है.

संदेशरासक

संदेशरासक संस्कृत काव्य मेघदूत की परंपरा पर आधारित एक संदेश काव्य है जिसके रचयिता अब्दुर्रहमान या अद्दहमाण (12वीं शताब्दी ईसवी) हैं. इसमें बीच-बीच में प्राकृत गाथाएँ भी हैं. इसमें विजय नगर की विरहणी नायिका एक पथिक के माध्यम से पति को संदेश भेजती है. इसमें दो सौ तेईस छंद है. इसका प्रत्येक छंद अपने आप में स्वतंत्र है. कवि का उद्देश्य कथा कहना नहीं है, अपितु नायिका का विरह वर्णन करना है.

पूरा संदेशरासक विरह-वर्णन से भरा पड़ा है. इसमें ऋतुओं का वर्णन विस्तार से हुआ है. कवि ने दीपावली, होली आदि उत्सवों का तन्मयता से वर्णन किया है. कृति में अनेक छन्दों का प्रयोग है पर सर्वाधिक रासक छंद का प्रयोग मिलता है.

आइए, आगे बढ़ने से पहले जाँचें कि हमने क्या सीखा

जोड़े मिलाइए :

(1) स्वयंभू	पाहुडदोहा
(2) पुष्पदंत	संदेशरासक
(3) रामसिंह	परमात्मप्रकाश
(4) जोइंदु	पउमचरिउ
(5) अद्दहमाण	महापुराण

1.5 अपभ्रंश और हिंदी का संबंध

जैसा कि हम पहले ही संकेत कर आए हैं, भाषाएँ सतत प्रवहमान होती हैं. प्रयोग से वे घिसती हैं, पुराना छूटता जाता है, नया जुड़ता जाता है और वे बदलती जाती हैं. रोजमर्रा की सामान्य बोलचाल की भाषा में यह प्रक्रिया और ज्यादा तेजी के साथ होती है. साहित्यिक भाषा अपेक्षाकृत रूढ़ होती है, उसमें परिवर्तन आसानी से नहीं होते. पहले साहित्यकार ने जब अपनी रचना की होगी तो वह निश्चित रूप से जनभाषा में रही होगी. कई रचनाएँ हो जाने के बाद वह भाषा साहित्यिक भाषा के रूप में रूढ़ हो जाती है, जबकि जनभाषा निरंतर बदलती जाती है और फिर एक समय ऐसा आता है जब जनभाषा और साहित्यिक भाषा दो बहुत अलग भाषाएँ लगने लगती हैं. तब नये साहित्यकार अपने को जन से जोड़ सकने की आकांक्षा से उस परिवर्तित जनभाषा में साहित्य रचना करने लगते हैं. यही क्रम चलता है और साहित्य की भाषा भी कुछ कुछ सदियों बाद बदलती जाती है. जनभाषा में परिवर्तन की यह प्रक्रिया निरंतर सहज ढंग से होती चलती है और सामान्य रूप से दिखाई नहीं पड़ती, जबकि साहित्य में यह परिवर्तन कुछ अंतराल पर होता है और साफ साफ दिखाई पड़ता है. हिंदी भी इसी प्रकार क्रमिक विकास से उपजी हुई भाषा है.

भाषावैज्ञानिक दृष्टि से उत्तर भारत में भाषाओं के विकास का क्रम इस प्रकार बताया गया है:

वैदिक संस्कृत - लौकिक संस्कृत प्राकृत-अपभ्रंश-हिंदी, गुजराती, मराठी आदि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ.

अपभ्रंश एक व्यापक जन क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली भाषा थी, जिससे इसके विविध रूप थे - शौरसेनी, मागधी, अर्धमागधी, खस, पैशाची, ब्राचड़, महाराष्ट्री आदि. शौरसेनी अपभ्रंश से पश्चिमी हिन्दी (ब्रजभाषा, खड़ी बोली, बांगरु, कन्नौजी, बुंदेली), राजस्थानी से (मेवाती, मारवाड़ी, मालवी, जयपुरी), गुजराती आदि का; अर्धमागधी अपभ्रंश से पूर्वी हिन्दी (अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी) और मागधी अपभ्रंश से बिहारी (भोजपुरी, मैथिली, मगही), बंगला, उड़िया, असमिया आदि का विकास हुआ.

अपभ्रंश से हिंदी के विकासक्रम में एक स्थिति 'अवहट्ट' की भी आती है. हालाँकि 'अवहट्ट' भी संस्कृतनिष्ठ 'अपभ्रंश' शब्द का ही तद्भव रूप लगता है. चौदहवीं शती के विद्यापति की रचनाएँ 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' अवहट्ट भाषा में लिखी गई सर्वप्रमुख रचनाएँ हैं.

इस तरह स्पष्ट है कि हिंदी और उसकी बोलियाँ अपभ्रंश का ही क्रमिक विकास हैं. और इस बात में विद्वानों में मतभेद भले ही हो कि अपभ्रंश की रचनाओं को हिंदी की प्रारंभिक रचनाएँ माना जाय कि नहीं, पर इतना तो बिना किसी विवाद के निश्चित ही है कि अपभ्रंश की काव्य रचनाएँ ही हिंदी काव्यरचना की पृष्ठभूमि रचती हैं.

आइये ! देखें, हमने क्या सीखा. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(1) भाषावैज्ञानिक दृष्टि से भाषाओं के विकास के क्रम में अपभ्रंश _____ के बाद आती है.

(2) पश्चिमी हिंदी का विकास _____ अपभ्रंश से हुआ है.

(3) पूर्वी हिंदी _____ अपभ्रंश से निकली है.

(4) भोजपुरी, मैथिली और मगही _____ अपभ्रंश से निकली है.

(5) ब्राचड़ अपभ्रंश _____ से भाषा विकसित हुई है.

1.6 सार-बिंदु

- भाषा सतत प्रवाहमान होती है और उसमें समय के साथ साथ परिवर्तन अवश्यंभावी होता है.
- जनभाषा जल्दी-जल्दी बदलती है, जबकि साहित्यिक भाषा अपेक्षाकृत रूढ़ होती है और उसमें परिवर्तन काफी अंतराल के बाद आता है.
- हिंदी का विकास भी पुराने समय से चली आ रही भाषाओं के निरंतर परिवर्तित होते रहने से ही हुआ है.
- इस विकासक्रम में हिंदी के ठीक पहले अवहट्ठ और उससे भी पहले अपभ्रंश की स्थिति है.
- अवहट्ठ को ही 'पुरानी हिंदी' भी कहा गया है.
- विद्यापति द्वारा रचित 'कीर्तिलता' अवहट्ठ भाषा में लिखी गयी सबसे प्रसिद्ध रचना है.
- अपभ्रंश भाषा का काल विद्वानों ने आठवीं से चौदहवीं शती तक माना है.
- सरहपा अपभ्रंश का प्रयोग करने वाले पहले रचनाकार माने जाते हैं.
- स्वयंभू रचित 'पउमचरिउ' को अपभ्रंश की पहली साहित्यिक रचना माना जाता है.
- अपभ्रंश के अन्य यशस्वी कवियों में पुष्पदंत (महापुराण); जोइंदु (योगसार); रामसिंह (पाहुडदोहा); शालिभद्रसूरि (भरतेश्वर-बाहुबलीरास); धनपाल (भविसयत्तकहा); अद्दहमाण (संदेशरासक) आदि के नाम आते हैं.
- हिंदी साहित्य की परिगणना में अपभ्रंश साहित्य को शामिल किया जाय या नहीं यह विद्वानों के बीच वाद-विवाद का विषय रहा है, किंतु हिंदी काव्य की पृष्ठभूमि के रूप में, उसके आधार के रूप में अपभ्रंश काव्य साहित्य की भूमिका निर्विवादित है.

1.7 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

- **दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :**

1. अपभ्रंश का काव्य भाषा के रूप में विकास समझाइए.
2. अपभ्रंश काव्य साहित्य का संक्षिप्त परिचय दीजिये.
3. अपभ्रंश और हिंदी साहित्य के संबध को स्पष्ट कीजिए.

- **टिप्पणी लिखिए :**

1. स्वयंभू का काव्य
2. वीर और श्रृंगार काव्य
3. पुष्पदंत का काव्य
4. प्रबंधात्मक काव्य

- **वस्तुनिष्ठ प्रश्न :**

सही के आगे √ गलत X के आगे का निशान लगाइये.

1. संदेशरासक विरह-प्रधान काव्य है.
2. सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन में संस्कृत का भी समावेश है.
3. अपभ्रंश साहित्य का काल चौथी-पाँचवीं शती ई. है
4. कीर्तिलता विद्यापति की रचना है.

5. नाथ साहित्य अध्यात्मप्रधान उपदेशमूलक साहित्य की श्रेणी में नहीं आता है.

- **रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :**

1. नाथ साहित्य के प्रमुख सर्जक _____ है.
2. _____ मेघदूत की परंपरा पर आधारित है.
3. हिन्दी भाषा का उद्भव _____ से हुआ है.
4. सिद्धों की भाषा को _____ भाषा नाम दिया गया.
5. कीर्तिलता और कीर्तिपताका _____ भाषा में रची गयी रचनाएँ हैं.

सही विकल्प का चयन करें :

1. सिद्धों की संख्या है.

   (A) 84 (B) 86 (C) 94 (D) 74

2. संदेशरासक के रचयिता हैं.

   (A) सोमप्रभ (B) जिनप्रभ (C) अद्दहमाण (D) इनमें से कोई नहीं

3. स्वयंभू की रचना का नाम है.

   (A) श्रावकाचार (B) ख्रालिकबारी (C) पउमचरिउ (D) महापुराण

4. गाथा या गाहा कहने से बोध होता था.

   (A) प्राकृत का (B) अपभ्रंश का (C) पालि का (D) हिन्दी का

5. सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन है.

   (A) व्याकरण ग्रंथ (B) शब्दकोश (C) विरह ग्रंथ (D) धर्म ग्रंथ

1.8 संदर्भ सूची

(1) हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल

(2) हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

(3) हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - बच्चन सिंह

(4) youtube.com/watch?v=TVEAWWJoXvU

(5) hi.wikipedia.org/wiki/अपभ्रंश

इकाई 2 हिंदी काव्य का परिचयात्मक इतिहास (मध्यकाल तक)

रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 आदिकाल

- 2.3.1 सिद्धकाव्य साहित्य
- 2.3.2 नाथकाव्य साहित्य
- 2.3.3 जैनकाव्य साहित्य
- 2.3.4 रासोकाव्य साहित्य
- 2.3.5 लौकिककाव्य साहित्य

2.4 भक्तिकाल

- 2.4.1 निर्गुण काव्यधारा
  - 2.4.1.1 ज्ञानाश्रयी शाखा
  - 2.4.1.2 प्रेमाश्रयी शाखा
- 2.4.2 सगुण काव्यधारा
  - 2.4.2.1 रामभक्ति शाखा
  - 2.4.2.2 कृष्णभक्ति शाखा

2.5 रीतिकाल

- 2.5.1 रीतिबद्ध काव्य
- 2.5.2 रीतिसिद्ध काव्य
- 2.5.3 रीतिमुक्त काव्य

2.6 सारबिंदु

2.7 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

2.8 उपयोगी पाठ्यसामग्री

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य हिंदी काव्य के प्रारंभिक विकास और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियों का परिचय कराना है. इस इकाई के अध्ययन के उपरांत पाठक हिंदी काव्य के इतिहास में आदिकाल, भक्तिकाल तथा रीतिकाल की प्रमुख विशेषताओं को समझ सकेगा. साथ ही आदिकाल के अंतर्गत सिद्ध, नाथ, जैन, रासो तथा लौकिक काव्य की परंपराओं का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेगा और उनके साहित्यिक महत्त्व को भी जान पाएगा. इसी प्रकार भक्तिकाल में विकसित निर्गुण और सगुण काव्यधाराओं का स्वरूप स्पष्ट होगा. निर्गुण परंपरा के अंतर्गत ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी शाखाओं की विशेषताओं का ज्ञान होगा, जबकि सगुण धारा में रामभक्ति और कृष्णभक्ति काव्य की प्रवृत्तियों तथा उनके काव्यात्मक स्वरूप का परिचय प्राप्त होगा. इसके अतिरिक्त रीतिकालीन काव्य की प्रवृत्तियों को समझने का अवसर मिलेगा, जिसमें रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त काव्य की प्रकृति, भेद और साहित्यिक महत्त्व का ज्ञान

प्राप्त किया जा सकेगा. इस प्रकार यह इकाई हिंदी काव्य के विभिन्न धाराओं और उनके साहित्यिक योगदान को समग्र रूप में समझने में सहायक सिद्ध होगी, जिसके अंतर्गत आप हिंदी काव्य के इतिहास के मध्यकाल तक का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे. इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :-

- आदि-काव्य के अंतर्गत सिद्ध-काव्य साहित्य, जैन-काव्य साहित्य, नाथ-काव्य साहित्य, रासो-काव्य साहित्य एवं लौकिक-काव्य साहित्य से परिचित हो सकेंगे.
- भक्ति-काव्य के अंतर्गत निर्गुण काव्य-धारा की ज्ञानाश्रयी एवं प्रेमाश्रयी शाखा तथा सगुण काव्य-धारा की रामभक्ति एवं कृष्णभक्ति शाखा की कविताओं का परिचय प्राप्त कर सकेंगे.
- रीति-काव्य के अंतर्गत रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध एवं रीतिमुक्त काव्य परंपरा से परिचित हो सकेंगे.

2.2 प्रस्तावना

कविता मानव की भावनाओं, अनुभूतियों और संवेदनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति का माध्यम रही है. प्राचीन काल में कविता का स्वरुप मूलतः संगीत और मौखिक परंपरा से जुड़ा हुआ था. विद्वानों का मत है कि कविता का उद्‌भव लिपि के विकास से भी पूर्व हो चुका था, इसलिए आरंभिक काल में यह मुख्यतः मौखिक रुप में ही प्रचलित थी. समय के साथ जब लिपि का विकास हुआ, तब इस मौखिक परंपरा को लिखित रुप प्राप्त हुआ. विश्व के विभिन्न देशों की भाँति भारत में भी काव्य की समृद्ध परंपरा रही है. भारतीय साहित्य के प्राचीन ग्रंथों में ज्ञान, धर्म, दर्शन, राजनीति, विज्ञान तथा आयुर्वेद आदि विषयों की अभिव्यक्ति भी प्रायः पद्य रुप में ही की गई है, जिससे काव्य की व्यापकता और महत्त्व का बोध होता है.

हिंदी काव्य के इतिहास का व्यवस्थित रुप लगभग तेरहवीं शताब्दी से माना जाता है. इस काल में विविध काव्यधाराओं और काव्यरुपों का विकास हुआ, जिनमें आदिकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल प्रमुख हैं. आदिकालीन काव्य में सिद्ध, नाथ, जैन तथा रासो काव्य की परंपराएँ विशेष रुप से उल्लेखनीय हैं. इन काव्यधाराओं में लोकजीवन, वीरता, धर्म तथा रहस्यवादी साधना से संबंधित विषयों की अभिव्यक्ति मिलती है.

इसके पश्चात हिंदी साहित्य में भक्तिकाल का उदय हुआ, जिसे हिंदी काव्य का स्वर्णयुग कहा जाता है. इस काल में भक्ति की भावना के आधार पर निर्गुण और सगुण- दो प्रमुख काव्यधाराओं का विकास हुआ. निर्गुण धारा के अंतर्गत ज्ञानाश्रयी तथा प्रेमाश्रयी शाखाएँ विकसित हुई, जबकि सगुण धारा में रामभक्ति और कृष्णभक्ति काव्य की समृद्ध परंपरा देखने को मिलती है. इन काव्यधाराओं ने हिंदी साहित्य को आध्यात्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध किया.

भक्तिकाल के पश्चात रीतिकाल का विकास हुआ, जिसमें काव्य का केंद्र मुख्यतः काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों, अलंकारों तथा श्रृंगारिक भावों की अभिव्यक्ति बन गया. इस काल में रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध तथा रीतिमुक्त- तीन प्रमुख प्रकार की काव्य रचनाएँ देखने को मिलती हैं.

इस प्रकार हिंदी काव्य का इतिहास विभिन्न कालों और काव्यधाराओं के माध्यम से निरंतर विकसित होता रहा है. प्रस्तुत इकाई में आदिकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल की प्रमुख काव्य प्रवृत्तियों तथा उनकी शाखाओं का परिचय प्रस्तुत किया जाएगा, जिससे हिंदी काव्य के प्रारंभिक विकास और उसकी विविध साहित्यिक धाराओं को समझने में सहायता मिलेगी.

2.3 आदिकाल

यूँ तो हिंदी साहित्य में आदिकाल का नामकरण और काल-विभाजन दोनों विवादग्रस्त विषय हैं फिर भी अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा दी गयी आदिकाल की समयसीमा वि.सं. 1050 से 1375 तद्नुसार सन् 993 ई. से सन् 1318 ई. यानी दसवीं शती के अंत से चौदहवीं शती के आरंभ तक स्वीकार की जा सकती है. याद रखने के लिए हम कह सकते हैं कि हिंदी काव्य का 'आदिकाल' लगभग ग्यारहवीं शती से तेरहवीं शती तक माना जाता है.

आदिकाल का नामकरण शुक्ल जी ने 'वीरगाथा काल' रखा परन्तु कई विद्वानों ने इस नाम पर आपत्ति जताई क्योंकि इससे लगता है कि इस काल में केवल वीरगाथाएँ ही रची गयीं, जबकि इस काल में अन्य प्रकार के काव्य भी पर्याप्त संख्या में मिलते हैं. अतः आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा दिया गया नाम 'आदिकाल' अब लगभग सर्वमान्य रूप से प्रचलित है.

आदिकालीन हिंदी कविताओं को अध्ययन की सुविधा के लिए निम्नांकित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :- (1) सिद्धकाव्य साहित्य, (2) जैनकाव्य साहित्य, (3) नाथकाव्य साहित्य, (4) रासोकाव्य साहित्य एवं (5) लौकिककाव्य साहित्य.

2.3.1 सिद्धकाव्य साहित्य

सिद्धकाव्य साहित्य हिन्दी साहित्य के आदिकाल की एक महत्त्वपूर्ण काव्यधारा है, जिसका संबंध बौद्ध धर्म के वज्रयान और सहजान साधना-परंपरा से है. सिद्धों ने अपने धार्मिक दार्शनिक विचारों तथा साधना-अनुभूतियों के प्रचार-प्रसार के लिए जनसाधारण की भाषा का सहारा लिया. यही कारण है कि सिद्धों की रचनाएँ संस्कृत या पाली के स्थान पर अपभ्रंश, प्राकृत तथा जनभाषा के मिश्रित रूप में मिलती हैं. इस प्रकार सिद्धों द्वारा रचित जो काव्य लोकभाषा में उपलब्ध है, वही हिन्दी के सिद्ध-साहित्य के अंतर्गत माना जाता है.

सिद्धकाव्य का मूल उद्देश्य बाह्य आडंबरों और कर्मकांडों का विरोध करते हुए साधना के सहज मार्ग का प्रतिपादन करना था. सिद्ध कवियों ने अपनी वाणी में रहस्यात्मकता, प्रतीकात्मकता और अनुभूति-प्रधान शैली का प्रयोग किया है. उनके काव्य में योग, तंत्र, साधना तथा आध्यात्मिक अनुभवों की अभिव्यक्ति रुपक और संकेतों के माध्यम से हुई है. इस कारण उनकी भाषा में गूढ़ता तथा रहस्य का पुट दिखाई देता है.

सिद्धकाव्य परंपरा का प्रारंभ प्रायः सिद्ध कवि सरहपा (सरहपाद) से माना जाता है. सरहपा को सिद्धों की परंपरा का अग्रणी कवि माना जाता है. इनके द्वारा रचित लगभग बत्तीस ग्रंथों का उल्लेख मिलता है, जिनमें 'दोहाकोश' विशेष रुप से प्रसिद्ध है. इस ग्रंथ में उनके दार्शनिक विचारों और साधना-अनुभवों की अभिव्यक्ति दोहों के माध्यम से हुई है. सरहपा की रचनाओं में जीवन की सहजता, सामाजिक रुढ़ियों का विरोध और आध्यात्मिक अनुभूति का प्रभावशाली चित्रण मिलता है.

सरहपा के पश्चात सिद्ध परंपरा में अनेक कवियों का उल्लेख मिलता है. इनमें शबरपा (शवरपा) का नाम उल्लेखनीय है, जिनकी रचनाएँ 'चर्यापद' में संग्रहीत हैं. इनके अतिरिक्त लुईपा भी सिद्ध परंपरा के महत्त्वपूर्ण कवि माने जाते हैं, जिनकी वाणी में साधना और योग के रहस्य का वर्णन मिलता है. इसी क्रम में डोम्भिपा (डोम्हिपा) का उल्लेख किया जाता है, जिनकी रचनाओं में 'डोम्बी-गीतिका', 'योगचर्या' तथा 'अक्षर द्विकोपदेश' प्रमुख मानी जाती हैं. इन ग्रंथों में साधना-पद्धति और योग-मार्ग की व्याख्या की गई है.

सिद्ध कवियों में कण्हपा (कन्हपा/ कण्हप्पा) का स्थान भी अत्यंत महत्वपूर्ण है. इनके द्वारा रचित लगभग चौहत्तर ग्रंथों का उल्लेख मिलता है. इनके काव्य में योग, तांत्रिक साधना तथा आध्यात्मिक अनुभूति का गूढ़ चित्रण मिलता है. इसके अतिरिक्त कुक्कुरिपा का नाम भी सिद्ध परंपरा में प्रमुखता से लिया जाता है, जिनके लगभग सोलह ग्रंथों का उल्लेख मिलता है.

सिद्ध साहित्य की विशेषता यह है कि इसमें साधना के गूढ़ रहस्यों को प्रतीकात्मक और सांकेतिक भाषा में व्यक्त किया गया है. सिद्ध कवियों की वाणी में लोकजीवन, सामाजिक यथार्थ और आध्यात्मिक अनुभूति का अद्‌भुत समन्वय दिखाई देता है. यही कारण है कि सिद्धकाव्य साहित्य हिन्दी साहित्य के आदिकाल में जनभाषा के विकास तथा आध्यात्मिक चिंतन की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है.

2.3.2 नाथकाव्य साहित्य

हिंदी साहित्य के आदिकाल में सिद्ध परंपरा के पश्चात जिस महत्त्वपूर्ण काव्यधारा का विकास हुआ, वह नाथपंथ से संबंधित नाथकाव्य साहित्य है. सिद्धों की वाममार्गी तथा भोगप्रधान साधना-पद्धति के प्रतिकारस्वरुप नाथयोगियों ने अधिक संयमित, अनुशासित और तपश्चर्या-प्रधान साधना का मार्ग अपनाया, जिसे हठयोग के रुप में जाना जाता है. इस प्रकार नाथपंथ का उदय एक प्रकार से सिद्ध परंपरा की साधना-पद्धति की प्रतिक्रिया के रुप में हुआ, जिसमें शरीर और मन के अनुशासन के माध्यम से आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त करने पर बल दिया गया.

नाथपंथ का उत्कर्ष लगभग बारहवीं शताब्दी तक माना जाता है. इस संप्रदाय की परंपरा का संबंध मत्स्येन्द्रनाथ से जोड़ा जाता है, जिन्हें नाथपंथ का प्रवर्तक माना जाता है. किंतु हिन्दी क्षेत्र में नाथकाव्य की सुदृढ़ परंपरा के विकास का श्रेय उनके शिष्य गोरखनाथ को दिया जाता है. गोरखनाथ को नाथ साहित्य का प्रमुख प्रवर्तक माना जाता है. विद्वानों के अनुसार उन्होंने तेरहवीं शताब्दी के आरंभिक समय में अपने उपदेशों, योग-साधना और आध्यात्मिक अनुभवों को लोकभाषा में व्यक्त करना आरंभ किया.

गोरखनाथ की रचनाओं में योग, साधना, वैराग्य, आत्मसंयम तथा गुरु-शिष्य परंपरा की महत्ता का स्पष्ट प्रतिपादन मिलता है. उनकी वाणी में दार्शनिक गंभीरता के साथ-साथ लोकजीवन की सहजता भी विद्यमान है. 'गोरखबानी', 'सिद्ध-सिद्धांत-पद्धति', 'योगमार्ग' आदि ग्रंथों में उनके विचारों और साधना-पद्धति का उल्लेख मिलता है. उनकी भाषा में अपभ्रंश, प्रारंभिक हिन्दी तथा लोकभाषा के तत्त्वों का समन्वय दिखाई देता है.

नाथ साहित्य के विकास में गोरखनाथ के अतिरिक्त अन्य अनेक योगियों और कवियों का भी अतुलनीय योगदान रहा है. इनमें चौरंगीनाथ, गोपीचंद, भरथरी (भर्तृहरि) तथा जलंधरनाथ के नाम उल्लेखनीय हैं. इन नाथयोगियों की वाणी में वैराग्य, योग-साधना, गुरु-भक्ति और सांसारिक मोह-माया से विरक्ति की भावना प्रमुख रूप से व्यक्त हुई है. विशेष रूप से गोपीचंद और भरथरी से संबंधित लोककथाएँ तथा पद-रचनाएँ उत्तर भारत की लोकपरंपरा में अत्यंत लोकप्रिय रही हैं.

नाथकाव्य साहित्य की भाषा अपेक्षाकृत सरल, लोकाभिमुख और उपदेशात्मक है. इसमें प्रतीकात्मकता के साथ-साथ योग-साधना से जुड़े तकनीकी शब्दों का भी प्रयोग मिलता है. नाथ कवियों ने समाज में फैले बाह्य आडंबरों, पाखंड और कर्मकांड का विरोध करते हुए आत्मसंयम, साधना और आध्यात्मिक अनुशासन पर बल दिया.

इस प्रकार नाथकाव्य साहित्य न केवल आदिकालीन हिन्दी साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण

धारा है, बल्कि यह भारतीय योग-परंपरा, आध्यात्मिक चिंतन और लोकभाषा के विकास की दृष्टि से भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है.

2.3.3 जैनकाव्य साहित्य

आदिकालीन हिंदी साहित्य के विकास में जैन आचार्यों और कवियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है. जैन कवियों ने अपने धार्मिक सिद्धांतों, नैतिक आदशों तथा आध्यात्मिक मूल्यों के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से अनेक काव्य ग्रंथों की रचना की. जैन साहित्य की विशेषता यह है कि इसमें धर्मोपदेश, नैतिक शिक्षा, संयम, त्याग और अहिंसा जैसे जीवन-मूल्यों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है. जैन कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से समाज को सदाचार, आत्मसंयम और आध्यात्मिक उन्नति की ओर प्रेरित करने का प्रयास किया.

जैन काव्य साहित्य का विकास मुख्यतः प्राकृत, अपभ्रंश तथा प्रारंभिक हिंदी के रूपों में हुआ. आदिकाल में जैन कवियों ने 'रास' और 'चरित' जैसी काव्य-शैलियों को विशेष रूप से अपनाया. इन काव्य रचनाओं में जैन तीर्थंकरों, महापुरुषों और आदर्श चरित्रों के जीवन-प्रसंगों का वर्णन किया गया है.

जैन साहित्य की प्रारंभिक महत्त्वपूर्ण कृतियों में आचार्य देवसेन द्वारा 933 ई. में रचित 'श्रावकाचार' का उल्लेख किया जाता है, जिसमें जैन धर्म के गृहस्थ अनुयायियों के आचार-विचार और कर्तव्यों का वर्णन मिलता है. इसके अतिरिक्त शालिभद्र सूरी द्वारा 1184 ई. में रचित 'भरतेश्वर बाहुबली रास' जैन काव्य साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण रचना है. इसे जैन रास परंपरा का प्रथम प्रमुख ग्रंथ माना जाता है. इस काव्य में भरत और बाहुबली की कथा के माध्यम से त्याग, वैराग्य और आध्यात्मिक साधना का संदेश प्रस्तुत किया गया है.

इसी परंपरा में कवि आसगु द्वारा लगभग 1200 ई. के आसपास रचित लघु खंडकाव्य 'चंदनबाला रास' उल्लेखनीय है, जिसमें जैन परंपरा की आदर्श नारी चंदनबाला के जीवन प्रसंगों का वर्णन मिलता है. इसके अतिरिक्त जिनधर्म सूरी ने 1209 ई. में 'स्थूलिभद्र रास', सुमति गणि ने 1213 ई. में 'नेमिनाथ रास' तथा विजयसेन सूरी ने 1231 ई. में 'रेवंतगिरि रास' की रचना की. इन सभी काव्य ग्रंथों में जैन धर्म के आदर्शों, त्याग, तपस्या और आध्यात्मिक साधना का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है.

इस प्रकार जैन काव्य साहित्य आदिकालीन हिंदी साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण धारा है, जिसने न केवल धार्मिक और नैतिक मूल्यों का प्रचार किया, बल्कि हिंदी काव्य के प्रारंभिक विकास में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई. जैन कवियों की रचनाओं में कथात्मकता, उपदेशात्मकता तथा नैतिकता का सुंदर समन्वय मिलता है, जो हिंदी साहित्य की समृद्ध परंपरा को स्पष्ट रुप से व्यक्त करता है.

2.3.4 रासोकाव्य साहित्य

आदिकालीन हिंदी साहित्य में रासो काव्य परंपरा का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है. इस काव्यधारा का मूल संबंध तत्कालीन राजाओं के जीवन, उनके शौर्य, युद्धकौशल और वीरता के वर्णन से रहा है. रासो काव्य मुख्यतः वीरगाथात्मक प्रकृति का होता है, जिसमें कवियों ने अपने आश्रयदाता राजाओं के पराक्रम, युद्ध-प्रसंगों तथा उनके गौरवपूर्ण कार्यों का विस्तृत चित्रण किया है. साथ ही इन काव्यों में राजाओं के जीवन से संबंधित प्रेम, केलि-क्रीड़ा तथा व्यक्तिगत प्रसंगों का भी उल्लेख मिलता है. इस प्रकार युद्ध और प्रेम दोनों तत्वों से युक्त इन काव्यों को सामूहिक रूप से 'रासो काव्य' कहा जाता है.

रासो काव्यों की भाषा प्रायः ब्रजभाषा और राजस्थानी के मिश्रित रूप में मिलती है, जिसमें राजस्थानी का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक दिखाई देता है. इन काव्यों का उद्देश्य केवल

साहित्यिक रचना करना ही नहीं था, बल्कि अपने आश्रयदाता राजाओं की कीर्ति का प्रसार करना भी था. इसलिए इनमें वीरता, स्वाभिमान, युद्धभूमि के रोमांचकारी दृश्य और राजपूती मर्यादा का प्रभावशाली चित्रण मिलता है.

रासो काव्य परंपरा की सबसे प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण कृति 'पृथ्वीराज रासो' है, जिसके रचयिता कवि चंदबरदाई माने जाते हैं. इस ग्रंथ में अजमेर और दिल्ली के प्रतापी राजा पृथ्वीराज चौहान के जीवन, उनके पराक्रम तथा युद्धों का विस्तृत वर्णन मिलता है. इसे हिंदी का प्रथम महाकाव्य भी माना जाता है. इस काव्य में छप्पय छंद का सुंदर और प्रभावपूर्ण प्रयोग हुआ है. उदाहरण के रुप में 'पृथ्वीराज रासो' की एक प्रसिद्ध पंक्ति देखी जा सकती है :-

"चार बाँस चौबीस गज, अंगुल अष्ट प्रमाण ।
ता ऊपर सुलतान है, मत चूके चौहान। ।"

यह पंक्ति उस प्रसंग से संबंधित है जब कवि चंदबरदाई ने पृथ्वीराज चौहान को शत्रु की स्थिति का संकेत दिया था. इससे न केवल काव्य की रोचकता बढ़ती है, बल्कि उस समय की वीरता और युद्धनीति का भी परिचय मिलता है.

इसी परंपरा में नरपति नाल्ह द्वारा रचित 'बीसलदेव रासो' भी उल्लेखनीय कृति है, जिसका समय लगभग बारहवीं शताब्दी माना जाता है. यह काव्य मुख्यतः विरह भाव पर आधारित है और इसमें बीसलदेव तथा राजमती की कथा का वर्णन मिलता है. इसके अतिरिक्त 'खुमाण रासो', 'हम्मीर रासो' तथा 'परमाल रासो' भी रासो काव्य परंपरा की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं, जिनमें विभिन्न राजाओं के पराक्रम और उनके जीवन से जुड़े प्रसंगों का वर्णन मिलता है.

इस प्रकार रासो काव्य साहित्य आदिकालीन हिंदी साहित्य की वीरगाथात्मक परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है. इन काव्यों के माध्यम से उस समय के सामाजिक जीवन, युद्ध संस्कृति, राजपूती मर्यादा तथा वीरता की भावना का सजीव चित्रण प्राप्त होता है, जिससे हिंदी साहित्य के प्रारंभिक स्वरुप और उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझने में विशेष सहायता मिलती है.

2.3.5 लौकिककाव्य साहित्य

आदिकालीन हिंदी साहित्य में जहाँ एक ओर धार्मिक और वीरगाथात्मक काव्यधाराएँ विकसित हुई, वहीं दूसरी ओर लौकिक विषयों पर आधारित काव्य रचनाओं की भी एक स्वतंत्र प्रवृत्ति दिखाई देती है. सामान्य जीवन, प्रेम, लोककथाओं तथा लोकानुभवों से संबंधित विषयों पर रचित काव्य को लौकिक काव्य साहित्य कहा जाता है. इस प्रकार की रचनाओं में धार्मिक उपदेश या वीरगाथा की अपेक्षा जनजीवन की सहज भावनाओं, लोकप्रेम और सामाजिक अनुभवों का अधिक चित्रण मिलता है.

लौकिक काव्य साहित्य की एक प्रमुख कृति 'ढोला-मारू रा दूहा' मानी जाती है, जिसका रचनाकाल लगभग ग्यारहवीं शताब्दी के आसपास माना जाता है. यह एक लोकभाषा में रचित काव्य है, जिसमें ढोला और मारू की प्रेमकथा का अत्यंत मार्मिक और लोकजीवन से जुड़ा हुआ वर्णन मिलता है.

इस काव्य का मूल स्वरुप दोहों में प्राप्त होता है और इसकी भाषा राजस्थानी के अधिक निकट है. इसमें लोकजीवन की सरलता और प्रेम की स्वाभाविक अभिव्यक्ति दिखाई देती है. उदाहरण के रूप में इस काव्य की एक प्रसिद्ध पंक्ति देखी जा सकती है :-

"मारू म्हारी देश में, ढोला देस पराय ।
आवो साजन पधारिए, मन लागो घबराय ।।

इस प्रकार के दोहों में लोकजीवन की सहज भावनाओं और प्रेम की मार्मिकता का सुंदर चित्रण मिलता है.

लौकिक काव्य परंपरा में कुछ ऐसी रचनाओं का भी उल्लेख मिलता है जो आज उपलब्ध नहीं हैं, किंतु अन्य ग्रंथों में उनका उल्लेख प्राप्त होता है. जैसे- भट्ट केदार द्वारा रचित 'जयचंद-प्रकाश' तथा मधुकर द्वारा रचित 'जय मयंक जस - चन्द्रिका' का उल्लेख 'राठौड़ा री ख्यात' नामक ग्रंथ में मिलता है, किंतु ये कृतियाँ वर्तमान समय में उपलब्ध नहीं हो सकी हैं. इसी प्रकार 'वसंत विलास' नामक काव्य का भी उल्लेख मिलता है, परंतु इसके रचयिता के संबंध में निश्चित जानकारी अभी तक प्राप्त नहीं हो सकी है.

आदिकाल के लौकिक काव्य साहित्य में अमीर खुसरो का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है. उन्होंने जनसाधारण के मनोरंजन के लिए अनेक पहेलियाँ, मुकरियाँ और लोकगीत रचे. उनकी रचनाओं में लोकभाषा की सरलता, विनोदप्रियता और चातुर्य का सुंदर समन्वय मिलता है. उदाहरण के रुप में उनकी एक प्रसिद्ध पहेली देखी जा सकती है :-

"एक थाल मोती से भरा, सबके सिर पर औंधा धरा।
चारों ओर वह थाली फिरे, मोती उससे एक न गिरे।।"

इस पहेली का उत्तर आकाश और तारे हैं.

अमीर खुसरो को खड़ी बोली हिंदी के प्रारंभिक कवियों में भी गिना जाता है. उन्होंने लोकभाषा को काव्य की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाकर हिंदी साहित्य को नई दिशा प्रदान की. इस प्रकार आदिकाल का लौकिक काव्य साहित्य लोकजीवन, प्रेम, मनोरंजन और जनसामान्य की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करता है तथा हिंदी काव्य के विकास में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है.

बोध प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न :-

(1) शबरपा की प्रसिद्ध रचना इनमें से कौन-सी है ?

(A) चर्यापद (B) योगचर्या (C) सरोज-वज्र (D) दोहा-कोश

(2) 'योगचर्या' किस कवि की रचना है ?

(A) लुईपा (B) कुक्कुरिपा (C) डोम्भिपा (D) कणहपा

(3) जैन साहित्य की रास परम्परा का प्रथम ग्रंथ कौन-सा है ?

(A) भरतेश्वर-बाहुबली-रास (B) नेमिनाथ रास

(C) रेवंतगिरी रास (D) स्थूलिभद्र रास

(4) 'श्रावकाचार' का रचनाकाल कौन-सा है ?

(A) 933 ई. (B) 1184 ई. (C) 1209 ई. (D) 1213 ई.

(5) 'पृथ्वीराज रासो' के रचयिता कवि इनमें से कौन है ?

(A) नरपति नाल्ह (B) दलपत विजय (C) जगनिक (D) चन्दबरदाई

2.4 भक्तिकाल

भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का 'स्वर्ण युग' माना जाता है. इसका समय प्रायः विक्रम संवत् 1375 से 1700 तक स्वीकार किया जाता है. हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस काल

को पूर्व-मध्यकाल भी कहा जाता है. इस समय की प्रमुख विशेषता यह है कि साहित्य में भक्ति-भावना का व्यापक और सशक्त रुप से विकास हुआ. भक्तिकालीन साहित्य को सामान्यतः दो मुख्य धाराओं में विभाजित किया जाता है- 'निर्गुण काव्यधारा' और 'सगुण काव्यधारा'. निर्गुण काव्यधारा में ईश्वर को निराकार और निर्गुण रुप में स्वीकार किया गया है, जबकि सगुण काव्यधारा में ईश्वर को साकार रुप में आराध्य माना गया है. इन दोनों धाराओं को दो-दो शाखाओं में विभाजित किया जाता है :- निर्गुण काव्यधारा के अंतर्गत 'ज्ञानाश्रयी शाखा' और 'प्रेमाश्रयी शाखा', तथा सगुण काव्यधारा के अंतर्गत 'रामभक्ति शाखा' और 'कृष्णभक्ति शाखा'.

इस प्रकार भक्तिकाल हिन्दी साहित्य में आध्यात्मिक चेतना, भक्ति-भावना और लोकभाषा के व्यापक विकास का महत्त्वपूर्ण युग माना जाता है.

2.4.1 निर्गुण काव्यधारा

भक्तिकालीन हिंदी साहित्य में निर्गुण काव्यधारा का महत्त्वपूर्ण स्थान है. इस धारा के कवियों ने ईश्वर को निराकार, निर्गुण और सर्वव्यापक माना है. इनके अनुसार परमात्मा किसी मूर्ति या बाह्य आडंबरों में सीमित नहीं है, बल्कि वह प्रत्येक जीव और कण-कण में विद्यमान है. इस धारा के कवियों ने जाति-पाँति, पाखंड और धार्मिक रूढ़ियों का विरोध करते हुए आंतरिक भक्ति, ज्ञान और प्रेम पर बल दिया. कबीर, रैदास, दादू दयाल आदि संत इस धारा के प्रमुख प्रतिनिधि माने जाते हैं. उनके काव्य में सहजता, लोकभाषा और आध्यात्मिक अनुभूति का सुंदर समन्वय मिलता है.

2.4.1.1 ज्ञानाश्रयी शाखा

निर्गुण भक्ति की ज्ञानाश्रयी शाखा को संत काव्य भी कहा जाता है. संत साधना में योग प्रक्रिया एवं तंत्र साधना की जो प्रधानता है, उसका मूल-स्रोत नाथ-पंथी साधना पद्धति ही है. ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रवर्तक वास्तविक रूप से नाथपंथी जोगी और नामदेवजी ही हैं. नामदेव को हम हिंदी का पहला संत कवि कह सकते हैं, पर इस शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि कबीर ही हैं. संत कवियों ने धार्मिक रूढ़ियों की उपेक्षा एवं आलोचना की. उन्होंने निगम, आगम, पुराण आदि को महत्त्वहीन प्रमाणित किया. किन्तु बौद्धों का दुःखवाद एवं शून्यवाद, वज्रयानियों की तांत्रिक साधना, सिद्धों की गुढ़ोक्तियों के रुप में उलटबांसियों, नाथ संप्रदाय की योग-साधना तथा काव्य-साधना किसी-न-किसी रुप में संत काव्य में समाहित हुई. संत संप्रदाय ने गुरु को ब्रह्म से भी महान माना है.

इस शाखा के प्रमुख कवियों में कबीर, दादू, नानक, रैदास, सुन्दरदास, मलूकदास आदि उल्लेखनीय हैं. कबीर के शिष्य धर्मदास ने सन् 1521 ई. में सर्वप्रथम कबीर की बिखरी रचनाओं को 'बीजक' नाम से संग्रहित किया. जिसके तीन भाग हैं- साखी, सबद तथा रमैनी. काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने 'कबीर ग्रंथावली' नामक ग्रंथ का प्रकाशन किया.

2.4.1.2 प्रेमाश्रयी शाखा

भक्तिकाल में निर्गुण उपासक भक्तों की प्रेमाश्रयी शाखा उन सूफ़ी कवियों की है, जिन्होंने प्रेमगाथाओं के रुप में उन प्रेम तत्व का वर्णन किया है; जो ईश्वर को मिलाने वाला है तथा जिसका आभास लौकिक प्रेम के रूप में मिलता है. सूफ़ी कवियों ने भारतीय लोककथाओं को ग्रहण कर उस पर अपनी भावनाओं को आरोपित कर दिया. सूफ़ी कवियों की उदारता यह थी कि उन्होंने धर्म, जाति और संप्रदाय के संकुचित विचारधारा से ऊपर उठकर अपने विचार व्यक्त किये. इनके ग्रंथों में भक्ति और ज्ञान का समन्वय तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता का परिचय मिलता है.

हिंदी में प्रेमाश्रयी शाखा के प्रवर्तन के बारे में भले ही मतभेद हो किन्तु मलिक मोहम्मद जायसी इस परंपरा के प्रमुख सूफ़ी कवि हैं, इसमें कोई विवाद नहीं है. जायसी का 'पद्मावत' सूफ़ी काव्य धारा का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है. इसमें जायसी का वस्तु-वर्णन, विरह-वर्णन, आध्यात्मिक संकेत, लोकजीवन की अभिव्यक्ति एवं भाषा का निर्वाह सब कुछ अत्यंत प्रभावशाली और हृदय स्पर्शी है. प्रेमाश्रयी शाखा के प्रसिद्ध कवियों में कुतुबन, मंझन, उस्मान, शेख नबी, कासिम शाह और नूर महम्मद आदि का प्रमुख स्थान है.

2.4.2 सगुण काव्यधारा

भक्तिकालीन हिंदी साहित्य में सगुण काव्यधारा का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है. इस धारा के कवियों ने ईश्वर को साकार रुप में स्वीकार किया और उनकी भक्ति को प्रेम, श्रद्धा तथा समर्पण के माध्यम से व्यक्त किया. सगुण भक्ति में भगवान के विभिन्न अवतारों और रुपों का वर्णन मिलता है, विशेषतः राम और कृष्ण के रुप में. इस धारा के कवियों ने ईश्वर के रूप, गुण, लीला और करुणा का अत्यंत भावपूर्ण चित्रण किया है. तुलसीदास, सूरदास और मीरां बाई आदि इस काव्यधारा के प्रमुख कवि माने जाते हैं. इनके काव्य में भक्ति, प्रेम और भावनात्मकता की अत्यंत मधुर अभिव्यक्ति मिलती है.

2.4.2.1 रामभक्ति शाखा

हिंदी की रामकाव्य परंपरा का विकास स्वामी रामानंद से माना जाता है. स्वामी रामानंद ने भक्ति के क्षेत्र में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन किये और राम की मर्यादा भक्ति को आदर्श और आचरण की पवित्रता से मण्डित रखते हुए जन साधारण के लिए सुगम बनाया. रामभक्त कवियों ने राम के जीवन को आधार बनाकर प्रबंध और मुक्तक काव्यों की रचनाएँ की. उन्होंने अवधी और ब्रज दोनों भाषाओं को अपनाया. काव्य रचना के लिए उन्होंने दोहा, चौपाई, सोरठा, कवित्त, सवैया, छप्पय आदि विभिन्न छंदों का प्रयोग किया.

तुलसीदास रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवि माने जाते हैं, जिन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के शील, शक्ति और सौंदर्य से संकलित अद्‌भुत रुप का गुणगान करते हुए लोकमंगल की साधनावस्था के पथ को प्रशस्त किया. उन्होंने अवधी भाषा में 'श्रीरामचरित मानस' की रचना की, जिसमें समूचे समाज के दृष्टिकोण को संस्कार देने एवं बदलने का काम किया. तुलसीदास से पूर्व के रामभक्त कवियों में विष्णुदास का नाम एवं कुछ जैन-कवियों की रचनाएँ भी उल्लेखनीय रही हैं. राम-भक्ति शाखा के अन्य प्रमुख कवियों में स्वामी अग्रदास, नाभादास, प्रियादास, प्राणचंद चौहान एवं हृदयराम का उल्लेखनीय स्थान है.

2.4.2.2 कृष्णभक्ति शाखा

मध्यकालीन सगुण भक्ति के आराध्य देवताओं में भगवान् श्रीकृष्ण का स्थान सर्वोपरी है. भागवत पुराण मध्यकालीन कृष्णभक्ति साहित्य का प्रेरणा-स्रोत रहा है. भक्ति आंदोलन के दौरान कृष्ण लीलाओं के गान की ओर कवियों को प्रेरित करने का श्रेय वल्लभाचार्यजी को है. सूरदास वल्लभाचार्य के ही शिष्य माने जाते हैं. वल्लभाचार्य के मत को आगे बढ़ाने का श्रेय उनके पुत्र विठ्ठलनाथ को है. इन्होंने पुष्टि मार्ग को स्वीकार करने वाले आठ कवियों को कुम्भनदास, सूरदास, परमानंददास, कृष्णदास, गोविंदस्वामी, नंददास, छीतस्वामी और चतुर्भुजदास को अष्टछाप की संज्ञा दी. ये कवि कृष्ण की लीलाओं का तथा उनके रूप-माधुर्य का वर्णन किया करते थे. उन्होंने कृष्ण के जीवन का संपूर्ण चित्रण करते हुए उनकी बाल और किशोर जीवन से संबंधित लीलाओं का वर्णन भी किया. इन कवियों ने अपनी रचनाओं में सौंदर्य-चित्रण का विषद चित्रण किया, विशेष रूप से विरह का.

कृष्णभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि सूरदास हैं, जिन्होंने आचार्य वल्लभ से दीक्षा लेकर श्रीनाथ जी की सेवा में ही अपना जीवन बिताया. सूरदास के द्वारा लिखे गए पच्चीस ग्रंथ

बताये जाते हैं, किन्तु आधुनिक विद्वानों ने उनकी तीन रचनाओं को ही प्रामाणिक माना है. वह हैं- 'सूर-सारावली', 'सूर सागर' एवं 'साहित्य लहरी', कृष्णभक्ति शाखा के अन्य प्रमुख कवियों में नन्ददास, कृष्णदास, परमानंददास, कुम्भनदास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, गोविंदस्वामी, हित हरिवंश, गदाधर भट्ट, मीरांबाई, स्वामी हरिदास, श्री भट्ट, व्यास जी रसखान एवं ध्रुवदास का नाम उल्लेखनीय है.

- **बोध प्रश्न**
- **वस्तु निष्ठ प्रश्न.**

(1) कौन-सा काल हिंदी साहित्य का 'स्वर्ण काल' माना जाता है ?

(A) आदिकाल (B) भक्तिकाल (C) रीतिकाल (D) आधुनिककाल

(2) जायसी का प्रसिद्ध महाकाव्य कौन-सा है ?

(A) अखरावट (B) पद्मावत

(C) आखिरी कलाम (D) इनमें से कोई नहीं

(3) रामकाव्य परंपरा के विकास की शुरुआत किस कवि से हुई ?

(A) स्वामी रामानंद (B) स्वामी नाभादास

(C) स्वामी नामदेव (D) स्वामी हरिदास

(4) तुलसीदास की कृति इनमें से कौन-सी है ?

(A) रामायण (B) रामचंद्रिका

(C) रामचरित मानस (D) बरवै रामायण

(5) इनमें से कौन-सा ग्रंथ कृष्ण भक्ति साहित्य का प्रेरणा-स्रोत है ?

(A) महाभारत (B) रामायण

(C) भागवत पुराण (D) श्रीमद् भगवद्गीता

(6) कृष्ण भक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि इनमें से कौन है ?

(A) वल्लभाचार्य (B) कुम्भनदास (C) सूरदास (D) नंददास

(7) 'साहित्य लहरी' ग्रंथ के रचयिता इनमें से कौन हैं ?

(A) कबीर (B) तुलसी (C) मीराबाई (D) सूरदास

2.1 रीतिकाल

रीतिकाल का समय प्रायः विक्रम संवत् 1700 से 1900 तक माना जाता है, हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस काल को उत्तर-मध्यकाल भी कहा जाता है. सामान्यतः सत्रहवीं शताब्दी के मध्य से अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक हिन्दी में जो काव्य रचा गया, उसे रीतिकाव्य की संज्ञा दी जाती है. 'रीति' शब्द का अर्थ नियम, लक्षण, पद्धति अथवा काव्य-प्रणाली से है. इस काल में काव्य-रचना मुख्यतः काव्यशास्त्रीय नियमों और अलंकारिक परंपराओं के अनुसार की जाती थी. इस कारण कवियों ने काव्य-रचना में रस, अलंकार, नायक-नायिका भेद तथा काव्य-लक्षणों का विशेष रूप से प्रतिपादन किया. इस काल के नामकरण को लेकर विद्वानों में मतभेद भी रहा है. मिश्रबंधुओं ने इसे अलंकृत काल, आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रीतिकाल तथा पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने श्रृंगार काल की संज्ञा दी है.

रीतिकालीन काव्य को सामान्यतः तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है- रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध तथा रीतिमुक्त. इन तीनों प्रकार की काव्य-रचनाओं में काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों, श्रृंगारिक भावों तथा कलात्मक अभिव्यक्ति का विविध रूपों में विकास हुआ है.

2.5.1 रीतिबद्ध काव्य

जो कवि रस, अलंकार आदि काव्यांगों के लक्षण, उदाहरण लिखने में ही अपनी काव्य शक्ति का उपयोग करते थे वे रीतिबद्ध कवि कहलाये. इस वर्ग के कवि काव्यशास्त्र की शिक्षा देने के उद्देश्य से प्रेरित होकर ग्रंथ रचना करते थे. इसलिए इनका नाम रीतिबद्ध रखा गया. केशवदास प्रमुख रीतिबद्ध कवि हैं. रीतिकाल विषयक इनके जो ग्रंथ मिलते हैं, उनमें से 'रसिकप्रिया' एवं 'कविप्रिया' ने इन्हें आचार्य बना दिया. चिंतामणी त्रिपाठी, मतिराम, जसवंत सिंह, देव, कुलपति मिश्र, भिखारीदास, भूषण, पद्माकर आदि कवियों ने भी रीतिबद्ध काव्य परंपरा में अपना विशिष्ट योगदान दिया है.

रीतिबद्ध कवियों के दो प्रमुख वर्ग माने जाते हैं- सर्वांग निरूपक और विशिष्टांग निरूपक.

2.5.2 रीतिसिद्ध काव्य

जिन कवियों ने लक्षण ग्रंथ नहीं लिखे लेकिन अपनी रचनाओं के लिए इन ग्रंथों से प्रेरणा अवश्य लेते रहे, उन कवियों को रीतिसिद्ध कवियों की श्रेणी में रखा गया. बिहारी मूलतः रीतिसिद्ध काव्य धारा के प्रमुख कवि हैं. अर्थ-रमणीयता और भाषा का नाद-सौंदर्य बिहारी की रचना शक्ति का एक विशिष्ट पक्ष है. बिहारी द्वारा रचित 'सतसई', जो कि उनका एकमात्र ग्रन्थ हैं उन्हें अमर बना गयी. 'सतसई' मुक्तक काव्य ग्रंथ है, जिसमें श्रृंगार, प्रेम और सौन्दर्य की सजीव झाँकियाँ देखने को मिलती हैं.

इस धारा के अन्य कवियों में बेनी, कृष्ण कवि, रसनिधि, राम सहाय, सेनापति, विक्रम आदि के नाम लिए जा सकते हैं.

2.5.3 रीतिमुक्त काव्य

जिन कवियों ने न तो लक्षण ग्रंथ लिखें और ना ही वे रीतिकालीन परंपरा एवं प्रवृत्ति से प्रभावित हुए, बल्कि इसके विपरीत स्वतंत्र रूप से काव्य रचना करते रहे, उन कवियों को रीतिमुक्त कवि माना जाता है. घनानंद, आलम, बोधा, द्विजदेव, आदि इसी वर्ग के अंतर्गत आते हैं. इन सभी कवियों ने रीतिमुक्त परंपरा में मौलिक प्रतिभा का सृजन किया है. इन कवियों की मूल प्रवृत्ति रूप-सौन्दर्य-चित्रण एवं विरह वर्णन है. इनमें स्वानुभूति का स्वर प्रधान रूप से व्यंजित हुआ है. रीतिमुक्त कवियों ने काव्यानुभूति में स्वच्छंद और उदात्त, ललित और संवेदनात्मक रूप वर्णन और सौंदर्य को विशेष बल देकर प्रस्तुत किया.

घनानंद, बोधा और ठाकुर रीतिमुक्त काव्य परंपरा के ऐसे प्रतिनिधि कवि हैं, जिनमें स्वच्छंद कल्पना का सौन्दर्य-वाद चरम शिखर पर पहुँचता दृष्टिगत होता है. कहा जाता है कि घनानंद ने छोटे-बड़े चालीस ग्रंथ लिखे थे. इनमें सबसे मुख्य है 'सुजान हित' और 'पदावली'. इनमें से कवि को अमर करने वाली रचना 'सुजान हित' ही है. जो एक प्रेम उपालंभ काव्य है. जिसे ब्रज भाषा प्रेमी 'सुजान सागर' कहते हैं.

2.6 सारबिंदु

- हिंदी काव्य के इतिहास का व्यवस्थित रूप लगभग तेरहवीं शताब्दी से माना जाता है. इस काल में विविध काव्यधाराओं और काव्यरूपों का विकास हुआ, जिनमें आदिकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल प्रमुख हैं.

- यूँ तो हिंदी साहित्य में आदिकाल का नामकरण और काल-विभाजन दोनों विवादग्रस्त विषय हैं फिर भी अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा दी गयी आदिकाल की समयसीमा वि.सं. 1050 से 1375 तद्नुसार सन् 993 ई. से सन् 1318 ई. यानी दसवीं शती के अंत से चौदहवीं शती के आरंभ तक स्वीकार की जा सकती है.
- सिद्धकाव्य साहित्य हिन्दी साहित्य के आदिकाल की एक महत्त्वपूर्ण काव्यधारा है, जिसका संबंध बौद्ध धर्म के वज्रयान और सहजान साधना-परंपरा से है.
- नाथपंथ का उत्कर्ष लगभग बारहवीं शताब्दी तक माना जाता है. इस संप्रदाय की परंपरा का संबंध मत्स्येन्द्रनाथ से जोड़ा जाता है, जिन्हें नाथपंथ का प्रवर्तक माना जाता है.
- जैन साहित्य की विशेषता यह है कि इसमें धर्मोपदेश, नैतिक शिक्षा, संयम, त्याग और अहंसा जैसे जीवन-मूल्यों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है. जैन कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से समाज को सदाचार, आत्मसंयम और आध्यात्मिक उन्नति की ओर प्रेरित करने का प्रयास किया.
- आदिकालीन हिंदी साहित्य में जहाँ एक ओर धार्मिक और वीरगाथात्मक काव्यधाराएँ विकसित हुई, वहीं दूसरी ओर लौकिक विषयों पर आधारित काव्य रचनाओं की भी एक स्वतंत्र प्रवृत्ति दिखाई देती है.
- भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का 'स्वर्ण युग' माना जाता है. इसका समय प्रायः विक्रम संवत् 1375 से 1700 तक स्वीकार किया जाता है.
- निर्गुण भक्ति की ज्ञानाश्रयी शाखा को संत काव्य भी कहा जाता है.
- भक्तिकाल में निर्गुण उपासक भक्तों की प्रेमाश्रयी शाखा उन सूफ़ी कवियों की है, जिन्होंने प्रेमगाथाओं के रूप में उन प्रेम तत्त्व का वर्णन किया है; जो ईश्वर को मिलाने वाला है तथा जिसका आभास लौकिक प्रेम के रूप में मिलता है.
- हिंदी की रामकाव्य परंपरा का विकास स्वामी रामानंद से माना जाता है. स्वामी रामानंद ने भक्ति के क्षेत्र में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन किये और राम की मर्यादा भक्ति को आदर्श और आचरण की पवित्रता से मण्डित रखते हुए जन साधारण के लिए सुगम बनाया.
- तुलसीदास रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवि माने जाते हैं, जिन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के शील, शक्ति और सौंदर्य से संकलित अद्भुत रूप का गुणगान करते हुए लोकमंगल की साधनावस्था के पथ को प्रशस्त किया.
- कृष्णभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि सूरदास हैं, जिन्होंने आचार्य वल्लभ से दीक्षा लेकर श्रीनाथ जी की सेवा में ही अपना जीवन बिताया,
- रीतिकाल का समय प्रायः विक्रम संवत् 1700 से 1900 तक माना जाता है.
- जो कवि रस, अलंकार आदि काव्यांगों के लक्षण, उदाहरण लिखने में ही अपनी काव्य शक्ति का उपयोग करते थे वे रीतिबद्ध कवि कहलाये.
- जिन कवियों ने लक्षण ग्रंथ नहीं लिखे लेकिन अपनी रचनाओं के लिए इन ग्रंथों से प्रेरणा अवश्य लेते रहे, उन कवियों को रीतिसिद्ध कवियों की श्रेणी में रखा गया.
- जिन कवियों ने न तो लक्षण ग्रंथ लिखें और ना ही वे रीतिकालीन परंपरा एवं प्रवृत्ति से प्रभावित हुए, बल्कि इसके विपरीत स्वतंत्र रूप से काव्य रचना करते रहे, उन कवियों को रीतिमुक्त कवि माना जाता है.

2.7 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

बोध प्रश्न

वस्तु निष्ठ प्रश्न.

(1) रीतिसिद्ध काव्य परंपरा के प्रमुख कवि इनमें से कौन हैं ?

(A) बिहारी (B) घनानंद (C) केशवदास (D) रसनिधि

(2) बिहारी की प्रमुख कृति कौन-सी है ?

(A) गाथा सप्तशती (B) आर्या सप्तशती

(C) अमरुक शतक (D) सतसई

(3) बिहारी सतसई किस प्रकार का काव्य-ग्रंथ है ?

(A) प्रबंध काव्य (B) मुक्तक काव्य (C) खंड काव्य (D) महाकाव्य

(4) रीतिमुक्त काव्य-धारा के प्रमुख कवि कौन हैं ?

(A) भूषण (B) पद्माकर (C) राम सहाय (D) घनानंद

(5) घनानंद को अमर बनाने वाली रचना इनमें से कौन-सी है ?

(A) रसिकप्रिया (B) कविप्रिया (C) सुजानहित (D) पदावली

- **निम्नलिखित प्रश्न के उत्तर विस्तार से दीजिए.**

1. हिन्दी साहित्य के आदिकाल की प्रमुख काव्यधाराओं का परिचय देते हुए सिद्धकाव्य, नाथकाव्य, जैनकाव्य, रासोकाव्य तथा लौकिक काव्य साहित्य की विशेषताओं का विवेचन कीजिए,
2. सिद्धकाव्य साहित्य की उत्पत्ति, प्रमुख कवि तथा उसकी भाषा-शैली और दार्शनिक आधार का विस्तार से वर्णन कीजिए.
3. नाथकाव्य साहित्य की पृष्ठभूमि स्पष्ट करते हुए उसके प्रमुख कवियों और साहित्यिक विशेषताओं का विश्लेषण कीजिए.
4. भक्तिकाल की काव्यधाराओं का वर्गीकरण करते हुए निर्गुण और सगुण काव्यधारा की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए.
5. निर्गुण काव्यधारा की ज्ञानाश्रयी तथा प्रेमाश्रयी शाखाओं का परिचय देते हुए उनके प्रमुख कवियों और काव्य-विशेषताओं का वर्णन कीजिए.
6. सगुण काव्यधारा के अंतर्गत रामभक्ति और कृष्णभक्ति शाखाओं की विशेषताओं का विवेचन कीजिए.
7. रीतिकाल की पृष्ठभूमि स्पष्ट करते हुए रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध तथा रीतिमुक्त काव्य की विशेषताओं का विवेचन कीजिए.
8. हिन्दी साहित्य के विकास में भक्तिकाल के महत्त्व का समालोचनात्मक विवेचन कीजिए.

- **टिप्पणी लिखिए.**

1. सिद्धकाव्य साहित्य
2. नाथकाव्य साहित्य

3. जैनकाव्य साहित्य
4. रासोकाव्य साहित्य
5. लौकिक काव्य साहित्य
6. निर्गुण काव्यधारा
7. ज्ञानाश्रयी शाखा
8. प्रेमाश्रयी शाखा
9. सगुण काव्यधारा
10. रामभक्ति शाखा
11. कृष्णभक्ति शाखा
12. रीतिबद्ध काव्य
13. रीतिसिद्ध काव्य
14. रीतिमुक्त काव्य

2.8 उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
2. हिंदी साहित्य की भूमिका, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
3. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
4. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
5. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
6. हिंदी साहित्य का इतिहास, नन्ददुलारे वाजपेयी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
7. हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, गणपति चन्द्र गुप्त, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
8. हिंदी साहित्य का सरल इतिहास, विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
9. इतिहास और आलोचना, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
10. हिंदी साहित्य का इतिहास, नंदकिशोर नवल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
11. हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, श्यामसुंदर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
12. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, रामकुमार वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
13. हिंदी साहित्य का इतिहास, नगेन्द्र (संपा.), नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
14. हिंदी साहित्य, भोलानाथ तिवारी, किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद
15. हिंदी साहित्य का इतिहास, सत्यदेव चौधरी, अलंकार प्रकाशन, नई दिल्ली

इकाई 3 हिन्दी काव्य का आदिकाल : युग परिचय एवं प्रवृत्तियाँ

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 आदिकाल नामकरण की समस्याएँ

3.4 आदिकाल : युग परिचय

3.5. आदिकालीन साहित्य

3.6 आदिकाल की प्रवृत्तियाँ

3.7 सार-बिन्दु

3.8 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

3.9 उपयोगी अध्ययन सामग्री

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- हिन्दी साहित्य के विकास क्रम से परिचित हो सकेंगे.
- प्रमुख इतिहास लेखकों द्वारा आदिकाल के काल विभाजन के बारे में जान सकेंगे.
- काल विभाजन और नामकरण के संबंध में विभिन्न विद्वानों और आचार्यों के मत जान पायेंगे.
- आदिकाल की युगीन परिस्थितियों का परिचय प्राप्त कर पायेंगे.
- आदिकाल के मुख्य कवियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे.
- आदिकालीन प्रवृत्तियों के विषय में जान सकेंगे.

3.2 प्रस्तावना

प्रिय छात्रों ! मनुष्यों और समाजों के इतिहास के समान ही प्रत्येक भाषा के साहित्य का अपना एक इतिहास होता है. इस में उस साहित्य के उद्‌भव, विकास, परिवर्तनों तथा प्रवृत्तियों का विवरण शामिल होता है. अध्ययन की सुविधा के लिए इतिहास को कुछ सिलसिलेवार कालों में बाँटा जाता है. किसी काल विशेष का वर्णन, उसमें शामिल प्रवृत्तियों आदि के आधार पर किया जाता है. हिन्दी साहत्यि के हजार वर्षों के इतिहास को मुख्य रुप से आदिकाल, मध्यकाल एवं आधुनिक काल में विभाजित किया गया है. इन कालों के नामकरण में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद रहा है. इस इकाई में हम हिन्दी साहित्य के आदिकाल के बातें में विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे. जिसमें हम आदिकाल के नामकरण के लेकर प्रमुख कवियों, उनकी प्रमुख रचनाओं एवं इस युग की मुख्य प्रवृत्तियों के बारे में विस्तृत अध्ययन करेंगे.

3.3 आदिकाल : नामकरण की समस्याएँ :

हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने 8वीं शताब्दी से 14वीं शताब्दी के मध्य तक के साहित्यिक प्रवाह को हिन्दी साहित्य के आरंभिक काल के रुप में पहचाना है. इसे समयावधि को विभिन्न विद्वानों ने विविध नामो की संज्ञाएँ दी है –

1. आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी - आदिकाल

2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - वीरगाथाकाल
3. मिश्रबंधु - प्रारम्भिक काल
4. महावीर प्रसाद द्विवेदी - बीजवपन काल
5. डॉ. रामकुमार वर्मा - संधि एवं चारण काल
6. राहुल सांकृत्यायन - सिद्ध सामंत काल
7. ग्रियर्सन - चारणकाल

आदिकाल :

आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने इस काल के साहित्य की अधिकांशतः संदिग्ध और अप्रमाणिक मानते हुए भी उसमें दो विशेषताओं को रेखांकित किया. नवीन ताजगी और अपूर्व तेजस्विता. इन दोनों विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए इस काल का नाम उन्होंने 'आदिकाल' रखा. अपने इस मत को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है कि – "वस्तुतः हिन्दी का आदिकाल शब्द एक प्रकार की भ्रामक धारणा की सृष्टि करता है और श्रोता के चित्त में यह भाव पैदा करता है कि वह काल कोई आदिम मनोभावापन परम्परा विनिर्मुक्त काव्य रुढ़ियों से अछूते साहित्य का काल है. यह ठीक नहीं है. यह काल बहुत अधिक परम्परा प्रेमी, रुढ़िग्रस्त और सचेत कवियों का काल है."

इस प्रकार वास्तव में 'आदिकाल' प्रारम्भ का न होकर परम्परा के विकास का सूचक है. इस नाम से सातवीं-आठवीं शताब्दी के बौद्ध, सिद्ध, नाथ-योगियों के सात वीरगाथा काव्यों और अब्दुर्रहमान, विद्यापति तथा खुसरो आदि की एक सूत्रता में समेटा जा सकता है और फुटकर कवियों के नाम गिनाने से बचा जा सकता है. आदिकाल नाम में हिन्दी काव्यरुपों एवं भाषा के अंकुरित होने का भाव भी आ जाता है. अतः यही नाम उपयुक्त ठहरता है. अधिकांश विद्वानों द्वारा भी 'आदिकाल' नाम ही मान्य रहा है.

3.4 आदिकाल : युग परिचय :

हिन्दी साहित्य के आरंभिक काल को 'आदिकाल' कहा जाता है. आदिकाल विविध और परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों का काल है. इस काल की समयावधि 10वीं शताब्दी से 14वीं शताब्दी तक की मानी जाती है. इस काल में वीर रस-प्रधान रचनाएँ लिखी गई, इसलिए आ. रामचंन्द्र शुक्ल ने इसे 'वीरगाथाकाल' नाम दिया है. यह काल नामकरण की दृष्टि से सर्वाधिक विवादित काल रहा है. इस काल में अपभ्रंश, डिंगल और पिंगल भाषा में साहित्य रचना होती थी.

- **आदिकालीन साहित्य की युगीन परिस्थितियाँ :**

आदिकालीन हिन्दी साहित्य की समस्याओं या प्रवृत्तियों का अध्ययन करने के लिए इसे कुछ वर्गों में विभक्त किया जा सकता है.

- **राजनीतिक परिस्थिति :**

यह युग राजनीतिक दुरावस्था, अस्त-व्यस्तता और गृह-कलह का युग था. एक और विदेशी आक्रमण की निरन्तर चलने वाली भीषण आँधियाँ थीं, तो दूसरी और राजाओं एवं सामन्तों की आपसी फूट तथा शत्रुता देश को खोखला कर रही थी. मुसलमान भी भारतीय राजाओं की आपसी कलह का लाभ उठाते थे. ऐसी स्थिति में जनता के सामने दो ही विकल्प रह गये थे, एक-युद्ध क्षेत्र में भुजबल का प्रदर्शन या दूसरा-निराश मन से आध्यात्मिकता को अपनाना. विदेशी आक्रमण भी इस दौर के शासन को प्रभावित कर रहे थे. हिन्दू सत्ता के क्षय होने एवं इस्लामी सत्ता के उदय होने के कारण कोई भी प्रवृत्ति साहित्य में प्रधान न हो सकी.

- **धार्मिक परिस्थिति :**

इस युग में धर्म के क्षेत्र में अराजकता विद्यमान थी. उत्तर भारत में ब्राह्मण धर्म, बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म की प्रधानता थी. इन धर्मों में अनेक बुराइयों का प्रवेश हो चुका था. शंकराचार्य के प्रयत्नों से बौद्ध धर्म बिखर चुका था. बौद्ध धर्म अनेक शाखाओं में बँट गया था. वह हीनयान, महायान, वज्रयान, सहजयान, मन्त्रयान आदि विभिन्न कर्मकांड प्रधान सम्प्रदायों में विभक्त होकर पतन की ओर अग्रेसर हो चुका था.

इस युग में बौद्ध धर्म के पतन के कारण ब्राह्मण धर्म पुनः प्रतिष्ठित हुआ, परन्तु उसमं भी अनेक बुराईयों ने प्रवेश पा लिया था. ब्राह्मण धर्म भी शैव और वैष्णव धर्म में विभाजित हो गया था. ब्राह्मण धर्म के पुनःप्रतिष्ठित होने से वर्ण-व्यवस्था फिर से जीवित हो उठी थी. हिन्दुओं में आचार-विचार, व्रत-पूजादि की भावना में वृद्धि हुई. हिन्दु समाज मं धर्म के नाम पर आड़म्बरों को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा. इस युग में ब्राह्मण अपने प्राचीन गौरव को खो बैठे थे.

- **सामाजिक परिस्थितियाँ :**

10वीं - 11वीं शती तथा इससे कुछ पहले ही भारतीय समाज वर्ण के आधार पर जातियों की कठोर व्यवस्था में जकड़ा हुआ था. इस समय कर्म के आधार पर नहीं, बल्कि जाति के आधार पर व्यक्ति को श्रेष्ठ अथवा निकृष्ट समझा जाता था. जातियों का वर्ग-भेद बढ़ता जा रहा था. समाज में छुआछूत की दुर्गन्ध बहुत अधिक मात्रा में फेल चुकी थी. हिन्दू समाज से बहिष्कृत लोग पुनः अपना धर्म नहीं अपना सकते थे. समाज विभिन्न प्रकार की रुढ़ियों से ग्रस्त था. सामन्तों की वीरता का दंभ समाज की छाती पर भयंकर विषधर बनकर लहराने लगा था. इस समय राजपूत वंश में स्वयंवर प्रथा प्रचलित थी. स्वयंवरों के अवसर पर वीरता और सम्मान के नाम पर अपहरण होते थे.

- **आदिकाल के अध्ययन संबंधी ऐतिहासिक ग्रंथ :**

प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषा के प्रभाव में हिन्दी का प्रारम्भिक चरण विकसित हुआ. हिन्दी साहित्य के इतिहास संबंधी निम्नलिखित ग्रंथों में इस प्राथमिक युग पर गहन विचार विमर्श मिलता है.

1.	गार्सा दा तासी	-	इस्तवार द ला लितरेत्युर ऐन्दुई ऐ ऐन्दुस्तानी
2.	शिवसिंह सेंगर	-	शिवसिंह सरोज
3.	सर जार्ज ग्रियर्सन	-	द माडर्न वर्नेक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान
4.	आ. रामचन्द्र शुक्ल	-	हिन्दी साहित्य का इतिहास
5.	आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी	-	हिन्दी साहित्य की भूमिका
6.	धीरेन्द्र वर्मा	-	हिन्दी साहित्य
7.	डॉ. नगेन्द्र	-	हिन्दी साहित्य का इतिहास

3.5 आदिकालीन साहित्य :

आदिकालीन साहित्य की समयावधि शुक्ल जी के मतानुसार संवत् 1050 (1993 ई.) से 1375 (1318 ई.) मानी गयी है, जो सर्वस्वीकृत है. अपभ्रंश साहित्य के साथ-साथ इस काल में एक नई दिशा का प्रवर्तन हुआ. हिन्दी के प्रथम कवि के रुप में 'सरहपा' या 'पुष्पदन्त' जैसे कवियों के नामोल्लेख हुए है. आदिकाल का साहित्य सदा ही एक खोज का विषय रहा है. आवश्यक आधार-सामग्री, लेखों, शिलालेखों, प्राप्त पांडुलिपियों आदि के सहारे विद्वानों की नामकरण आधारित चर्चा होती रही है. विद्वानों ने आदिकाल के जो विविध नामकरण

किये हैं, उससे यही संकेत मिलता, है कि आदिकाल वैविध्यपूर्ण रहा है. आदिकालीन साहित्य में विभिन्न दिशाओं में साहित्य सर्जन की अनुभूति होती है. इस समय का साहित्य मुख्यत: इन रुपों में मिलता है - सिद्ध-साहित्य, नाथ-साहित्य, जैन-साहित्य, चारण-साहित्य या रासो साहित्य इत्यादि.

1. सिद्ध और नाथ साहित्य :

बौद्ध धर्म की वज्रयान शाखा के अनुयायी उस समय सिद्ध के रुप में जाने जाते थे. सरहपा (सरोजपाद अथवा सरोजभद्र) को प्रथम सिद्ध और हिन्दी का भी प्रथम कवि माना जाता है. सिद्ध साहित्य के अन्य कवि एवं उनकी रचनाएँ इस प्रकार है – शबरपा (चर्यापद्, महामुद्रावज्रगीति), कण्हपा (गीतिका), डोम्भिपा (डोम्भिगीतिका, अक्षरद्विकोपदेश), भूसुकपा (बोधिचर्यावतार), आर्यदेवपा इत्यादि. इन कवियो ने अपनी वाणी के प्रचार हेतु जन-भाषा का प्रयोग किया. सिद्धों की भोग-प्रधान योग साधना की प्रतिक्रिया के फलस्वरुप नाथ पथियों में हठयोग साधना की शुरुआत हुई.

नाथ-साधु हठयोग पर विशेष बल देते थे. वे योगमार्गी थे. वे ईश्वर के निर्गुण, निराकार रुप को मानते थे. नाथ संप्रदाय में गोरखनाथ सबसे महत्त्वपूर्ण थे. ये सिद्ध मत्स्येन्द्र नाथ के शिष्य थे. इसके अतिरिक्त चौरंगीनाथ, गोपीचन्द, भरथरी, जालन्धर आदि नाथ पन्थ के प्रमुख कवि है. परवर्ती संत साहित्य पर सिद्ध और विशेषकर नाथ साहित्य का गहरा प्रभाव पड़ा.

2. जैन-साहित्य :

अपभ्रंश की जैन-साहित्य परंपरा का हिन्दी भाषा में भी प्रवर्तन हुआ है. उस समय के प्रख्यात कवियों में स्वयंभू, पुष्पदंत, धनपाल, हेमचंद्र, सोमप्रभ सूरी आदि है. जैन धर्म के प्रचार-प्रसार से युक्त इनकी रचनाओं में सामाजिक संदेशों के उपरांत जैनाचार्यों की महिमा का गान है. इस चरण की रचनाओं में प्रबंध काव्यों के साथ-साथ लघु खंड-काव्य तथा मुक्तक काव्य धारा का स्वरुप भी प्राप्त है. इस काल के जैन साहित्य में आगम, षट्खण्डागम, समयसार, प्रवचनसार, रत्नकरण्ड, श्रावकाचार, योगसार आदि का उल्लेख किया जा सकता है. इन रचनाकारों ने कथा काव्य, पुराण काव्य, चरित काव्य, राम काव्य आदि विविध प्रकार के ग्रंथ रचे हैं. इन्होंने हिन्दुओं में प्रचलित लोक कथाओं को भी अपनी रचनाओं का विषय बनाया.

3. रासो-साहित्य :

इन कायों की विषय-वस्तु मूल रुप से राजाओं के चरित तथा प्रशंसा है. इन काव्यों में श्रृंगार और वीर मुख्य रस थे. इस समय की प्रख्यात रचनाओं मं चंदबरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो', नरपति नाल्ह कृत 'बीसलदेव रासो', दलपति विजय कृत 'खुमाण रासो' (राजस्थानी हिन्दी), जगनिक कृत 'परमाल रासो', शार्गधर कृत 'हम्मीर रासो', नल्ह सिंह कृत 'विजयपाल रासो', जल्हण कवि कृत 'बुद्धिरासो' उल्लेखनीय है.

4. लौकिक साहित्य :

आदिकाल में स्वच्छन्द रुप से लौकिक विषयों पर ग्रन्थ लिखने की प्रवृत्ति भी मिलती है. इसके अंतर्गत ढोला मारु रा दूहा, जयचंद्र-प्रकाश, जयमयंक-जस चन्द्रिका, वसंत-विलास, अमीर खुसरो रचित 'खालिक बारी', खुसरो की पहलियाँ और मुकरियाँ प्रख्यात हैं. विद्यापति भी इसी समय के अंतर्गत हुए हैं, जिन्हें 'मैथिल कोकिल' भी कहा जाता है. विद्यापति की रचनाएं कीर्तिलता, कीर्तिपताका (अवहट्ट), विद्यापति पदावली (मैथिली) मिलती है. उनकी 'पदावली'

का मुख्य रस श्रृंगार माना जाता है. अन्य रचनाओं एवं रचनाकारों में हरप्रसाद शास्त्री का 'बौद्धगान ओ दोहा', धनपाल कृत 'भविसयत्तकहा', लक्ष्मीधरा कृत 'प्राकृत पैंगलम'का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है.

5. गद्य साहित्य :

राउलवेल (चम्पू काव्य), उक्ति व्यक्ति प्रकरण (दामोदर शर्मा) और वर्ण रत्नाकर (ज्योतिरीश्वर ठाकुर) आदि ग्रंथ उल्लेखनीय है.

इस प्रकार कहा जा सकता है कि आदिकाल का साहित्य हिन्दी का प्रारम्भिक चरण होने पर भी अपनी समृद्धता से समस्त हिन्दी साहित्य धारा को प्रभावित करते हुए प्रेरित करता रहा है. इस काल में अनेक कवियों का अमूल्य योगदान प्राप्त हुआ है.

3.6 आदिकाल की प्रवृत्तियाँ :

आ. रामचंन्द्र शुक्ल ने आदिकाल की प्रधान साहित्यिक प्रवृत्ति वीरंगाथात्मकता को माना है. इसके अलावा इस काल में निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ पाई जाती है.

(1) राष्ट्रीय भावना :

आदिकाल में राष्ट्रीयता की भावना अत्यन्त संकुचित थी. राजाओं के अलग-अलग राज्य हुआ करते थे. सौ-पचास गाँवों के साथ अपने राज्य को राष्ट्र समझने वाले राजाओं का अभाव नहीं था. संपूर्ण भारत को नहीं, बल्कि राज्य विशेष को ही राष्ट्र मान लिया जाता था.

(2) ऐतिहासिकता का अभाव :

आदिकाल के ग्रंथों में ऐतिहासिकता का अभाव पाया जाता है, इसका मूल कारण यह है कि तत्कालीन कवियों ने किसी न किसी राजा के आश्रित होने के कारण राजाओं की प्रशंसा और अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करने के लिए कई ऐसी घटनाओं का उल्लेख किया है जो उस काल में घटी ही न हो. इस काल में जो रचनाएँ प्राप्त होती है, वे अधिकांश संदिग्ध है और उनमें प्रक्षिप्त अंशों की अधिकता है. इस काल के कवि अपने आश्रयदाताओं के गुणगान के चक्कर में दरबारी कवियों ने ऐतिहासिक तथ्यों की अवहेलना की है. इन्होंने कल्पना को अधिक प्रश्रय देने के कारण तथ्यात्मकता तथा ऐतिहासिकता का अभाव मिलता है. कवियों की दृष्टि विशेष रूप से आश्रयदाता की ओर उन्मुख थी, अतः अपने समय, समाज कालखंड और सरोकार के लिए जरा भी सजग नहीं थे. चारण कवियों की अतिशयोक्तिपूर्ण ऐतिहासिकता का अभाव दिखाई पड़ता है अर्थात् इस काल में इतिहास के बारे में सही-सही जानकारी नहीं मिल पाती.

(3) जन-जीवन के चित्रण का अभाव :

चारण कवि अपने आश्रय दाताओं के गुण-गान में तल्लीन रहते थे. उनका आम आदमी, जन-जीवन से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं था. जन-जीवन सम्बन्धी संदर्भो का उल्लेख काव्य में नहीं के बराबर है. आम आदमी के सरोकार के प्रति-नीरसता दिखाई पड़ती है.

(4) डिंगल-पिंगल भाषा का प्रयोग :

अपभ्रंश और राजस्थानी भाषा के मिले-जुले रूप को 'डिंगल' नाम दिया गया है. इसी प्रकार तत्कालीन अपभ्रंश और व्रजभाषा के मेल से बनी भाषा को 'पिंगल' कहा जाता है. इस काल में रचित साहित्य में प्रायः सबी रचनाएँ इसी भाषा में मिलती है. डिंगल राजस्थान की साहित्यिक भाषा है. प्रायः सभी रचनाएँ राजस्थान में रची गई. इसीलिए डिंगल भाषा में इनका लिखा जाना स्वाभाविक है. डिंगल भाषा में वीर रस के भावों को व्यक्त करने की अद्‌भुत क्षमता विद्यमान है. इस कारण आदिकाल में इस भाषा का अत्यधिक प्रयोग मिलता है.

(5) प्राकृतिक चित्रण :

आदिकालिन काव्य में देखा जाएँ तो युद्ध वर्णन की प्रधानता रही. फिर भी तत्कालीन कवियों ने कहीं-कहीं प्रकृति का आलम्बन और उद्दीपन रुप में सुंदर चित्रण किया है. उनके प्रकृति चित्रण में नगर, पर्वत, वन, नदी आदि की प्रधानता रही है. परिगणन शैली में प्रकृति का चित्रण करने को कारण कुछ जगहों पर निरसता और शुष्कता आ गयी है.

(6) युद्ध वर्णन में सजीवता :

आदिकाल भीतरी कला एवं बाहरी आक्रमणों का युग था. रासो ग्रंथों में किये गये युद्ध वर्णन सजीव प्रतीत होते है. रासो काव्य ग्रंथों में जहाँ-जहाँ युद्ध का वर्णन मिलता है वहाँ-वहाँ ऐसा प्रतीत होता है जैसे कवि युद्ध का आँखों देखा हाल सुना रहा है. चारण कवि ज़रूरत पड़ने पर राजाओं के साथ युद्ध में भी जाते थे और तलवार भी चलाते थे. युद्ध के दृश्यों को उन्होंने अपनी आँखों से देखा था, अतः उनके द्वारा कियागया युद्ध-वर्णन भी अत्यंत सजीव लगता है. युद्ध की विभीषिका को इन कवियों ने अनुभव किया था अतः इन युद्ध वर्णनों में जो कुछ भी कहा गया है, वह उनकी वास्तविक अनुभूति है. आदिकालीन कविता में योद्धाओं के उमंग, मनोदशा एवं उनके क्रियाकलापों का सुंदर वर्णन मिलता है.

(7) प्रामाणिकता का अभाव :

आदिकाल के अधिकांश रासो कवियों की प्रामाणिकता संदिग्ध है. पृथ्वीराज रासो को इस काल ही प्रमुख रचना माना जाता है लेकिन उसे पूर्णतः प्रामाणिक रचना नहीं माना जाता. उसकी प्रामाणिकता को लेकर कई विद्वानों को संदेह है. आ. रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, "इसके अतिरिक्त और कुछ कहने की जगह नहीं कि यह पूरा ग्रंथ वास्तव में जाली है." इसी तरह परमाल रासो और खुमान रासो की प्रामाणिकता में भी सन्देह है.

(8) कल्पना की प्रचुरता :

राजाओं के अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करने के लिए आश्रित कवियों ने अपनी कल्पनाशक्ति का प्रयोग किया. अपनी कल्पना शक्ति के माध्यम से कई बार तो इन कवियों ने शत्रुओं के वास्तविक गुणों को छुपा दिया, तो कई बार अपने आश्रयदात राजाओँ की कमियों को. अतः कह सकते हैं कि आदिकालीन रचनाओँ में कल्पना का प्राचुर्य देखने को मिलता है.

(9) आश्रयदाताओं की प्रशंसा :

इस युग के अधिकांश कवि किसी न किसी राजा के आश्रित थे. दरबारी कवि होने के कारण अपनी रचनाओं में अधिकांशतः वे अपने आश्रयदाता राजाओं की वीरता, दानशीलता, धर्म परायणता, एश्वर्य स्तुति का ओजपूर्ण शैली में गान किया करते थे. यह सब सत्य से कोसों दूर अतिशयोक्तिपूर्ण होता था.

(10) संदिग्ध रचनाएँ :

आदिकाल में रची गयी अधिकांश रचनाओँ की प्रामाणिकता-अप्रमाणिकता पर विद्वानों के मतभेद रहे हैं. इस काल की अधिकतम रचनाओँ के प्रमाण प्राप्त न होने के कारण इन्हें प्रामाणिक, अर्ध प्रामाणिक या अप्रामाणिकता की श्रेणी में रखा गया है. कई प्रसिद्ध ग्रंथ जैसे बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, खुमाण रासो अप्रामाणिकता के घेरे में है.

(11) धार्मिक साहित्य :

आदिकालीन साहित्य जैन, सिद्ध और नाथ सम्प्रदायों के द्वारा धार्मिक साहित्य लेखन की भी अनुभूति देता है. इन रचनाकारों ने उपदेशात्मक, नीतिपरक और जीवन-दर्शन से युक्त काव्य भी लिखे. बौद्ध, जैन, सिद्ध और नाथ साहित्य मं उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति है.

(12) सम्प्रदाय निरपेक्ष साहित्य :

अमीर खुसरो, विद्यापति जैसे कवियों के द्वारा जो काव्य लिखे गए हैं, उन्हें सम्प्रदाय

निरपेक्ष साहित्य माना जा सकता है. अमीर खुसरों को खड़ीबोली हिन्दी का पहला कवि माना जाता है. स्वान्तः सुखाय के उद्देश्य से लिखे गये साहित्य में भी आदिकाल की विशेष पहचान उपस्थित हुई है.

(13) विशिष्ट काव्य शैली :

इस युग में मुख्यतः प्रबंध काव्यों की रचनाएँ हुई, जिसमें 'पृथ्वीराज रासो' का नाम लिया जा सकता है. इसके अतिरिक्त बीसलदेव रासो जैसे मुक्तक काव्य भी लिखे गए हैं. 'राउलवेल' नामक चम्पू काव्य (गद्य-पद्य मिश्रित) भी लिखा गया है. संवाद शैली, डिंगल और पिंगल काव्य शैलियाँ भी प्रचलित थी. आदिकालीन हिन्दी साहित्य में वीररस की रचनाओं के लिए डिंगल शैली का तथा कोमल भावों की अभिव्यक्ति के लिए पिंगल शैली का प्रयोग किया जाता था. पिंगल शैली व्रज भाषा में विगलित हो गयी, परन्तु जो डिगंल की राजस्थानी भाषा का पर्याय मानते हैं वे भूल करते है.

(14) भाषा :

इस युग की वीरगाथात्मक रासक रचनाओं में राजस्थानी मिश्रित अपभ्रशं (डिंगल) भाषा का प्रयोग दृष्टव्य है. मैथिली मिश्रित अपभ्रंश भाषा का स्वरुप भी विद्यापति की 'पदावली' और 'कीर्तिलता' में दिखायी पड़ता है. अमीर खुसरो की पहेलियों एवं मुकरियों में आरम्भिक खड़ी बोली का प्रयोग देखने को मिलता है.

(15) विविध छंद और अलंकारों का प्रयोग :

भाषा-साहित्य में विविध अलंकार जैसे कि उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि का प्राधान्य रहा तथा छन्दों मं आल्हा, दोहा, तोटक, तोमर, गाथा, रोला-छप्पय आदि बहुतायत में प्रयुक्त हुए.

(16) वीर एवं श्रृंगार रस की प्रधानता :

युद्धों का यथार्थ चित्रण होने के कारण राजाओं की वीरता का ओजपूर्ण वर्णन कवियों ने किया है. वीररस आदिकाल की प्रमुख प्रवृत्ति रही है. वीररस के अतिरिक्त श्रृंगार रस की भी प्रधानता तत्कालीन साहित्य में देखने को मिलती है.

3.7 सार-बिंदु

- आदिकाल हिन्दी साहित्य का प्रारंभिक काल माना जाता है.
- हिन्दी साहित्येतिहास में आदिकाल के नामकरण को लेकर सर्वाधिक विवाद है.
- आदिकाल की समय सीमा 1050 से 1375 ई. तक की मानी गई है.
- हिन्दी साहित्य का आदिकाल अनेक दृष्टियों से सन्धिकाल है. भाषा और साहित्य दोनों दृष्टियों से यह संक्रान्ति का काल है.
- आदिकाल का हिन्दी साहित्य अनेक बोलियों का साहित्य प्रतीत होता है.
- इस युग की प्रधान प्रवृत्ति वीरगाथात्मक रही है, इसीलिए शुक्ल जी ने इसे 'वीरगाथाकाल' नाम दिया है.
- अधिकार कवि राजाओं के दरबार में रहते थे और उन्हीं की प्रशंसा में काव्य रचते थे. साहित्य राजाओं के पराक्रम और त्याग को प्रतिष्ठित करता है.
- इस काल की कई रचनाएँ ऐसी है जिनके लेखक ज्ञात नहि है. 'पृथ्वीराज रासो' जैसे ग्रंथों का मूल रचनाकार विवादित है.
- इस काल मं जो रचनाएँ प्राप्त होती है, वे अधिकांश संदिग्ध है और उनमें प्रक्षिप्त अंशों की अधिकता है.

- चारण कवि अपने आश्रय दाताओं के गुण-गान में तल्लीन रहते थे उनका आम आदमी, जन-जीवन से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं था.
- डिंगल भाषा में वीर रस के भावों को व्यक्त करने की अद्‌भुत क्षमता विद्यमान है इस कारण आदिकाल में इस भाषा का अत्याधिक प्रयोग मिलता है.
- युद्ध की विभीषिका को आदिकालीन कवियों ने अनुभव किया था अतः इन युद्ध वर्णनों में जो कुछ भी कहा गया है, वह उनकी वास्तविक अनुभूति है.
- राजाओं के अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करने के लिए आश्रित कवियों ने अपनी कल्पा शक्ति का प्रयोग किया.
- बौद्ध, जैन, सिद्ध और नाथ साहित्य में उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति पाई गई है.
- अमीर खुसरो, विद्यापति जैसे कवियों के द्वारा जो काव्य लिखे गए हैं, उन्हें सम्प्रदाय निरपेक्ष साहित्य माना जा सकता है.
- इस युग की वीरगाथात्मक रासक रचनाओं में राजस्थानी मिश्रित अपभ्रंश (डिंगल) भाषा का प्रयोग दृष्टव्य है.
- वीर रस के अतिरिक्त शृंगार रस की भी प्रधानता तत्कालीन साहित्य में देखने को मिलती है.

3.8 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली :

- **विस्तृत उत्तरीय प्रश्न :**
  - (1) आदिकाल के नामकरण संबंधी विभिन्न विद्वानों के मत पर विचार कीजिए.
  - (2) हिन्दी साहित्य के आदिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए.
  - (3) आदिकालीन साहित्य की युगीन परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए.
  - (4) आदिकाल को 'वीरगाथाकाल' क्यों कहा जाता है ? सविस्तार समझाइए.
  - (5) आदिकाल का युग परिचय देते हुए आदिकाल के प्रमुख कवियों के बारे में संक्षिप्त जानकारी दीजिए.
- **बहुविकल्पीय प्रश्न :**
  - (1) आदिकाल का समय कब से कब तक का माना जाता है ?
    - (A) 1050 से 1375 ई.
    - (B) 1050 से 1400 ई.
    - (C) 1050 से 1475 ई.
    - (D) 1050 से 1500 ई.
  - (2) आदिकाल को 'वीरगाथाकाल' किसने कहा ?
    - (A) हजारी प्रसाद द्विवेदी
    - (B) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
    - (C) बच्चन सिंह
    - (D) महावीरप्रसाद द्विवेदी
  - (3) अपभ्रंश और राजस्थानी के मेल से बनी भाषा को क्या कहा जाता है ?
    - (A) संधा भाषा
    - (B) सघुक्कडी भाषा
    - (C) डिंगल भाषा
    - (D) पिंगल भाषा

(4) राहुल साकृत्यायन ने आदिकाल के लिए क्या नाम दिया है ?

(A) प्रारंभिक काल

(B) सिद्ध सामंत काल

(C) वीरगाथा काल

(D) चारण काल

(5) निम्न में से कौन-सी आदिकाल की प्रवृत्ति नहीं है ?

(A) कल्पना की प्रचुरता

(B) ऐतिहासिकता का अभाव

(C) भक्ति भावना

(D) आश्रयदाताओं की प्रशंसा

(6) आदिकाल में मुख्य रुप से कौन-से रस का काव्य लिखा गया ?

(A) वीर

(B) वात्सल्य

(C) शांत

(D) करुण

(7) हीनयान किस धर्म की शाखा है ?

(A) सिख

(B) बौद्ध

(C) हिन्दु

(D) जैन

(8) 'पदावली' किस कवि की रचना है ?

(A) अमीर खुसरो

(B) विद्यापति

(C) चंदबरदायी

(D) नरपति नाल्ह

(9) निम्न में से किस रचना में आल्हा और ऊदल नाम के दो योद्धाओं की वीरता का वर्णन मिलता है ?

(A) खुमान रासो

(B) हम्मीर रासो

(C) परमाल रासो

(D) पृथ्वीराज रासो

(10) निम्न में से किसे खड़ीबोली हिन्दी का पहला कवि माना जाता है ?

(A) अमीर खुसरो

(B) विद्यापति

(C) जगनिक

(D) अब्दुर्रहमान

3.9 उपयोगी अध्ययन सामग्री :

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, डॉ. बच्चनसिंह
3. हिन्दी साहित्य स्वरूप एवं संवेदना का विकास, डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी
4. हिन्दी साहित्य की भूमिका, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
5. हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास, डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी
6. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

इकाई 4 आदिकालीन कविता : पृथ्वीराज रासो

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 आदिकालीन कविता का परिचय

4.3.1 आदिकालीन कविताओं की विशेषताएँ

4.3.2 आदिकालीन काव्य में रासो साहित्य

4.4 पृथ्वीराज रासो का परिचय

4.4.1 पृथ्वीराज रासो का रचनाकार और रचनाकाल

4.4.2 पृथ्वीराज रासो का मूल पाठ

4.4.2.1 अन्य शिक्षा एवं राज्याभिषेक

4.4.2.2 पृथ्वीराज एवं संयोगिता की प्रेम कथा और अपहरण की घटना

4.4.2.3 पृथ्वीराज और मोहम्मद गौरी के बीच (तराइन का प्रथम युद्ध एवं द्वितीय युद्ध)

4.4.2.4 पृथ्वीराज को बंधक बनाना

4.4.2.5 मोहम्मद गौरी की मृत्यु

4.4.3 पृथ्वीराज रासो की प्राथमिकता एवं ऐतिहासिकता

4.4.4 पृथ्वीराज रासो की विशेषताएँ

4.4.5 पृथ्वीराज रासो के काव्यरुप की भाषा

4.5. सार बिन्दु

4.6 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

4.7 सहायक पाठ्य सामग्री

4.1 उद्देश्य

आप बी. ए. ऑनर्स के लिए द्वितीय वर्ष के प्रथम सेमेस्टर पाठ्यक्रम में प्रश्नपत्र की चौथी इकाई का अध्ययन आरंभ करने जा रहे हैं, जिसमें आदिकालीन कविता का परिचय और चंद्रवरदाई कृत पृथ्वीराज रासो का अध्ययन आप कर पाएंगे इस इकाई को पढ़ने बाद आप –

- आदिकालीन कविताओं के बारे में समझ पाएंगे.
- पृथ्वीराज रासो की मूल कथा (रूप) को समझ पाएंगे.
- पृथ्वीराज रासो की प्रमाणिकता एवं ऐतिहासिकता को समझ पाएंगे.
- पृथ्वीराज रासो की विशेषताओं से अवगत होंगे.
- पृथ्वीराज रासो की काव्य भाषा समझ पाएंगे.

4.2 प्रस्तावना

भारत में कविताओं का इतिहास बहुत प्राचीन है, हमारे यहाँ सभी प्राचीन ग्रंथ आपको

काव्य में ही मिलेंगे काव्य की विकास धारा को समय की सीमा में रखते हुए हिन्दी साहित्य के इतिहास को मुख्यतः तीन युगों में बांटा गया है. आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल. इन तीनों युगों में सबसे प्रारंभिक और महत्त्वपूर्ण युग है. आदिकाल जिसे वीरगाथा काल के नाम से भी जाना जाता है. हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आदिकाल विक्रम संवत 1050 से 1375 ई. तक मध्यकाल, 1375 ई. से 1700 ई तक एवं 1900 से वर्तमान काल तक अवधि को आधुनिक काल कहा है. यह स्पष्ट है कि हिन्दी साहित्य की हजारों वर्ष से बहती हुई अमृत काव्य धारा को विद्धानों ने कालों में वर्गीकृत कर दिया है.

4.3 आदिकालीन कविता का परिचय

प्राकृत अपभ्रंश भाषा के प्रभाव से हिन्दी के प्रारंभिक काल को आदिकाल के नाम से पहचाना जाता है. जिसके अंदर भिन्न-भिन्न पथो एवं संप्रदायों के काव्य निहित है. यूं तो हिन्दी साहित्य में आदिकाल का नामकरण और काल विभाजन दोनों ही विवाद ग्रस्त विषय है फिर भी अध्ययन में सरलता रहे इस दृष्टि से आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने निर्धारित की समय सीमा 1050 से 1375 तक को स्वीकृत किया है. आदिकाल का नाम शुक्ल जीने वीरगाथा काल रखा क्योंकि इस काल में वीरगाथाओं की रचना प्रवृत्ति की प्रधानता अधिक थी. इस पर कई विद्धानों ने आपत्ति भी जताई अतः आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा दिए गए आदिकाल नम को सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया.

इस काल का साहित्य हमेशा एक खोज के विषय में सामने आया हे. विद्धानों ने आदिकाल के जो भिन्न-भिन्न नामकरण किए है उसमें से यह संकेत मिलता है कि यह वैविध्यपूर्ण रहा होगा. आदिकालीन कविता हिन्दी साहित्य के इतिहास में सबसे पुरानी कविताएं हैं. जो लगभग आठवीं से 14वीं शताब्दी तक की अवधि में लिखी गई थी. इस काल की कविताओं में वीरगाथा भक्ति एवं प्रेम की भावनाएँ अधिक दिखाई देती है. हिन्दी के प्रथम कवि के रूप में 'सरहपा' या 'पुष्प दन्त' जैसे कवियों के नाम का उल्लेख इसी काल मं देखने को मिलता है.

4.3.1 आदिकालीन कविताओं की विशेषताएँ :

आदिकालीन कविताओं की विशेषताओं की हम इस तरह से निम्नांकित कर सकते हैं.

1. यह काल राजाओं, शूरवीरों और युद्धों का युग था. इसलिए साहित्य में वीरता, शौर्य और देशभक्ति का प्रमुख स्थान था.
2. यहाँ पर अधिकांश रचनाएं राजाओँ के दरबार में चारणो और भाटो द्वारा कही और गाई जाती थी.
3. इन रचनाओं का मुख्य उद्देश्य राजाओं की बहादुरी और कीर्ति का गुणगान करके उसे जनमानस तक पहुँचाना था. इस वजह से ही इस काल की रचनाओं को वीरगाथा काव्य कहा गया है.
4. काव्य में वीरता और शौर्य के वर्णन के साथ-साथ श्रृंगार रस (प्रित एवं सौंदर्य) का भी चित्रण मिलता है.
5. युद्धों का रोमांचित वर्णन एवं प्रेम कहानियों का चित्रण इन काव्यों में प्रचुर मात्रा में दिखाई देता है.

4.3.2 आदि कालीन काव्य में रासो साहित्य :

रासो साहित्य में कवियों ने राजाओं की वीरता के साथ-साथ उनके मनोरंजन और

आनंद को भी वर्णित किया है. लड़ाई और प्रेम से युक्त ऐसे काव्यों को रासो काव्य कहा गया है. रासो काव्य की सबसे प्रमुख कृति चंदबरदाई कृत पृथ्वीराज रासो है जो हिन्दी का प्रथम महाकाव्य है.

रासो साहित्य की विषय वस्तु मूल रूप से राजाओं के चरित्र का गुणगान करना एवं उनकी प्रशंसा करना है. आदिकालीन कविताओं की प्रसिद्ध रचनाओं में चंदबरबाई कृत पृथ्वीराज रासो, अब्दुर्हमान का संदेश रासक जो की एक प्रेम काव्य है, परमाल रासो जगनिक द्वारा रचित है नरपति नालह कृत बीसलदेव रासो, जय नायक कृत हम्मीर रासो, दलपति विजय कृत खुमाण रासो, अज्ञात कवि आल्हा-खंड़ा इन सभी में सबसे प्रसिद्ध रचना है पृथ्वीराज रासो.

यहां पर हम चंदबारदाई कृत पृथ्वीराज रासो जी की एक उल्लेखनीय रचना है उसका अध्ययन करेंगे यह रचना हिन्दी साहित्य के प्रथम महाकाव्य के रूप में भी प्रतिष्ठित है.

4.4 पृथ्वीराज रासो का परिचय :

पृथ्वीराज रासो चंदबरदाई द्वारा रचित महाकाव्य है. जो पृथ्वीराज चौहान के जीवन और चरित्र पर आधारित है. ब्रजभाषा में लिखा गया यह महाकाव्य हिन्दी भाषा का पहला महाकाव्य माना जाता है. इसके अंदर ऐतिहासिक तथ्यों और काल्पनिक कथाओं का मिश्रण है यह एक वीर रस प्रधान रचना है जो कि पृथ्वीराज चौहान के जीवन की घटनाओं, युद्धों और प्रेम प्रसंगो को दर्शाता है.

इसमें पृथ्वीराज चौहान और शहाबुद्दीन के संघर्ष की कहानी, अद्‌भुत सुंदरी पद्मावती की कहानी, पृथ्वीराज एवं संयोगिता के स्वयंवर प्रसंग की कहानी का काव्य में बहुत ही सुंदर ढंग से वर्णन किया गया है.

बल्कि यहां पर संयोगिता की प्रेम कथा और अपहरण की कथा काव्य में बाद में जोड़ी गई कल्पना मानी जाती है. इसका उल्लेख मूल पाठ में नहीं है, बल्कि यही घटना अत्यंत नाटकीय और प्रसिद्ध है. चंदवरदाई की कृति इस समय की एक महत्त्वपूर्ण रचना है. पृथ्वीराज रासो के अंदर 69 खंड है इसमें अनेक रोमांचक वीरतापूर्ण और काव्यात्मक प्रसंग है जो पृथ्वीराज चौहान के जीवन और चरित्र को नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करते हैं.

4.4.1 पृथ्वीराज रासो का रचनाकार और रचनाकाल :

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने पृथ्वीराज रासो को हिन्दी का प्रथम महाकाव्य माना है. आदिकाल युग की सबसे महत्त्वपूर्ण यह रचना मात्र एक महाकाव्य ही नहीं एक कविता नहीं बल्कि एक युग का दस्तावेज है. इसकी रचना चंद्रवरदाई ने की थी. जो की चौहान वंश के महान सम्राट, पृथ्वीराज चौहान के दरबारी कवि, मित्र और विश्वासपात्र सलाहकार थे. उसका जीवन ही पृथ्वीराज को गाथा से जुड़ा रहा है. चंदवरदाई राजस्थान के रहने वाले एक ब्राह्मण कवि थे उनके बारे में कहा जाता है कि चंदवरदाई ने इस रचना को पृथ्वीराज की मृत्यु के पश्चात एक भावनात्मक प्रतिक्रिया के रूप में लिखा. जिससे कि पृथ्वीराज चौहान की वीरता को इतिहास और जन मानस में अमर किया जा सकें.

चंदवरदाई निश्चित तौर पर एक ऐतिहासिक पुरुष थे. उन्होंने पृथ्वीराज के कीर्ति कलापों का वर्णन एवं गुणगान करने के लिए प्राकृत भाषा में पृथ्वीराज रासो काव्य की रचना की वैसे भी रासो काव्य की विषय वस्तु का मूल संबंध ही राजाओं के चरित्र तथा प्रशंसा से है. राजाओं की वीरता के साथ-साथ उनके आनंद प्रमोद का भी इसमें वर्णन किया गया है.

पृथ्वीराज चौहान की रचनाकाल की यदि हम बात करते हैं तो यह हमेशा विवादों से घिरा रहा है. आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी इसे पृथ्वीराज चौहान के समय का काव्य नहीं

मानते. पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी का मानना है कि रासों का वर्तमान रुप अधिक से अधिक 70वीं शताब्दी के मध्य का होगा. पृथ्वीराज रासो के एक महत्त्वपूर्ण संपादक डॉ. माता प्रसाद गुप्त के अनुसार सभी दृष्टियों से पृथ्वीराज रासो की रचना संवत 1400 के लगभग हुई मानी जा सकती है. इससे पूर्व नहीं.

अपभ्रंश विद्वान मुनि जिन विजय जी ने संग्रह के अंश जयचंद प्रबंध ही में से चार ऐसे छप्पयों की खोज की जो चंद के नाम से है. इन्हीं में से तीन छप्पयें पृथ्वीराज रासों में कुछ थोड़े बहुत प्रवर्तित रुप में मिल जाते हैं. पुरातन प्रबंध संग्रह का संकलन 14वीं शताब्दी में हुआ था. इस वजह से इसमें संकलित छप्पय इसके पहले के होने चाहिए. अर्थात् इसका रचनाकार 12वीं शताब्दी के लगभग का होना चाहिए. इसी आधार पर मुनि जी ने अपने विचार बताते हुए यह प्रमाणित किया था.

पृथ्वीराज रासों को प्रारंभ में एक सीमित आकार में रचा गया था. लेकिन बाद मं विभिन्न कवियों अनुयायियों और राज दर बारी ने इसे विस्तार देकर अनेक संस्करण में विभाजित कर दिया. इस कारण आज इसकी मूल और प्रवर्तित रचना में अंतर पाया जाता है, लेकिन सभी संस्करणों का मूल्य उद्देश्य तो एक ही है पृथ्वीराज चौहान की वीरता और चंद्रवरदाई की मित्रता को अमर बनाना.

4.4.2 पृथ्वीराज रासो का मूलपाठ :

पृथ्वीराज रासो का मूल रुप हमारे हिन्दी साहित्य के वीरगाथा काल की एक अद्वितीय कृति है. इसका मूल रुप बहुत ही संक्षिप्त, काव्यात्मक और वीर रस प्रधान कतु समय के साथ साथ इसमें कई विस्तार और परिवर्तन हुआ. मूल रुप में केवल निम्नलिखित प्रसंगो का वर्णन था.

- पृथ्वीराज का जन्म और शिक्षा
- प्रारंभिक युद्ध और वीरता प्रदर्शन
- मोहम्मद गौरी से युद्ध मुख्यत (तराइन का युद्ध)
- बंदी बनाए जाने के बाद चंदबरदाई का दरबार पहुंचना
- शब्द भेदी बाण से पृथ्वीराज द्वारा गौरी का वध
- चंदवरदाई और पृथ्वीराज दोनों की वीरगति

पृथ्वीराज रासो के मूल पाठ को समझने के लिए हम उसमें निहित सभी प्रसंगो और घटनाओं को क्रम से समझने की कोशिश करेंगे. सर्वप्रथम पृथ्वीराज चौहान के जन्म और बचपन, उनका विवाह, मोहम्मद गौरी से युद्ध और मृत्यु, चंदवरदाई की मृत्यु आदी प्रसंगों की संक्षिप्त में चर्चा करेंगे.

4.4.2.1 जन्म, शिक्षा एवं राज्याभिषेक :

अजमेर नरेश सोमेश्वर और कपूरी देवी के पुत्र पृथ्वीराज चौहान जो की बाल्यावस्था से ही तेजस्वी, पराक्रमी और बुद्धिमान थे. उन्होंने अपनी शिक्षा गुरु हरिहराचार्य के सानिध्य में रहकर प्राप्त की थी. पिता के निधन के बाद बहुत ही कम उम्र में उनका राज्याभिषेक कर दिया गया था. पिता की गद्दी संभालने के बाद उन्होंने अपने शौर्य बल का परचम चारों तरफ लहराते हुए उन्होंने कई युद्धों में विजय प्राप्त की और उनकी प्रसिद्धि चारों दिशाओ में फैल गई.

4.4.2.2 पृथ्वीराज एवं संयोगिता की प्रेम कथा और अपहरण की घटना :

कन्नौज नरेश जयचंद की पुत्री संयोगिता का चित्र देखकर पृथ्वीराज उससे प्रेम कर

बैठते है. इधर संयोगिता भी पृथ्वीराज के शौर्य से प्रभावित होकर उन्हें मन ही मन अपना वर मान लेती है. कन्नौज नरेश जयचंद अपनी पुत्री संयोगिता के स्वयंवर की घोषणा करते है, परंतु पृथ्वीराज से नाराज होने की वजह से उन्हें आमंत्रित नहीं करते एवं उनको अपमानित करने के लिए उनकी मूर्ति पहरेदार के रुप में दरवाजे पर रखवा देते है. परंतु मन ही मन जिसे संयोगिता वर चुकी है ऐसे पृथ्वीराज की मूर्ति को वह वरमाला पहना दैती है. वहां पर छुप कर बैठे हुए पृथ्वीराज संयोगिता को रथ में बैठाकर अपहरण करके दिल्ली ले जाते है. इस घटना का दृश्य काव्य अत्यंत मनोहरी और नाटकीय है. कन्नौज नरेश जयचंद इसे अपना अपमान समझते हें और इस घटना के बाद वे पृथ्वीराज के और अधिक शत्रु बन जाते है. पृथ्वीराज को हराने के लिए वह इतनी हर तक गिर जाते है कि वह मुस्लिम आक्रमणकारी मोहम्मद गौरी का साथ देते है.

4.4.2.3 पृथ्वीराज और मोहम्मद गौरी के बीच (तराइन का प्रथम युद्ध एवं द्वितीय युद्ध) :

तराइन का प्रथम युद्ध (1191) में पृथ्वीराज और मोहम्मद गौरी के बीच होता है. जिसमें पृथ्वीराज की राजपूत सेना में गौरी की तुर्की घुड़सवार सेना को बुरी तरह से हार का सामना करना पड़ा. गौरी गंभीर रुप से घायल हो गया और युद्ध क्षेत्र से भाग खड़ा हुआ. वहां पर पृथ्वीराज चौहान की दया भाव हमें विशेष रुप से दिखाई देता है वे चाहते तो मोहम्मद गौरी को बंदी बना सकते थे, परंतु उन्होंने उसे क्षमा करके छोड़ दिया. उनकी यही दया बाद में उन्हें बहुत भारी पड़ी.

तराइन के दूसरे युद्ध 1192 में गौरी ने अपनी प्रथम हार से सबक लेकर नई युद्ध नीतियों के साथ फिर से पृथ्वीराज पर चढ़ाई कर दी इस समय जयचंद जैसे कितने ही गद्दार राजाओं ने उसका साथ दिया और पृथ्वीराज की तैयारी के बारे में उनसे जानकारी प्राप्त कर ली. जिसके फल स्वरुप पृथ्वीराज की हार हुई और गौरी उन्हें बंदी बनाकर गजनी ले गया.

4.4.2.4 पृथ्वीराज को बंधक बनाना :

पृथ्वीराज को बंधक बनाकर मोहम्मद गौरी अपने साथ गजनी ले गया. गौरी ने अपमान और प्रतिशोध की ज्वाला में जलते हुए पृथ्वीराज की दोनों आँखें अपने सैनिकों से कहकर फोड़ दी. चंदवरदाई जो की पृथ्वीराज के राज कवि के साथ-साथ उनके मित्र भी थे वह ऐसे समय में मित्र का साथ कैसे छोड़ देते वह भी गुप्त रूप से गजनी पहुँच गए.

4.4.2.5 मोहम्मद गौरी की मृत्यु :

रासों के अनुसार चंदरबरदाई ने पृथ्वीराज की वीरता को आखरी बार जगाने के लिए एक योजना बनाई. उन्होने गौरी से कहा - "पृथ्वीराज चौहान बाण विद्या में इतने निपुण है कि वह अवाज से लक्ष्य को भेद सकते है." जब गौरी ने यह देखने कि इच्छा जताई तब पृथ्वीराज से संकेत में कहा –

"चार बाँस चौबीस गज अंगुल अष्ट प्रमाण ता ऊपर सुल्तान है मत चूको चौहान." इसको सुनते ही अंधे पृथ्वीराज जो धनुर्विद्या में शब्द भेदी बाण चलाने में निपुण थे केवल ध्वनि के सहारे गौरी को लक्ष्य करके बाण चला दिया और गौरी की मृत्यु हो गई. चंदबरदाई ने पृथ्वीराज को गौरी कहां बैठा है उसकी जगह अपने दोहे के जरिए इशारे से बताई थी.

अंत में शत्रु का अंत करके चंदबरदाई और दोनों पृथ्वीराज ने ही स्वयं को बलिदान कर दिया. पृथ्वीराज रासो का यह दृश्य वीरता काव्य और मित्रता का अद्वितीय उदाहरण बन गया. हालांकी कुछ इतिहासकार इस कथा को आलोचनात्मक दृष्टि से देखते है वे गौरी की मृत्यु को पृथ्वीराज द्वारा नहीं मानते फिर भी भारतीय जनमानस मं यह कथा सांस्कृतिक गौरव की तरह स्थापित है.

निष्कर्षत: पृथ्वीराज की यह गाथा है. हमें यह सिखाती है कि दया जब दुष्ट पर की जाए तो वह विनाश का कारण बन सकती है. पृथ्वीराज रासो एक ऐसा महाकाव्य है जो मात्र कविता नहीं, बल्कि आत्मा की पुकार है जो हमें इतिहास की गहराइयों में ले जाकर शौर्य, मित्रता और सम्मान के आदर्श स्थापित करता है. चंदवरदाई कि यह रचना न केवल पृथ्वीराज को अमर करती है बल्कि हिन्दी साहित्य को गौरव भी प्रदान करती है.

4.4.3 पृथ्वीराज रासो की प्रमाणिकता एवं ऐतिहासिकता :

पृथ्वीराज रासो आदिकाल का सुप्रसिद्ध महाकाव्य के नाम से जाना जाता है. इस महाकाव्य को जितनी अधिक प्रसिद्धि मिली उतना ही यह विवादों में भी घिरा रहा है. सर्वप्रथम तो इस काव्य का रचनाकाल एवं मूल स्वरूप ही विवाद ग्रस्त है. उसकी विवादास्पद पृष्ठभूमि से हमें परिचित होना जरुरी है. पृथ्वीराज रासो की प्रमाणिकता एवं ऐतिहासिकता हिन्दी साहित्य और इतिहास का एक अत्यंत चर्चित और विवादित विषय के रूप में हमने पाया है. इसे लेकर विद्धानों के दो प्रमुख मत है – एक जो इसे ऐतिहासिक ग्रंथ मानते है और दूसरे जो इसे काव्यात्मक कल्पना से भरपूर 'वीरगाथा काव्य' मानते है. पृथ्वीराज रासो को ऐतिहासिक दस्तावेज मनाने में कई मतभेद है. कुछ इतिहासकार इसे लोक गाथा मानते है जिसमें ऐतिहासिक तथ्यों के साथ-साथ कल्पना का मिश्रण भी हुआ है. जैसे : 'मोहम्मद गौरी का वध, संयोगिता का स्वयंवर'.

पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता पर कई विद्धानों ने सवाल उठाये हैं. उनके कथानानुसार उन्हें इसकी सच्चाई पर संदेह है. इसकी जांच करने हेतु इसे इतिहास की कसौटी पर जांचा गया. परंतु उन्हें निराशा ही हाथ लगी. कई विद्धानों ने इसकी ऐतिहासिकता और प्रामाणिकता पर अपने तर्क प्रस्तुत किए है.

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मानना है कि ऐतिहासिक ग्रंथो के साथ वह बिल्कुल मेल नहीं खाने की वजह से कई विद्धानों ने पृथ्वीराज रासों को पृथ्वीराज के समय की किसी कवि की रचना होने पर पुरा संदेह किया है. और 16वीं शताब्दी में लिखा हुआ एक जाली ग्रंथ ठहराया है.

राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचंद ओझा के अनुसार "इस तरह हमने जांच कर देखा कि पृथ्वीराज रासो बिल्कुल ऐतिहासिक ग्रंथ है उसमें चौहानों प्रतिहरों और सोलंकिया की उत्पत्ति संबंधी कथा चौहानों की वंशावली पृथ्वीराज की माता, भाई, बहन, पुत्र और रानियां आदि के विषय की कथाएँ तथा बहुत सी घटनाओं के संवत और प्राय सभी घटनाएं तथा सामंतो आदि के नाम अशुद्ध और कल्पित है. कुछ सुनी-सुनाई बातों के आधार पर इस काव्य की रचना की गई है...! भाषा की दृष्टि से यह ग्रंथ प्राचीन नहीं दिखता."

रासों में लिखा है गुजरात के राजा भीमसेन को पृथ्वीराज ने मारा था. लेकिन शिलालेखों के अनुसार वह पृथ्वीराज के बाद भी जीवित था. रासों के अनुसार पृथ्वीराज की बहन प्रथा का विवाह चितौड़ के राजा समर सिंह के साथ हुआ था, परंतु यह असंभव है क्योंकि राजा समर सिंह का समय 13वीं शताब्दी ई. का उत्तरार्ध है, जबकि पृथ्वीराज की मृत्यु 12वीं शताब्दी में ही हो गई थी.

रासों के प्रमाणिक मानने वाले विद्धानों में बाबू श्यामसुंदर दास और रासों के संपादक मोहनलाल विष्णु लाल पंड्या उल्लेखनीय है. बाबू श्याम सुंदर दास इसे काव्य ग्रंथ मानते हैं और इसे ऐतिहासिकता की कसौटी पर कसने को वह अनुचित समझते हैं. विष्णु लाल पांडे जी के अनुसार रासों के अंदर उल्लेखित संबंधों में विक्रम संवत से लगभग 9091 वर्षों का अंतर दिखाई दे रहा है. इसका मतलब रासों में उल्लेखित तिथियां विक्रम संवत की नहीं आनंद संवत के अनुसार है. परंतु पांडे जी के इस मत पर विद्धानों ने संदेह जताया और आनंद संवत की धारणा को मान्यता नहीं दी.

रासों में कई ऐसी घटनाओं का वर्णन किया है जो राजपूत परंपराओं, युद्ध नीतियों और सामाजिक मूल्यों को दर्शाती है. एवं रासों के रचयिता चंदबरदाई को समकालीन कवि माना जाता है जो कि पृथ्वीराज चौहान के राज कवि थे यह प्रमाणिक है.

4.4.4 पृथ्वीराज रासो की विशेषताएं :

पृथ्वीराज रासों के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए नामवर सिंह कहते है – "रासों मानव जीवन की विविध परिस्थितियों और भाव दशाओं का महासागर है. यह वह विशेषता है, जिससे युग के सभी काव्यो में रासों को सर्वोपरि स्थान दिया गया है. निश्चय ही यह उस युग की सांस्कृतिक परिस्थितियों तथा पूर्व परंपराओं का बृहद् कोश है और मध्य युगीन भारतीय समाज का एक काव्यात्मक इतिहास है."

पृथ्वीराज रासो हिन्दी साहित्य के वीरगाथा काल की सबसे प्रसिद्ध और प्रभावशाली रचना मानी जाती है, इसकी सबसे बड़ी विशेषता हा यह है कि यह वीरता, प्रेम, त्याग और राष्ट्रभक्ति से ओत-प्रोत है.

इसकी विशेषता पर यदि हम नजर डालें तो –

पृथ्वीराज रासों वीर रस की प्रधानता वाला काव्य है इसके अंदर पृथ्वीराज चौहान की शौर्यता, साहस, युद्ध कौशल एवं आत्म बलिदान आदि का वर्णन है. इस दृश्य का काव्य में अत्यंत नाटकीय और उत्तेजित रुप में वर्णन किया गया है जिसे पढ़कर लोगों के अंदर राष्ट्रभक्ति की एक लहर भी दौड़ जाती है.

पृथ्वीराज रासों एक प्रबंध काव्य है, जिसके अंदर एक ही-नायक (पृथ्वीराज) की कहानी आरंभ से लेकर अंत तक क्रम से कही गई है. जिसमें पृथ्वीराज के जन्म, शिक्षा, विवाह, युद्ध, पराजय और मृत्यु तक सब कुछ विस्तार से बताया गया है.

पृथ्वीराज रासों में एक विशेषता यह भी है कि उस में राजपूती आदर्शों की प्रस्तुति बहुत ही सुंदर ढंग से की गई है. काय राजपूतों की संस्कृति, उनके सम्मान, प्रतिशोध की भावना, शौर्य गाथाएं एवं नारी सम्मान के आदर्श की प्रस्तुतीकरण करता है. काय के सभी पात्र वे चाहे राजा, रानी, योद्धा, गुरु, मित्र कोई भी हो सभी में मर्यादा, निष्ठा और वीरता की झलक दिखती है.

पृथ्वीराज रासो काय में कई जगह पर नाटकीय तरीके से मोड़ आते रहते हैं, जिससे पाठकों की जिज्ञासा बढ़ती जाती है और उनकी रुचि उसमें बनी रहती हैं. पाठकों को पकड़ कर रखने की विशेषता से भी हम अनभिज्ञ नहीं रह सकते.

पृथ्वीराज रासों की सबसे बड़ी विशेषता तो हम वह भी कह सकते है कि यह ग्रंथ जन समुदाय में वीरता और देशभक्ति की भावना को जागृत रखने वाला है. समाज में इसकी लोकप्रियता इतनी फैली हुई थी कि राजस्थान, हरियाणा और उत्तर भारत के लोकगीतों और नाटकों में इसके अंश आज भी दिखाई देते है.

पृथ्वीराज रासों में ऐतिहासिकता और कल्पना का समन्वय हमें एक साथ दिखाई देता है एक तरह से देखा जाए तो काव्य कुछ हद तक ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित है परंतु कुछ घटनाएं कवि की काल्पनिक है जैसे पृथ्वीराज चौहान का मोहम्मद गौरी के ऊपर शब्द भेदी बाण चलाना यह कवि की मात्र कल्पवा जिसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है.

4.4.5 पृथ्वीराज रासों के काव्यरुप की भाषा :

वीर रस की प्रधानता रखने वाली यह रचना हिन्दी के प्रसिद्ध महाकाव्य की श्रेणी में आती है इसके काव्य का रूप एव भाषा शैली अद्‌भुत है. पृथ्वीराज रासों की भाषा में अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी दोनों की भाषाई प्रवृत्तियों का मेल है.

पृथ्वीराज रासों की रचना बृज भाषा और अवहट्ट भाषा के मिश्रण में की गई है. इसमें छंदों की विविधता (दोहा, चौपाई, कविता आदि) पाई जाती है. यह काव्य श्रवणीय और गायन दोनों के योग्य है. इसी वजह से यह लोक काव्य की परंपरा में जीवित है. पृथ्वीराज रासो काव्य की भाषा को देखा जाए तो वह संक्रमण कालीन भाषा है, जो अपभ्रंश से हिन्दी की तरफ से बढ़ते हुए विकास के क्रम को बताती है और रासो काव्य में ना ही शुद्ध ब्रजभाषा का उपयोग हुआ है ना ही राजस्थानी भाषा का. इसे दोनों का मिश्रण हम कह सकते हैं. पुरानी ब्रजभाषा को इसमें प्रमुखता दी गई है. जो कि आज की मानक ब्रजभाषा से अलग है इसमें आरंभिक काल की ब्रजभाषा को रखकर इससे तत्सम और तद्भव शब्दों का संतुलित रूप से प्रयोग किया गया है. साथ ही साथ मिश्रित राजस्थानी भाषा, अवधी, संस्कृत और देशज बोलियों का भी प्रयोग किया है.

इसकी शैली वीर रस से भरपूर है जो की वर्णनात्मक, गद्यात्मक, संवादों से युक्त द्दश्य प्रधान है. इसमं संवाद इस तरह हमारे सामने उपस्थित हो रहे है जैसे लगता है कि हमारे समक्ष प्रत्यक्ष रूप से कोई नाक चल रहा है और हम उसे देख रहे है. अनुभव कर रहे है.

पृथ्वीराज रासो के काव्य का रूप या उसकी बनावट हिन्दी के वीरगाथा काल के काव्य प्रकार का एक उत्कृष्ट उदाहरण है. इसे हम एक प्रबंध काव्य कह सकते है. जिसके अंदर काव्यात्मकता, नाटकीयता और ऐतिहासिकता तीनों का मिश्रण हमें मिलता है. इसके अतिरिक्त छंदों का एवं अलंकारों का प्रयोग भी बड़ी सुंदरता के साथ देखने को मिलता है. कव्य के अंदर वीर, श्रृंगार एवं करुण रस की प्रधानता भी हमें दिखाई देती है. पृथ्वीराज के पराक्रम और साहस और उनकी युद्ध कला को वीर रस के माध्यम से जो कि इसका प्रमुख रस है बताया गया है इसके अलावा संयोगिता और पृथ्वीराज की प्रेम कहानी को श्रृंगार रस के माध्यम से एवं अंत में पृथ्वीराज की पराजय एवं मृत्यु को करुण रस के द्वारा चिन्हित किया है. पृथ्वीराज रासों का उसे एक ऐतिहासिक ग्रंथ ही नहीं वीरता और प्रेम की महाकाव्य के रूप में गाथा कही गई है.

4.5 सार बिन्दु :

- हिन्दी साहित्य के इतिहास को तीन कालों में बांटा गया है. आदिकाल, मध्यकाल एवं आधुनिक काल.
- आदिकालीन कविता हिन्दी साहित्य के इतिहास मं सबको पुरानी कविताएँ हैं.
- चंदबरदाई कृत पृथ्वीराज रासो आदिकाल की बहुचर्चित रचना है.
- पृथ्वीराज रासो हिन्दी का प्रतम महाकाव्य है.
- पृथ्वीराज रासों में वीर और श्रृंगार रस का विशेष प्रमाण मिलता है.
- पृथ्वीराज रासों में पृथ्वीराज चौहान के जीवन एवं मोहम्मद गौरी और पृथ्वीराज चौहान के बीच के युद्ध को बताया गया है.
- पृथ्वीराज चौहान, संयोगिता और चंदबरदाई जैसे पात्रों का प्रभावशाली चित्रण है.
- यह ग्रंथ हमें वीरता, देशभक्ति और कर्तव्य निष्ठा जैसे मूल्यों का संदेश देता है.

4.6 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली :

1. बोध प्रश्न :

- **दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :**

  (1) पृथ्वीराज रासो के काव्य रुप को समझाइए.

  (2) पृथ्वीराज रासो काव्य की समीक्षा कीजिए.

  (3) पृथ्वीराज चौहान के जीवन का संक्षिप्त परिचय दीजिए.

- **लघु उत्तरीय प्रश्न :**
  (1) पृथ्वीराज चौहान ने मोहम्मद गौरी को कैसे मारा ?
  (2) चंदबरदाई कृत पृथ्वीराज रासो कौन-से काल की बहुचर्चित रचना है ?
  (3) पृथ्वीराज रासो को हिन्दी का कौन-सा महाकाव्य होने का गौरव प्राप्त हुआ है ?
  (4) पृथ्वीराज रासो में किस रस की प्रधानता दिखाई देती है ?
  (5) पृथ्वीराज रासो में कितने समय (सर्ग) है ?
- **टिप्पणी लिखिए :**
  (1) पृथ्वीराज रासों की प्रमाणिकता
  (2) आदिकालीन कविताओं की विशेषता

2. वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

सही के सामने √ सही X और गलत के सामने गलत का निशान लगाइए.

(1) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा दिए गए नाम आदिकाल को सर्वसम्मति मिली थी.
(2) हिन्दी के प्रथम कवि के रूप मं चंदबरदाई के नाम का उल्लेख मिलता है.
(3) आदिकाल की रचनाओं को वीरगाथा काव्य कहा गया है.
(4) इतिहास के मतानुसार मोहम्मद गौरी की मृत्यु पृथ्वीराज के हाथों हुई थी.
(5) पृथ्वीराज रासों की प्रमाणिकता विवादास्पद है.

- **रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :**
  (1) पृथ्वीराज रासों की रचना _____ ने की थी.
  (2) तराइन का प्रथम युद्ध _____ इ. में हुआ था.
  (3) पृथ्वीराज को मोहम्मद गौरी बंदी बनाकर _____ ले गया.
  (4) चंद्रवरदाई पृथ्वीराज के _____ कवि थे.

4.7 सहायक पाठ्य सामग्री :

1. पृथ्वीराज रासों चंदबरदाई (मूल रचना); डॉ. रामचन्द्र शुक्ल द्वारा संपादित वीरगाथा काव्य का मूल संस्करण, पुरानी शैली.
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास डॉ. रामचन्द्र शुक्ल आदिकाल, रासो काव्य, शैली, परंपरा का आलोचनात्मक विश्लेषण
3. हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास, हजारी प्रसाद द्विवेदी से उद्धत.
4. हिन्दी साहित्य का आदिकाल डॉ. नगेन्द्र पृथ्वीराज रासो सहित अन्य वीर भाषाओं की तुलनात्मक विवेचना.

इकाई 5 हिन्दी काव्य का भक्तिकाल : युग परिचय एवं प्रवृत्तियाँ

इकाई की रूपरेखा

5.1 उद्देश्य
5.2 प्रस्तावना
5.3 आदिकालीन कविता का परिचय
5.4 पृथ्वीराज रासो का परिचय
5.5 पृथ्वीराज रासो का परिचय
5.6 पृथ्वीराज रासो का परिचय
5.7 सार बिन्दु
5.8 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली
5.9 सहायक पाठ्य सामग्री

5.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य विद्यार्थियों को हिन्दी साहित्य का या हिन्दी काव्य का 'स्वर्णकाल' कहे जाने वाले भक्तिकाल से परिचित करवाने का है. इस इकाई के अध्ययन के माध्यम से आप –

- भक्तिकाल का युग परिचय प्राप्त कर सकेंगे.
- भक्तिकाल की युगीन परिस्थितियाों का अध्ययन कर सकेंगे.
- भक्ति के स्वरूप संबंधी विविध मतों से परिचित हो सकेंगे.
- भक्तिकाल की विभिन्न शाखाओं का परिचय प्राप्त कर सकेंगे.
- भक्तिकाल के प्रमुख कवियों और उनके साहित्य का परिचय प्राप्त कर सकेंगे.
- भक्तिकाल और भक्ति-साहित्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ के बारे में जान पायेंगे.
- भक्तिकाल के साहित्य से परिचित हो सकेंगे.

5.2 प्रस्तावना

प्रिय छात्रों ! मनुष्यों और समाजों के इतिहास के समान ही प्रत्येक भाषा के साहित्य का अपना एक इतिहास होता है. इसमें उस साहित्य के उद्‌भव, विकास, परिवर्तनों तथा प्रवृत्तियों का विवरण शामिल होता है. अध्ययन की सुविधा के लिए इतिहास को कुछ सिलसिलेवार कालों में बाँटा जाता है. किसी काल विशेष का वर्णन, उसमें शामिल प्रवृत्तियों आदि के आधार पर किया जाता है. हिन्दी साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास को मुख्य रुप से आदिकाल, मध्यकाल एवं आधुनिक काल में विभाजित किया गया है. इन कालों के नामकरण में विद्धानों में पर्याप्त मतभेद रहा है. इस इकाई मं हम हिन्दी साहित्य के मध्यकाल के पूर्वार्ध या पूर्व मध्यकाल, जिसे भक्तिकाल के नाम से अभिहित किया गया है, के बारे में विस्तत जानकारी प्राप्त करेंगे. जिसमें हम भक्तिकाल की समय-सीमा, नामकरण से लेकर भक्तिकाल की पृष्ठभूमि, भक्ति-साहित्य, भक्तिकालीन प्रमुख कवियों, उनकी प्रमुख रचनाओं एवं इस युग की मुख्य प्रवत्तियाँ के बारे में विस्तृत अध्ययन करेंगे.

5.3 भक्तिकाल : भक्ति का स्वरूप :

हिन्दी साहित्य का प्रथम चरण श्रृंगार, वीर रस जैसे अनेक रसों से समृद्ध रहा है.

आदिकालीन हिन्दी साहित्य ने अपने परवर्ती साहित्य के लिए द्वार खोले है. हिन्दी के मध्यकाल को पूर्व मध्यकाल और उत्तर मध्यकाल, इन दो धाराओं से पहचाना जाता है. पूर्व मध्यकाल को भक्ति-काल नाम दिया गया है. भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का 'स्वर्ण-काल' माना जाता है. इसका समय आचार्य शुक्ल ने वि. सं. 1375 से. 1700 तक माना गया है. इसे पूर्व-मध्यकाल कहकर भी सम्बोधित कियाजाता है. इसे जॉर्ज ग्रियर्सन ने 'स्वर्ण-काल', डॉ. श्यामसुन्दर दास ने 'स्वर्ण-युग', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'भक्तिकाल' एवं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'लोक-जागरणकाल' भी कहा है.

- **भक्ति : ईश्वर के प्रति समर्पण और प्रेम का भाव :**

भक्ति एक ऐसी भावना है जिसका मूल आधार ईश्वर की उपासना है. भक्तिकाल की कविता में भक्ति को साधन माना गया है, साध्य नहीं, क्योंकि उस समय भक्ति स्वयं जीवन का परम लक्ष्य थी. 'भक्ति' शब्द के अर्थ में अनुराग, पूजा और उपासना जैसे शब्द मिलते हैं, किंतु इनमें सूक्ष्म भेद है. श्रीमद्भागवत के अनुसार, भक्ति का अर्थ है - मन और बुद्धि से ईश्वर को अर्पित कर देना. पाराशर ने भक्ति को अनुराग कहा है, जबकि शाण्डिल्य और नारद ने इसे ईश्वर के प्रति परम प्रेम और अमृत स्वरूप भावना बताया है. हमारे दृटिकोण से भक्ति वह प्रेमभाव है, जो ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण के साथ व्यक्त होता है.

श्री वल्लभाचार्य के मत में, भगवान के प्रति निरंतर, सुदृढ़ और माहात्म्य-युक्त स्नेट ही सच्ची भक्ति है. उनके अनुसार मुक्ति प्राप्त करने का इससे सरल मार्ग और कोई नहीं. विभिन्न आचार्यों द्वारा दिए गए मतों में मूल भावना एकही है- ईश्वर के प्रति श्रद्धा, प्रेम और समर्पण.

आचार्य शुक्ल ने भक्ति को पारिभाषित करते हुए कहा है - "श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है." इससे स्पष्ट है कि श्रद्धा और प्रेम, दोनों के बिना ईश्वर-भक्ति संभव नहीं. केवल प्रेम भक्ति नहीं है, क्योंकि प्रेम व्यक्तिगत भावना है, जबकि श्रद्धा सामाजिक भाव है. सामान्य जीवन में भी हम अपने से बड़े व्यक्ति के प्रति प्रेम नहीं, श्रद्धा ही प्रकट करते हैं. श्रद्धा सद्गुणों के आधार पर होती है, और ईश्वर तो सर्वोच्च गुणों से युक्त, सबसे आदरणीय और पूज्य है. इसलिए उसके प्रति श्रद्धा स्वाभाविक है. जब इस श्रद्धा में प्रेम का रंग घुल जाता है, तो वही श्रद्धा भक्ति बन जाती है. कैवल आदर या श्रद्धा पर्याप्त नहीं, उसमें प्रेम और समर्पण का मेल आवश्यक है. भक्तिकाल की भक्ति भावना इसी समन्वय पर आधारित है.

भक्तिकाल के कवियों की भक्ति ईश्वर के प्रति उस गहन प्रेम की अभिव्यक्ति है, जो मानव हृदय को अलौकिक से भर देती है. यही ईश्वरोन्मुखता है – श्रद्धा और प्रेम से युक्त वह 'भावना', जो भक्ति कहलाती है.

5.4 भक्तिकाल : युगीन परिस्थितियाँ :

हर युग के काव्य-सृजन के पीछे कुछ न कुछ कारण और प्रेरक तत्त्व अवश्य होते हैं. दूसरे शब्दों में कहें तो किसी भी युग के साहित्य की नांव उस समय की राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक परिस्थितियों पर टिकी होती है. यही परिस्थितियाँ कवियों के मन में नए विचार और भावों का प्रवाह उत्पन्न करती है तथा उनके भाव को दिशा प्रदान करती है. भक्तिकाल के सृजन के पीछे भी उस समय की अनेक परिस्थितियों का योगदान रहा. इस युग की राजनीतिक अस्थिरता, सामाजिक विषमता, धार्मिक जड़ता, दार्शनिक विचारधाराएँ और साहित्यिक वातावरण-ये सभी मिलकर भक्तिकालीन काव्य की प्रेरक शक्ति बने. इन्हीं कारणों सें कवियों ने ईश्वर-भक्ति, मानवता, समानता और प्रेम को अपने काव्य

का केन्द्र बनाया. इसी संदर्भ में आगे हम भक्तिकाल की इन प्रेरक परिस्थितियों का विस्तार से अध्ययन करेंगे.

5.4.1 राजनैतिक परिस्थितियाँ :

भक्तिकाल से पूर्व का साहित्य उन राजनैतिक परिस्थितियों में रचा गया था, जब विदेशी यवन शासक भारत में अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए भरपूर प्रयास कर रहे थे. एक और यवनों का यह विस्तारवादी प्रयत्न था, तो दूसरी और भारतीय राजपूत योद्धा. उनके विरुद्ध संघर्षरत थे. इसी संघर्षपूर्ण वातावरण में आदिकाल का साहित्य जन्मा. भक्तिकाल तक आते-आते परिस्थितियों में कुछ परिवर्तन अवश्य हुआ, परंतु स्थिति पूर्णतः सुधरी नहीं थी. उत्तरी भारत पर यवन शासकों का प्रभुत्व दृढ़ हो चुका था और अन्य भारतीय राज्य भी क्रमशः उनके अधीन होते जा रहे थे. ख़िलजी वंश का प्रसिद्ध शासक अलाउद्दीन ख़िजली सम्पूर्ण भारत पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने की आकांक्षा रखता था. उसके साम्राज्य-विस्तार की नीति से उत्तर और दक्षिण, दोनों ही भारत भयभीत थे.

दक्षिण भारत में कृष्णा और तुंगभद्रा नदियों के मध्य का प्रदेश विजयनगर और बहमनी राज्यों के आपसी संघर्ष का केन्द्र बना हुआ था. निरंतर युद्ध और अस्थिरता के इस वातावरण में साहित्य और धर्म दोनों ही राजाओं का संरकक्षण खो बैठे. राजनैतिक अशंति और निराशा ने समाज को विचलित कर दिया था. राजा और प्रजा दोनों ही मानसिक रूप से व्याकुल थे. राजाओं के पास कला, साहित्य और संस्कृति को संरक्षण देने की शक्ति नहीं बची थी. ऐसे में जनसामान्य किसी ऐसे आश्रय की खोज में था, जो उसे मानसिक शांति और आत्मिक सुरक्षा प्रदान कर सके. यही वह समय या जब जनता का हृदय ईश्वर-भक्ति की ओर मुड़ने लगा और भक्ति एक सशक्त आध्यात्मिक आश्रय बनकर उभरी.

कुछ भारतीय इतिहासकार और साहियालोचक यह मानते है कि यवनों के भारत आगमन के बाद हिंदू समाज में एक प्रकार की निराश उत्पन्न हुई, और उसी के परिणामस्वरूप भक्तिकाल की धार्मिक भावना का विकास हुआ. यह मत आंशिक रूप से सत्य प्रतीत होता है, परंतु इसे पूर्ण सत्य नहीं कहा जा सकता. वास्तव में, भारतीय जनता सदैव से ही राजनैतिक परिवर्तनों के प्रति अपेक्षाकृत उदासीन रही है. उसका मन सदैव धार्मिक और आध्यात्मिक भावनाओं से आंदोलित रहा है. भारतीय समाज ने सदैव धर्म, दर्शन और भक्ति में गहरी आस्था रखी है. उसने अपनी प्रगति और जीवन की सार्थकता धर्म और आत्मिक उन्नति में ही खोजी है. जब देश में चारों और संघर्ष, अस्थिरता और अशांति का वातावरण था, तब भी भारतीय जनता का हृदय ईश्वर और अध्यात्म की ओर अग्रसर रहा. वह अपने भीतर की शांति और संतोष के लिए धर्म और दर्शन में शरण लेने लगी.

इस प्रकार, भक्तिकाल के उद्‌भव में राजनैतिक परिस्थितियों की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता, परंतु यह भी सत्य है कि भक्ति का मूल स्त्रोत भारतीय जनता की गहरी धार्मिक प्रवृत्ति और उसकी आध्यात्मिक पिपासा ही थी.

5.4.2 सामाजिक परिस्थितियाँ :

भक्तिकालीन साहित्य के निर्माण में उस समय की सामाजिक परिस्थितियाँ की भूमिका भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण रही है. उस युग की सामाजिक पृष्ठभूमि को समझें बिना भक्तिकाल की भक्ति भावना को पूर्ण रूप से नहीं समजा जा सकता. समीक्षकों ने भक्तिकाल की सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि भक्तिकाल के निर्माण में तत्कालीन समाज की दशा विचारणीय रही है. ब्राह्मण धर्म की पुनः प्रतिष्ठा के प्रयासों के बाद भी वह जनसामान्य में पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं कियाजा शका. वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था भी अपन पूर्व स्वरूप में समाज द्वारा पुनः ग्रहण नहीं की जा सकी. समाज के मेरुदंड माने जाने वाले ब्राह्मण

न तो इतने सशक्त रहे कि वे समाज को एकसूत्र में बाँध सकें. और न ही राजसत्ता उनके पूर्ण नियंत्रण में रही. धार्मिक क्षेत्र की तरह सामाजिक व्यवस्था में भी उथल-पुथल बढ़ गई थी. वर्ण व्यवस्था की श्रृंखला टूट चूकी थी, परंतु उसके बाहरी रूप मं विषमता और भेदभाव और अधिक गहराता जा रहा था. असंख्य जातियाँ और उपजातियां बन गई, और ऊँच-नीच का भाव चरम पर पहुँच गया. स्त्रियाँ की स्थिति भी समाज में निम्न मानी जाने लगीं. प्राचीन काल में जहाँ सभी वर्गों को किसी न किसी रूप में शिक्षा और सांस्कृतिक ज्ञान प्राप्त करने का अवसर था, वहीं भक्तिकाल मं वह अवसर धीरे-धीरे सीमित हो गया. पंडित वर्ग अपने तर्क-वितर्क और शास्त्रार्थ में लीन हो गया, जिससे जनसामान्य उनसे दूर हो गया. परिणामस्वरूप जनता अंधविश्वासों और निरर्थक आचार-व्यवहारों में उलझने लगी.

भक्ति आंदोलन ने इसी विकृत सामाजिक स्थिति में समता और समानता का संदेश दिया. संतों और कवियों ने जाति-पाँति के भेद का विरोध किया और गुरु के महत्त्व तथा ज्ञान की श्रेष्ठता को स्वीकार किया. वैष्णव भक्तों ने यद्यपि वर्णाश्रम धर्म की परंपरा को नकारा नहीं, परंतु उसकी रुढ़ियाँ और अनुदारताओं का तीव्र विरोध किया. निर्गुण भक्ति के संत कवियों ने तो समाज की जड़ता, अंधविश्वासों और रुढ़िगत प्रथाओं के विरुद्ध खुलकर आवाज उठाई. उन्होंने मानवता, समानता और प्रेम पर आधारित समाज की कल्पना की.

इस प्रकार, भक्तिकालीन सामाजिक परिस्थितियों ने भक्ति आंदोलन को जनआंदोलन का स्वरूप प्रदान किया, जिसने समाज में नवजागरण और नैतिक पुनरुत्थान का मार्ग प्रशस्त किया.

5.4.3 धार्मिक परिस्थितियाँ :

भक्तिकाल की प्रेरक परिस्थितियों में धार्मिक परिस्थितियों का महत्त्वपूर्ण योगदान है. दर्शन का सम्बन्ध धर्म के चिन्तन-पक्ष, से है और इस कारण जन-समाज उसके प्रति अधिक सतर्क नहीं रहता है. पर हाँ, धर्म के कर्म-काण्ड और भक्ति-पक्ष, से जनसाधारण का निकट का गहरा सम्बन्ध होता है. यह तो स्पष्ट ही है कि भक्तिकाल में काव्य का क्षेत्र जन-मानस का हृदय था. परिणामस्वरूप धर्म की व्यावहारिकता का काव्य के समक्ष, होना उस काल में सम्भव ही था जबकि भक्तिकाल के पूर्व धार्मिक स्थिति विषम थी. वह सत्य है कि कुमारिल और शंकर के प्रयास से बौद्ध-धर्म का उन्मूलन भारत से हो चुका था तब भी लोगों में जिन भावनाओं का प्रचार इन धर्मों ने किया, वे पूरी तरह नष्ट नहीं हो पायी थी. धार्मिक भतों में विशेष बात यह थी कि वे अपने प्रसार के लिए किसी प्रामाणिक ग्रंथ का सहारा न लेकर जनता की मनोवृत्ति के आधार पर धर्म को सहज और स्वाभाविक बनाते गये. इतना ही नहीं, आठवीं और नवीं शती तक बौद्ध-महायान संप्रदाय ने लोक के आकर्षण का राह पर बढ़ने की कामना से तंत्र, मंत्र, जादू और टोना आदि का भी सहारा लिया. जिन दिनों बौद्ध-धर्म लोक भावना में घुल-मिल रहा था, तभी ब्राह्मण-धर्म उससे किनारा करता जा रहा था. टीका और भाष्य के युग में सिर्फ पुराने धर्म-ग्रंथो को मान्यता का प्रयत्न किया जा रहा था. 12वीं शताब्दी तक विचारों की स्वतंत्रता नहीं के बराबर रह गयी थी. उसके पश्चात् ही लोक-धर्म की बिखरी हुई स्थिति को सम्भालने के लिए दूसरे ग्रंथों का प्रणयन प्रारम्भ हुआ. लोक-जीवन के व्यवहार के लिए उपयोगी आचार-व्यवस्था देने का विधान तो अत्यन्त पुराना है, किन्तु इस काल में धर्मशास्त्र के वचनों से प्रमाण देकर नयी-नयी आज्ञाएँ भी दी जाने लगी ती. वैदिक-धर्म की कर्मकाण्ड व्यवस्था बहुत समय पहले ही टूट चुकी थी और इस बीच जिस बौद्ध-धर्म का प्रचार हुआ, वह भी संन्यास-प्रदान धर्म बनकर रह गया. हिन्दू धर्म में अनेक पूजा, व्रत और आचार आदि का मिश्रण होता गया. यह मिश्रण पुरातन धर्मग्रंथों में नहीं था. ऐसी स्थिति में इस सारे बिखराव को नियमित और व्यवस्थित करने की आवश्यकता थी. इसी आवश्यकता के परिणामस्वरूप लोक-व्यवहार के समर्थन के लिए

प्रमाण-वाक्य खोज खोजकर इकट्ठे किये जाने लगे. जिस प्रकार लोक-मत को अपनी और मिलाने की कोशिश में बौद्ध-धर्म जादू टोना आदि अपना रहा था, उसी तरह हिन्दु-धर्म जनमत को अपनी ओर करने के लिए रूढ़िगत आचार-व्यवहारों को समर्थन देता जा रहा था.

भक्तिकाल में कुछ ऐसी धार्मिक प्रवृत्तियाँ प्रचलित थीं जिनका योग भक्तिकाल की भावना के विकास के लिए आवश्यक था. सामाजिक विषमताओं और बंधनों के प्रति सिद्धों और नाथों का रुख कठोर था, पर साथ ही धार्मिक आचारों की निरर्थक अडम्बरवादिता के प्रति भी इनका आक्रोश कम नहीं था. सिद्धों ने योग के साथ सहज की भावना को महत्त्व दिया. किन्तु नाथ संप्रदाय ने जनता मं बहहुत कुछ परिष्कार लाने का कार्य किया. इस परम्परा का सामाजिक दृष्टिकोण संत काव्य में विकसित हो सका. दक्षिण भारत की भक्ति-परम्परा का आदर्श भी धार्मिक विषमता के क्षेत्र में समाज को समन्वयशील बनाने का था. रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य आदि दक्षिण के आचार्यों ने दक्षिण की भक्ति-परम्परा को उत्तर में फैलाने का कार्य किया है. इस भक्ति आन्दोलन का विरोध प्रचलित धार्मिक एवं सामाजिक अव्यवस्था के प्रति इतना तीव्र नहीं था, जितना नाथ संप्रदाय की परम्परा को ग्रहण करने वाले संतों का था. फिर भी यह सत्य है कि दक्षिण की भक्ति में समाजगत परिष्कार की भावना निश्चित रूप से थी. यही कारण है कि जहाँ संत कवियों ने किसी प्रमाण वाक्य का सहारा नहीं लिया, वहीं भक्त कवियोने श्रुति-सम्मत सिद्धान्तों का पूरा ध्यान रखा है. इन सब परिस्थितियों में ही भक्तिकाल की कविता का सर्जन हुआ है और भक्ति की धारा प्रवाहित हुई है.

5.4.4 दार्शनिक परिस्थितियाँ :

भक्तिकाल को धार्मिक आंदोलनों का युग कहा जाता है. और उसके मूल में अनेक दार्शनिक विचारधाराएँ सक्रिय थीं. इन विचारधाराओं की जड़ें भारतीय दर्शन की प्राचीन परंपरा में निहित है. भक्तिकाल के कवियों ने किसी न किसी दार्शनिक परंपरा से प्रेरणा लेकर जनता के हृदय को स्पर्श किया और उनकी भक्ति-भावना को जाग्रत किया.

इस युग की दार्शनिक दृष्टि की विशेषता यह थी कि उसने पांडित्यपूर्ण तर्क-वितर्क के स्तर से आगे बढ़कर अनुभूति और लोक-जीवन के निकटता को अपनाया. इस दृष्टिकोण की दो प्रमुख प्रवृत्तियां देखी जाती है - पहली, आचार्यों द्वारा दार्शनिक सिद्धांतों की ऐसी व्याख्या करना जिससे वे सामान्य जनता के लिए सहज और बोधगम्य बन सकें और दूसरी, उन आचार्यों की शिष्य परंपरा के कवियों द्वारा इन सिद्धांतों को काव्य के माध्यम से लोक-जीवन में पहुँचाना. इस प्रकार, उन्होंने दर्शन को अनुभूति और काव्य दोनों का आधार बना दिया. इन कवियों की विशेषता यह थी कि उन्होंने अपने आचार्यों की अपेक्षा अधिक उदार और व्यापक दृष्टिकोण अपनाया. वैदिक काल के पश्चात उपनिषदों में जो दर्शन विकसित हुआ, वह जीवन से जुड़ा, सरल और स्वाभाविक था. प्रारंभिक बौद्ध दर्शन में भी यही सादगी दिखाई देती है, यद्यपि बाद में उसमें जटिलता आ गई.

भारतीय चिंतन में एक और नागार्जुन जैसे आचार्यों ने शून्यवाद के माध्यम से बौद्ध दर्शन को उँचाइयों पर पहुँचाया, तो दूसरी और हिंदू दार्शनिकों ने सांख्य, योग, मीमांसा और वैशेषिक जैसे दर्शनो के माध्यम से बुद्धि और विचार की गहराइयाँ दिखाई. छठी शताब्दी तक का दर्शन अनुभव और मनन से जुड़ा हुआ था, परंतु बाद मं वह अत्याधिक तर्क-प्रधान होकर जीवन से दूर होता चला गया. दार्शनिक चिंतन में समन्वय स्थापित करने का प्रयास आदि शंकराचार्य ने अपने अद्वैतवाद के माध्यम से किया. उन्होंने माया को असत्य मानते हुए जीव और ब्रह्म को एक बताया तथा ब्रह्म को परम सत्य के रूप में प्रतिष्ठित किया. परंतु शंकराचार्य स्वयं यह समझ गए कि यह सिद्धांत इतना बुद्धि-प्रधान है कि सामान्य जनमानस तक उसकी पहुँच कठिन है. इसी कारण, बाद के दार्शनिकों और संत कवियों ने दर्शन को

मानवीय संवेदनाओं से जोड़ा. उन्होंने भक्ति के माध्यम से दर्शन को जीवन के निकट लाने का प्रयास किया, जिससे आध्यात्मिक ज्ञान और मानव-हृदय की अनुभूति एक-दूसरे से जुड़ सकें.

दक्षिण भारत से आए आचार्यों के सम्मुख उपनिषदों की भक्ति परंपरा का सरल और सजीव रुप विद्यमान था. रामानुजाचार्य मध्वाचार्य, रामानंद और वल्लभाचार्य- सभी ने अपने-अपने दृष्टिकोण से दार्शनिक मतों की व्याख्या करते हुए भाष्य रचें. इन भाष्यों में गूढ़ तत्त्वों को सहज और लोक-ग्राह्य बनाने का प्रयास स्पष्ट रुप से दिखाई देता है. इस सरलता की झलक केवल राम-भक्ति और कृष्ण-भक्ति में ही नहीं, बल्कि सूफी परंपरा की प्रेम-साधना में भी देखी जा सकती है, जहाँ अद्वैत की भावना अत्यंत सहज रुप में स्वीकार किया गया.

यदि थोड़ी देर के लिए भक्तिकालीन आचार्यों को छोड़कर केवल कवियों पर दृष्टि डालें, तो वह स्पष्ट होता है कि इन कवियों की दृष्टि और भी अधिक व्यापक और समन्वय-शील थी. वास्तव में, दार्शनिक विचारों में संकीर्णता तभी आती है जब विचार सीमित और एकांगी हो जाते हैं; परंतु भक्तिकाल के कवियों ने अपने काव्य में उदारता, समरसता और जीवन-सापेक्षता को स्थान दिया. उनकी दार्शनिक दृष्टि जहाँ लोक-जीवन के निकट पहुँचती है, वहां उनकी साधना कवित्व की कल्पना और अनुभूति के माध्यम से अधिक स्पष्ट और हृदयग्राही बन जाती है. तुलसीदास, सूरदास और मलिक मोहम्मद जायसी जैसे कवियों के काव्य में यह समन्वय स्पष्ट रुप से दृष्टिगोचर होता है - जहाँ दर्शन, भक्ति और काव्य एक दूसरे में घुल-मिलकर लोक-जीवन को आध्यात्मिक ऊँचाई प्रदान करते हैं.

5.4.5 साहित्यिक परिस्थितियाँ :

भक्ति-काव्य के उद्‌भव से पूर्व भारत के विभिन्न प्रांतों में स्थानीय भाषाएँ अपने-अपने अपभ्रंश रुपों के आधार पर साहित्य रच रही थी. ये भाषाएँ धीरे-धीरे परिपक्व हो रही थीं और हिन्दी के समानांतर अपने स्वरुप का विकास कर रही थी. यद्यपि इन प्रांतीय भाषाओं में साहित्य-सृजन आरंभ हो चुका था, परंतु उनके विषय, काव्य-रुप और अभिव्यक्ति की शैली एक-दूसरे से भिन्न और अनगढ़ थी. यही कारण है कि उस समय का साहित्य पर्याप्त परिष्कृत नहीं माना जा सकता. इसी अपरिपक्व और असंगठित साहित्यके प्रति प्रतिक्रिया के रुप में भक्तिकालीन साहित्य का जन्म हुआ. इस युग के कवियों ने भाषा को परिष्कृत, शैली को सुसंगठित और भावों को मधुर बनाया. उनके साहित्य में एक प्रवाह, सरलता और माधुर्य दिखाई देता है, जो पूर्ववर्ती साहित्य से सर्वथा भिन्न है. उल्लेखनीय है कि भक्तिकालीन कवियों का मुख्य उद्देश्य मौलिकता का प्रदर्शन नहीं, बल्कि भक्ति के प्रचार और आध्यात्मिक सिद्धांतों के प्रसार का था. इसीलिए कबीर, जायसी, सूरदास और तुलसीदास जैसे कवियों ने अपने-अपने काव्य में भक्ति, प्रेम और ईश्वर-समर्पण को ही केन्द्र में रखा.

मुगल शासन के समय फारसी भाषा राजकीय कार्यों की भाषा बन चुकी थी. दरबारों में फारसी में लेखन होता था, और संस्कृत के कई धार्मिक तथा ऐतिहासिक ग्रंथों का अनुवाद भी फारसी में किया गया. परंतु काव्य-सृजन में हिन्दी, संस्कृत और फारसी-इन तीनों भाषाओं का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है. दरबारी कवियों ने राजाओं की रुचि के अनुसार प्रशस्ति, श्रृंगार, नीति और रीति से संबधित काव्य रचे, वहीं भक्त कवियों ने भारतीय संस्कृति की आत्मा को अपने काव्य में जीवित रखा. भक्तिकाल का साहित्य केवल रस और कला की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि अपनी आत्मिक गहराई के कारण भी महान है. इसमें मानव-हृदय, मन और आत्मा-तीनों की तृष्णा को शांत करने की अद्‌भुत शक्ति निहित है.

5.5 भक्तिकालीन साहित्य :

भक्तिकालीन साहित्य को निर्गुण और सगुण धारा में विभक्त किया गया है. इन दोनों

की पुनःदो भागों में विभक्त किया गया है; जैसे,

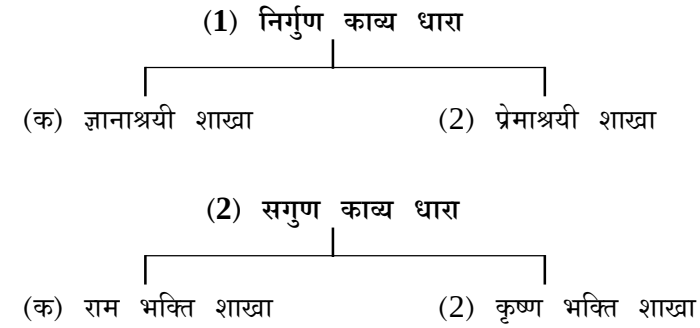

यह काल हिन्दी काव्य के लिए अनेक दृष्टियों से उत्कृष्ट काल रहा है. दक्षिण प्रान्त में आलवार संतों के प्रभाव में भक्ति-साधना का प्रचार-प्रसार हुआ जो भारत के विभिन्न प्रदेशों तक फैली. दक्षिण में चल रही आचार्य परम्परा में रामानुजाचार्य एवं उनकी परम्परा के बाद रामानंद का विशेष प्रभाव रहा. उसी समय महाप्रभु वल्लभाचार्य जी ने 'पुष्टि-मार्ग' की स्थापना की तथा उन्होंने इश्वर की लीला-गान का उपदेश दिया. मुसलमानों के आगमन से सूफा परम्परा भी प्रवाहित हुई. भावुक मुसलमान कवियों द्वारा सूफीवाद से रंगी हुई उत्तम रचनाएँ लिखी गई. इस विभिन्नता के कारण भक्तिकालीन साहित्य में विविध धाराओं का प्रवर्तन हुआ. सगुण मार्ग और नुर्गुण मार्ग मुख्य धारा के रूप में नज़र आये हैं. इन दो धाराओं में भी अन्य दो उपधाराएँ प्रवाहित हुई.

1. निर्गुण काव्य धारा :

मध्यकालीन साहित्य में ईश्वर के निरंजन-निराकार रूप की आराधना करने वाले भक्त कवि और उनकी रचनाएँ आदि निर्गुण धारा के अंतर्गत आती हैं. निर्गुण धारा का प्रवर्तन ज्ञान मार्ग और प्रेम-मार्ग के रूप में हुआ है. संत 'कबीर' को ज्ञान-मार्ग का और मलिक मोहम्मद 'जायसी' को प्रेम-मार्ग का आधार-स्तंभ माना गया है.

(अ) ज्ञानाश्रयी शाखा :

निर्गुण भक्ति की ज्ञानाश्रयी शाखा को 'संत-काव्य' भी कहा जाता है. संत-साधना में योग-प्रक्रिया एवं तंत्र-साधना की जो प्रधानता है, उसका मूल-स्रोत नाथ-पंथी साधना पद्धति ही है. ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रवर्तक वास्तविक रूप से नाथपंथी जोगी और नामदेव जी ही हैं. नामदेव को हम हिन्दी का पहला संत कवि कह सकते हैं, पर इस शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि कबीर ही है. सात कवियों ने धार्मिक रूढ़ियो की उपेक्षा एवं आलोचना की. उन्होंने निगम, आगम, पुराण आदि को महत्त्वहीन प्रमाणित किया. किन्तु बौद्धों का दुःखवाद एवं शून्यवाद, वज्रयानियों की तांत्रिक-साधना, सिद्धों की गूढ़ोक्तियों के रूप में उलटबांसियों, नाथ-सम्प्रदाय की योग-साधना तथा काव्य-साधना किसी-न-किसी रूप में संत काव्य में समाहित हुई. संत संप्रदाय ने गुरु को ब्रह्म से भी महान माना है. इस शाखा के प्रमुख कवियों में कबीर, दादू, नानक, रैदास, सुन्दरदास, मलूकदास आदि उल्लेखनीय है. संत कबीर के शिष्य धर्मदास ने 1464 ई. में सर्वप्रथम कबीर की बिखरी हुई रचनाओं को 'बीजक' नाम से संग्रहित किया. जिसके तीन भाग है. साखी, सबद तथा रमैनी. उन्होंने हमेशा अवतारवाद, मूर्ति पूजा, रोजा, मस्जिद, मंदिर आदि का विरोध किया है. काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने 'कबीर ग्रंथावली' नाम ग्रंथ का प्रकाशन किया है.

ज्ञानमार्गी निर्गुण-धारा के अन्य कवियों में संत रैदास या रविदास ('रैदास की बानीं'), गुरु नानकदेव ('जपुजी-साहिब'), 'सिद्ध-गोष्ठी', 'असा दी बार', 'बारहमाहा', 'मझ दी वार', 'मलार की वार'), संत दादूदयाल ('हरडे-बानी', 'अंग-वधू'), सुरदास जी ('सुंदर-ग्रंथावली'), संत नामदेव ('संत नामदेव के पद'), संत मलूकदास ('ज्ञानबोध', 'रतनबोध', 'भक्त-रामावतार',

'गुरु-प्रताप', 'अलख-बानी'), रज्जब, अक्षर अनन्य, जंभनाथ, सिंगाजी, हरिदास निरंजनी आदि संत उल्लेखनीय है. ईस धारा के कवियों की मान्यता थी कि ईश्वर सत्य है और ईश्वर का ही अंश जीव में समाया हुआ हैं. वे मानते पे कि गुरु ही हमें सच्चा ज्ञान प्राप्त करा सकते हैं. निर्गुण की यह धारा समाज में अन्धकार को ज्ञान के उजाले के माध्यम से दूर करने के प्रयास और ईश्वर के निराकार रूप में विश्वास करती हैं.

(ब) प्रेमाश्रयी शाख्रा :

भक्तिकाल में निर्गुण उपासक भक्तों की प्रेमाश्रयी शाख्रा उन सूफी कवियों की हैं, जिन्होंने प्रेम-गाथाओं के रूप में उस प्रेम-तत्त्व का वर्णन किया है जो ईश्वर को मिलाने वाला तथा जिसका आभास लौकिक-प्रेम के रूप में मिलता है. सूफी कवियों ने भारतीय लोक-कथाओं को ग्रहण करें, उनमें अपनी भावनाओं को आरोपित कर दिया. सूफी कवियों की उदारता यह थी कि उन्होंने धर्म, जाति और सम्प्रदाय की संकुचित विचारधारा से ऊपर उठकर अपने विचार व्यक्त किये.

हिन्दी साहित्य में इस काव्यधारा का प्रवर्तन मध्यकाल से पूर्व हो चुका था. इसे 'सूफी काव्य', 'प्रेम-काव्य', 'प्रेम-कथानक काव्य', 'प्रेमाख्यान-कव्य' आदि नामों से जाना जाता है. इस परम्परा के काव्य-ग्रंथों में प्रेम-तत्त्व की प्रधानता है लेकिन ये परम्परागत भारतीय श्रृंगार भावना से बिल्कुल अलग है. इनकी रचनाओं में शुद्ध स्वच्छंदतापूर्ण दृष्टिकोण, सौन्दर्य-भावना, साहसपूर्ण क्रिया-कलाप एवं समाज विमुख प्रणय-भावना का चित्रण हुआ है. साथ ही, इनके ग्रंथों में भक्ति और ज्ञान का समन्वय तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता का परिचय मिलता है. हिन्दी मं प्रेमाश्रयी शाख्रा के प्रवर्तन के बारे में भले ही मतभेद हों, किन्तु मलिक मोहम्मद जायसी इस परंपरा के प्रमुख सूफी कवि है, इसमें कोई विवाद नहीं है.

इन कवियों ने अवधी भाषा को अपना माध्यम बनाया. जायसी का 'पद्मावत' सूफी काव्य-धारा का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है. इसमें जायसी का वस्तु-वर्णन, विरह-वर्णन, आध्यात्मिक संकेत, लोक-जीवन की अभिव्यक्ति एवं भाषा का निर्वाह, सब कुछ अत्यंत प्रभावशाली और हृदय-स्पर्शी है. प्रेमाश्रयी शाख्रा के प्रसिद्ध कवियों में कुतुबन, मंझन, उस्मान, शेख नबी, कासिम शाह और नूर महम्मद आदि का प्रमुख स्थान है. एवं उनकी प्रमुख रचनाएँ कुतुबन ('मृगावती'), मंझन ('मधुमालती'), उसमान ('चित्रावली'), शेख नबी ('ज्ञानदीप') और नूर मुहम्मद ('इंद्रावती', एवं 'अनुराग बाँसुरी') आदि उल्लेखनीय है.

2. सगुण काव्य धारा :

भिक्तिकाल में जिन भक्त कवियों ने ईश्वर के साकार स्वरूप की उपासना की है उनके द्वारा प्रवाहित साहित्य सगुण-मार्गी साहित्य कहलाया है. इस मार्ग के कवियों व भक्तों ने ईश्वर के मूर्ति-स्वरूप की उपासना की है. सगुण-मार्गी काव्यधारा को राम-मार्गी और कृष्ण-मार्गी सगुण-धारात्न में वर्गीकृत किया गया है.

(अ) रामभक्ति शाख्रा :

हिन्दी की रामकाव्य परंपरा का विकास स्वामी रामानन्द से माना जाता है. स्वामी रामानन्द ने भक्ति के क्षेत्र में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन किये और राम की मर्यादा भक्ति को आदर्श और आचरण की पवित्रता से मण्डित रखते हुए जन-साधारण के लिए सुगम बनाया. रामभक्त कवियों ने राम के जीवन को आधार बनाकर प्रबंध और मुक्तक काव्यों की रचनाएँ की. उन्होंने अवधी और ब्रज दोनों भाषाओं को अपनाया. काव्य-रचना के लिए उन्होंने दोहा, चौपाई, सोरठा, कवित, सवैया, छप्पय आदि विभिन्न छंदों का प्रयोग किया.

तुलसीदास रामभक्ति शाख्रा के प्रमुख कवि माने जाते हैं. जिन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के शील, शक्ति और सौंदर्य से संकलित अद्भुत रूप का गुणगान करते हुए लोकमंगल की साधनावस्था के पथ को प्रशस्त किया. शुक्लजी के अनुसार इनकी 12 रचनाएँ हैं. उनमें

से 'रामचरितमानस' उनका अअधी भाषा में रचित प्रसिद्ध महाकाव्य हैं. इसके सात खंड़ों में राम के जीवन का निर्देश करते हुए भारतीय समाज को कई सन्देश दिए है. यह भक्तिकाल का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ और महाकाव्य है. तुलसी के साहित्य में 'रामचरितमानस' के उपरान्त 'विनयपत्रिका' का स्थान है. यह पत्रिका रूप में प्रस्तुत की गई है. तुलसीदास से पूर्व के रामभक्त कवियों में विष्णुदास का नाम एवं कुछ जैन-कवियों की रचनाएँ भी उल्लेखनीय हैं. राम-भक्ति शाखा के अन्य प्रमुख कवियों में स्वामी अयदास, नाभादास, प्रियादास, प्राणचंद चौहान एवं हृदयराम का उल्लेखनीय स्थान है. इस धारा के अन्य कवियों की प्रमुख रचनाओं में ईश्वरदास ('भरत-मिलाप'), नाभादास ('रामाष्टयाम' एवं 'भक्तमाल'), अग्रदास ('अष्टयाम' एवं 'रामध्यान मंजरी'), प्राणचंद चौहान ('रामायण महानाटक'), हृदयराम ('हनुमन्नाटक') आदि महत्त्वपूर्ण है.

(ब) कृष्ण भक्ति शाखा :

मध्यकालीन सगुण भक्ति के आराध्य देवताओं में भगवान श्रीकृष्ण का स्थान सर्वोपरि है. 'भागवतपुराण' मध्यकालीन कृष्णभक्ति साहित्य का प्रेरणा-स्रोत रहा है. भक्ति आंदोलन के दौरान कृष्ण लीलाओं के गान की ओर कवियों को प्रेरित करने का श्रेय वल्लभाचार्य जी को है. जिन कवि-भक्तों ने 'कृष्ण' को अपना आराध्य मानते हुए उपासना की उन्हें कृष्णमार्गी धारा के अंतर्गत रखा जाता है. श्री वल्लभाचार्य को इसका प्रवर्तक माना जाता है. इनकी उपासना-पद्धति 'पुष्टिमार्ग' के नाम से जानी जाती है. सूरदास वल्लभाचार्य के ही शिष्य माने जाते हैं. वल्लभाचार्य के मत को आगे बढ़ाने का श्रेय उनके पुत्र विट्ठलनाथ को है. इन्होंने 'पुष्टि-मार्ग' को स्वीकार करने वाले आठ कवियों कुम्भनदास, सूरदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, गोविंदस्वामी, नंददास, छीतस्वामी और चतुर्भुजदास को 'अष्टछाप' की संज्ञा दी. 'अष्टछाप' के कवियों में 'वल्लभाचार्य' के चार शिष्य (सूरदास, परमानन्द दास, कुम्भनदास, कृष्णदास) और 'गोस्वामी विट्ठलनाथ' के चार शिष्य (छीतस्वामी, गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास, नंददास) सम्मिलित थे. ये कवि कृष्ण की लीलाओं का तथा उनके रूप-माधुर्य का वर्णन किया करते थे. उन्होंने कृष्ण के जीवन का सम्पूर्ण चित्रण करते हुए उनकी बाल और किशोर जीवन से संबंधित लीलाओं का भी वर्णन किया. इन कवियों ने अपनी रचनाओं में श्रृंगार का विषद चित्रण किया- विशेष रूप से विरह का.

कृष्णभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि सूरदास है. जिन्होंने आचार्य वल्लभ से दीक्षा लेकर श्रीनाथ जी की सेवा में ही अपना जीवन बिताया. सूर के द्वार लिखे गए पच्चीस ग्रंथ बतायें जाते हैं, किन्तु आधुनिक विद्वानों में उनकी तीन रचनाओं की ही प्रामाणिक माना है. वह है - 'सूर-सारावली', 'सूर-सागर' एवं 'साहित्य लहरी'. कृष्णभक्ति शाखा के अन्य प्रमुख कवियों में नन्ददास, कृष्णदास, परमानंददास, कुम्भनदास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, गोविंदस्वामी, हित हरिवंश, गदाधर भट्ट, मीराबाई, स्वामी हरिदास, श्री भट्ट, व्यास जी, रसखान एवं ध्रुवदास का नाम उल्लेखनीय है. इस धारा में विविध सम्प्रदायों की स्थापना हुई थी, जिनमें निम्बार्क सम्प्रदाय, सखी सम्प्रदाय, राधावल्लभी सम्प्रदाय आदि का नाम लिया जा सकता है.

5.6 भक्तिकाल की प्रवृत्तियाँ

भक्तिकाल की दोनों मुख्य धाराओं 'सगुण' और 'निर्गुण' तता उनकी रामाश्रयी, कृष्णाश्रयी और ज्ञानाश्रयी, प्रेमाश्रयी उप शाखाओं के आधार पर प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नवत हैं –

1. नाम-स्मरण :

ईश्वर के नाम-स्मरण का भाव सभी पन्थों की प्रवृत्ति रही हैं. इन कवियों ने जप, भजन, कीर्तन आदि के द्वारा अपने आराध्य के नाम-स्मरण को आधार बनाया है. यथा–

- 'भगति भजन हरि नाँव है, दूजा दुक्ख अपार ।
  मनसा वाचां कर्मणां, कबीर सुमिरण सारा'

एवं

- "लूटि सकै तो लूटियो, राम नाम है लूटि,
  पीछे ही पछिताहुगे, यहु तन जैहे छूटि."

2. गुरु का महत्त्व :

भक्तिकाल के कवियों ने गुरु को ईश्वर से भी ऊँचा दर्जा दिया है, वे गुरु को पथ-प्रदर्शक भी मानते हैं –

- "गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाय,
  बलिहारी गुरु आपणी, गोविन्द दियो बताय."

तथा

- "गुरु कुम्हार शिष कुम्भ है, गढ़ी-गढ़ी काढ़े खोट,
  अंतर हाथ सहार दैं, बाहर बाहै चोट."

एवं

- "गुरु सुआ जिहि पंथ दिखावा, बिनु गुरु जगत को निर्गुण पावा."

3. रुढ़ मान्यताओं का विरोध :

कबीर की 'बानी' हो या तुलसी की 'चौपाइयाँ', इन सभी में समाज के प्रति जागृति के स्वर सुनाई देते है. इनकी रचनाओं में समाज में फैले अंधविश्वास, रुढ़ियाँ, कुरीतियों का विरोध स्पष्ट परिलक्षित होता है. यथा –

- पीपर-पाथर पूजन लागे, तीरथ-बरत भुलाना. माला पहिरें, टोपी पहिरे छाप तिलक अनुमाना.
- आतम-छांडी पषाने पूजै, तिनका थोथा ज्ञाना, आसन भारि डिम्भ धरि बैठे, मन में बहुत गुमाना.

4. समन्वय की भावना :

इस युग की रचनाओं में समन्वय का भाव प्रकट होता रहा है. जीवन के प्रत्येक पहलुओं में समन्वय का भाव प्रकट किया गया है, जैसे –

"हरि हर पद रति मतिन कुतर की."

इसमें तुलसीदास जी ने शिव और विष्णु में एकत्व दिखाकर शैव भक्तों और वैष्णव भक्तों के समन्वय की बात की है.

5. प्रेम भावना का आधिपत्य :

प्रेममार्गी कवियों ने प्रेम को विशेष महत्त्व दिया है. नायक-नायिकाओं के प्रेम प्रसंग का श्रृंगारिक वर्णन इन कवियों की रचनाओं में प्रकट होता रहा है. प्रियतमा की प्राप्ति को ईश्वर की प्राप्ति समझने की प्रतीकात्मकता इस दौर में देखी जाती है.

6. राजनैतिक परिवेश का त्याग :

भक्तिकाल की कविताओं में आदिकाल की तरह राजाओं के प्रशस्ति-गान नहीं है. इस काल में समाज को केन्द्र में रखकर समाजोन्मुखी साहित्य रचा गया था. इन कवियों का साहित्य आम-इन्सानों का साहित्य था. प्रेम-मार्ग में राजाओं की कहानी थी किन्तु उसका लक्ष्य उसके माध्यम से लोगों में भक्ति की लौ जगाना मात्र था.

7. लोकगाथाओं का प्राधान्य :

भक्तिकाल में लोक-कथाओं का महत्त्व अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है. ये कथाएँ सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक मूल्यों के प्रसार में, मनोरंजन प्रदान करने, और भाषा और साहित्य

के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती थी. सूफी कवियों ने भक्ति के प्रचार-प्रसार हेतु जन-मानस में प्रचलित लोक-गाथाओं का माध्यम बनाया.

8. भाषा की सरलता और भाषा-वैविध्य :

समाज के कोने-कोने में भक्ति के साथ जीवन जीने के आदर्श प्रस्तुत करने का लक्ष्य लेकर जीने वाले भक्तिकाल के कवियों ने आम समाज को ध्यान में रखा था. परिणामस्वरूप इन कवियों ने आम-जन की भाषा को ही अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया. तुलसीदास ने अवधी और ब्रज, कबीर ने सधुक्कड़ी भाषा, सूर ने ब्रज तथा जायसी ने अवधी भाषा का प्रयोग किया.

9. छंद और अलंकारों का प्रयोग :

विविध छंदों, अलंकारों, बिम्बों, प्रतीकों का प्रयोग इस काल में देखने को मिलता है. जैसे – कबीर ने दोहा और पद, सुरदास जी ने पद, जायसी ने दोहा-चौपाइ, तुलसी ने दोहा, सोरठा, बरवै, कवित, सवैया आदि के माध्यम से अपने भावों को अभिव्यक्त किया.

10. लोक-जीवन से जुड़ाव :

भक्त कवि किसी राजा या बादशाह के दरबारी कवि नहीं थे. इनमें से कई तो कोई न कोई व्यवसाय करते थे. कबीर पैशे से जुलाहा थे, रैदास चर्मकार. तुलसीदास कथावाचक थे. इसलिए उनकी कविता में भी लोक-जीवन से जुड़े विषय ही प्रधान थे. तुलसीदास ने तो स्पष्ट रूप से लिखा था कि - जो कवि प्राकृत-जनों, राजा-महाराजा का गुणगान करता है उसकी कविता पर सरस्वती अपना सिर धुनकर पछताती है. वस्तुतः भक्त कवियों ने राम को ही अपना राजा समझा और सामान्य जनता के बीच ही अपनी कविता ले गये. इस तरह उनकी कविता में लोक-जीवन का समावेश हुआ.

इस प्रकार हम पाते हैं कि भक्त कवियों में कुछ ऐसी विशेषताएँ है जो सभी में समान रूप में मिलती है. भक्ति का मार्ग ईश्वर की आराधना का सरल, सहज और सर्व-सुलभ मार्ग था. इन मार्ग में छोटे-बड़े और ऊँच-नीच का कोई भेद नहीं था.

5.7 सार-बिन्दु :

- भक्ति-काल हिन्दी साहित्य का 'स्वर्ण-काल' माना जाता है. इसका समय आचार्य शुक्ल ने वि.सं. 1375 से 1700 तक माना गया है. इसे 'पूर्व-मध्यकाल' कहकर भी सम्बोधित किया जाता है.
- भक्तिकाल को जॉर्ज ग्रियर्सन ने 'स्वर्ण-काल', डॉ. श्यामसुन्दर दास ने 'स्वर्ण युग', आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'भक्तिकाल' एवं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'लोक-जागरणकाल' कहा है.
- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भक्ति को रिभाषित करते हुए कहा है – "श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है."
- भक्ति आंदोलन का मूल स्रोत भारतीय जनता की गहरी धार्मिक प्रवृत्ति और उसकी आध्यात्मिक पिपासा थी.
- निर्गुण भक्ति के संत कवियों ने समाज की जड़ता, अंधविश्वासों और रुढ़िगत प्रथाओं के विरुद्ध खुलकर आवाज उठाई. उन्होंने मानवता, समानता और प्रेम पर आधारित समाज की कल्पना की.
- दक्षिण भारत की भक्ति-परम्परा का आदर्श धार्मिक विषमता के क्षेत्र में समाज को समन्वयशील बनाने का था. रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य आदि दक्षिण के आचार्यों ने दक्षिण की भक्ति-परम्परा को उत्तर में फैलाने का कार्य किया.
- भक्तिकाल के कवियों ने अपने काव्य में उदारता समरसता और जीवन-सापेक्षता को

स्थान दिया. उनकी दार्शनिक दृष्टि जहाँ लोक-जीवन के निकट पहुँचती है, वहीं उनकी साधना कवित्व की कल्पना और अनुभूति के माध्यम से अधिक स्पष्ट और हृदयग्राही बन जाती है.

- तुलसीदास, सूरदास और मलिक मोहम्मद जायसी जैसे कवियों के काव्य में समन्वय स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है – जहाँ दर्शन, भक्ति और काव्य एक दूसरे में घुल-मिलकर लोकजीवन को आध्यात्मिक ऊँचाई प्रदान करते हैं.
- निर्गुण भक्ति की ज्ञानाश्रयी शाखा को 'संत-काव्य' भी कहा जाता है. अंत-साधना में योग-प्रक्रिया एवं तंत्र-साधना की जो प्रधानता है, उसका मूल-स्रोत नाथ-पंथी साधना पद्धति ही है.
- बौद्धों का दुःखवाद एवं शून्यवाद, वज्रयानियों की तांत्रिक-साधना, सिद्धों की गूढ़ोक्तियों के रूप में उलटबासियों, नाथ-सम्प्रदाय की योग-साधना तथा काव्य-साधना किसी-न-किसी रूप में संत काव्य में समाहित हुई.
- सूफी कवियों ने भारतीय लोक-कथाओं को ग्रहण कर, उनमें अपनी भावनाओं को आरोपित कर दिया. सूफी कवियों की उदारता यह था कि उन्होंने धर्म, जाति और सम्प्रदाय की संकुचित विचारधारा से ऊपर उठकर अपने विचार व्यक्त किये.
- सूफी रचनाओं में शुद्ध स्वच्छंदतापूर्ण दृष्टिकोण, सौन्द्रय-भावना, साहसपूर्ण क्रिया-कलाप एवं समाज विमुख प्रणय-भावना का चित्रण हुआ है. साथ ही, इन ग्रंथों में भक्ति और ज्ञान का समन्वय तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता का परिचय भी मिलता है.
- रामभक्त कवियों ने राम के जीवन को आधार बनाकर प्रबंध और मुक्तक काव्यों की रचनाएँ की. उन्होंने अवदी और ब्रज दोनों भाषाओं को अपनाया. काव्य-रचना के लिए उन्होंने दोहा, चौपाई, सोरठा, कवित, सवैया, छप्पय आदि विभिन्न छंदों का प्रयोग किया.
- जिन-कवि-भक्तों ने 'कृष्ण' को अपना आराध्य मानते हुए उपासना की उन्हें कृष्णमार्गी धारा के अंतर्गत रखा जाता है. श्री वल्लभाचार्य को इसका प्रवर्तक माना जाता है. इनकी उपासना-पद्धति 'पुष्टिमार्ग' के नाम से जानी जाती है.
- 'अष्टछाप' के कवियों ने 'वल्लभाचार्य' के चार शिष्य (सूरदास, परमानंद दास, कुम्भनदास, कृष्णदास) और 'गोस्वामी विठ्ठलनाथ' के चार शिष्य (छीतस्वामी, गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास, नंददास) सम्मिलित थे.
- भक्तिकाल के कवियों ने गुरु को ईश्वर से भी ऊँचा दर्जा दिया है, वे गुरु को पथ-प्रदर्शक भी मानते हैं.
- तुलसीदास ने अवधी और ब्रज, कबीर ने सधुक्कड़ी भाषा सूर ने ब्रज तथा जायसी ने अवधी भाषा का प्रयोग किया. छंदों में कबीर ने दोहा और पद, सुरदास जी ने पद, जायसी ने दोहा-चौपाई, तुलसी ने दोहा, सोरठा, बरवै, कवित, सवैया आदि के माध्यम से अपने भावों को अभिव्यक्त किया.
- इस काल में समाज को केन्द्र में रखकर समाजोन्मुखी साहित्य रचा गया था. इन कवियों का साहित्य आम-इंसानी का साहित्य था.

5.8 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली :

- **निबंधात्मक प्रश्न :**

(1) भक्ति क्या है ? उसका स्वरूप स्पष्ट करते हुए भक्तिकाल के उदय की प्रेरक परिस्थितियों पर विचार कीजिए.

(2) भक्तिकाल की सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों तथा उनके प्रभावों की चर्चा कीजिए.

(3) भक्तिकाल को 'स्वर्ण-काल' क्यों कहा जाता है ? हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल के महत्त्व पर प्रकाश डालिए.

(4) भक्तिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियों पर सविस्तार प्रकाश डालिए.

(5) भक्तिकालीन निर्गुण और सगुण काव्याधारा का विस्तृत परिचय दीजिए.

- **टिप्पणी :**

(1) भक्तिकाल की समय सीमा और नामकरण संबंधी विविध मत.

(2) भक्तिकाल की साहित्यिक परिस्थितियाँ

(3) भक्तिकाल के साहित्य की भाषा एवं शिल्प संबंधी प्रवृत्तियाँ

(4) संत एवं सूफी साहित्य

(5) राम भक्ति शाखा एवं कृष्ण भक्ति शाखा का काव्य

- **एक वाक्य में उत्तर दीजिए. :**

(1) जायसी के प्रमुख ग्रंथों के नाम लिखिए.

(2) प्रमुख सूफी कवियों के नाम लिखिए.

(3) कबीर वाणी का संकलन किसने तथा किस नाम से किया है ?

(4) वल्लभाचार्य ने किस मार्ग की स्थापना की ?

(5) 'रामचरितमानस' किसकी रचना है ?

(6) वल्लभाचार्य के चार शिष्य कौन थे ?

(7) सूरदास की रचनाओं के नाम लिखिए.

(8) सगुण और निर्गुण का भेद समझाइए.

5.9 उपयोगी अध्ययन सामग्री :

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल
2. भक्तिकाव्य और लोकजीवन, शिवकुमार मिश्र
3. भक्ति-आंदोलन और भक्ति-काव्य, शिवकुमार मिश्र
4. हिन्दी साहित्य : उद्‌भव और विकास, हजारी प्रसाद द्विवेदी
5. भक्ति काव्य की भूमिका, प्रेमशंकर
6. साहित्य और इतिहास देशती, मैनेजर पाण्डेय
7. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी
8. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह

इकाई 6 निर्गुण ज्ञानमार्गी भक्तिकालीन कविता : कबीर के दोहे

इकाई की रूपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 कबीर का जीवन परिचय

6.3.1 जन्म एवं प्रारंभिक जीवन

6.3.2 गुरु और दीक्षा

6.3.3 गृहस्थ जीवन और साधना

6.3.4 वैचारिक दृष्टि और सामाजिक चिंतन

6.3.5 मृत्यु और किंवदंती

6.4 कबीर : साहित्यिक परिचय

6.5 सार-बिन्दु

6.6 परीक्षोपयोगी प्रश्न

6.7 उपयोगी पाठ्य सामग्री

6.1 उद्देश्य

विद्यार्थी मित्रों ! पिछली इकाई में हमने हिन्दी काव्य के भक्तिकाल की परिस्थितियों और उस समय रची जाने वाली कविताओं की प्रमुख प्रवृत्तियों का विहंगावलोकन किया. अब इस युग का अधिक घनिष्ठ परिचय प्राप्त करने के उद्देश्य से भक्तिकाल की चार मुख्य धारा में से प्रत्येक के एक प्रतिनिधि कवि और उदाहरण स्वरूप उनकी कुछेक रचनाओं का अध्ययन इस इकाई से आरंभ होने जा रहा है. इस इकाई में हम निर्गुण ज्ञानमार्गी शाखा के सर्वप्रमुख भक्तकवि कबीर का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करते हुए उनके कुछ बहुप्रसिद्ध दोहों का पाठ और व्याख्या देखेंगे.

6.2 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य की भक्ति-परंपरा में संत कबीर का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट है. वे निर्गुण भक्ति धारा के प्रमुख कवि हैं. जिनकी वाणी में अनुभव की सच्चाई, समाज-सुधार की चेतना और मानवीय मूल्यों की गहरी समझ दिखाई देती है. कबीर के दोहे सरल भाषा में कहे गए होते हुए भी अर्थ की दृष्टि से अत्यंत गहन और बहुस्तरीय है. कबीर ने अपने दोहों के माध्यम से आडंबर, रूढ़ियों, अंधविश्वास और सामाजिक विषमताओं पर तीखा प्रहार किया है. उन्होंने बाह्य कर्मकांडो के स्थान पर आत्मानुभूति, प्रेम, सत्य और सदाचार का जीवन का मूल आधार माना. गुरु, ईश्वर, आत्मा, भाषा, अहंकार, भक्ति और मानव-कल्याण जैसे विषय कबीर के दोहों में सहज रूप से अभिव्यक्त होते है.

इस इकाई में चयनित कबीर के दोहों के अध्ययन के माध्यम से विद्यार्थीयों को न केवल कबीर के दार्शनिक विचारों से परिचित कराया जाएगा, बल्कि उन्हें जीवन की व्यावहारिक समस्याओं पर चिंतन करने की प्रेरणा भी मिलेगी. यह इकाई भाषा की सरलता, भाव की गहराई और संदेश की सार्वणलिकता के कारण विद्यार्थियों के बौद्धिक और नैतिक विकास में सहायक सिद्ध होगी.

6.3 कबीर का जीवन परिचय

हिन्दी साहित्य की निर्गुण भक्ति परंपरा में संत कबीर का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण, प्रभावशाली और विशिष्ट है. वे न केवल एक महान कवि थे, बल्कि समाज-सुधारक, धर्मचिंतक और मानवतावादी दार्शनिक भी थे. उनके जीवन से संबधित ऐतिहासिक तथ्यों में पर्याप्त मतभेद पाए जाते हैं, किन्तु परंपरा, साहित्यिक साक्ष्यों और लोककथाओं के आधार पर उनके जीवन का सम्यक् परिचय प्रस्तुत किया जा सकता है.

6.3.1 जन्म एवं प्रारंभिक जीवन :

संत कबीर का जन्म सामान्यतः **संवत् 1**455 (ई. 1398) **में काशी (वाराणसी) के निकट लहरतारा** नामक स्थान पर माना जाता है. किंवदंती के अनुसार वे एक विधवा ब्राह्मणी द्वारा त्यागे गए शिशु थे, जिन्हें एक मुस्लिम जुलाहा दंपति **नीरु और नीमा** ने अपनाकर पाला. इसी कारण कबीर का पालन-पोषण मुस्लिम परिवेश में हुआ, जबकि उनकी साधना और विचारधारा हिन्दू भक्ति परंपरा से भी जुड़ी रही. यह द्वैत उनके व्यक्तित्व में समन्वयवादी दृष्टि के रूप में विकसित हुआ.

6.3.2 गुरु और दीक्षा :

कबीर के गुरु के रूप में **स्वामी रामानंद** का नाम सर्वमान्य है. यद्यपि रामानंद सगुण वैष्णव भक्ति के आचार्य थे, कबीर ने उनसे निर्गुण ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त किया. प्रचलित कथा के अनुसार, कबीर ने गंगा घाट की सीढ़ियों पर लेटे रामानंद के मुख से अनायास निकले 'राम-राम' मंत्र को गुरु-मंत्र के रूप में ग्रहण किया. गुरु-भक्ति और गुरु-महिमा कबीर की वाणी का प्रमुख विषय है.

6.3.3 गृहस्थ जीवन और साधना :

कबीर गृहस्थ संत थे. उन्होंने सन्यास ग्रहण नहीं किया, बल्कि जुलाहे का कार्य करते हुए साधना की. उनके लिए श्रम और साधना में कोई विरोध नहीं था. वे मानते थे कि ईश्वर-प्राप्ति गृहस्थ जीवन में रहकर भी संभव है, यदि मन निर्मलऔर आचरण सत्यनिष्ठ हो.

6.3.4 वैचारिक दृष्टि और सामाजिक चिंतन :

कबीर का चिंतन **निर्गुण, निराकार ब्रह्म** की उपासना पर आधारित है. उन्होंने ईश्वर को नाम, रूप और बाह्य प्रतीकों से परे माना. उनके अनुसार ईश्वर मंदिर, मस्जिद, तीर्थ या मूर्तियों में नहीं, बल्कि मानव हृदय में निवास करता है.

कबीर ने अपने काव्य के माध्यम से समाज में व्याप्त –

- जाति-पाति और ऊँच-नीच
- धार्मिक पाखंड और कर्मकाण्ड
- मूर्तिपूजा और बाह्य आडंबर
- कट्टरता और संकीर्णता

का निर्भीक और तीखा विरोध किया. वे हिन्दू और मुस्लिम – दोनों समुदायों की रूढ़ियों पर समान रूप से प्रहार करते हैं. उनके लिए **मानवता धर्म से ऊपर** है.

8.3.5 मृत्यु और किंवदंती :

कबीर का देहावसान सामान्यतः **संवत् 1518 (ई. 1511) मं मगहर** में माना जाता है. लोक विश्वास के अनुसार मगहर में मृत्यु होने से मोक्ष नहीं मिलता, किन्तु कबीर ने इस अंधविश्वास को तोडनें के लिए वहीं प्राण त्यागे. किंवदंती है कि उनके निधन के पश्चात

शव के स्थान पर फूल मिले, जिन्हें हिन्दू और मुस्लिम अनुयायियों ने आपस में बाँट लिया. यह घटना उनके जीवन-दर्शन और समन्वयवादी चेतना की प्रतीक मानी जाती है.

संत कबीर का जीवन संघर्ष साधना और सामाजिक चेतना का अद्‌भुत संगम है. उनका व्यक्तित्व जाति, धर्म और संप्रदाय की सीमाओं से ऊपर उठकर सार्वभौमिक मानव मूल्यों की स्थापना करता है. कबीर का काव्य और जीवन-दर्शन आज भी उतना ही प्रासंगिक है, जितना उनके समय में था.

6.4 कबीर : साहित्यिक परिचय

कबीर के काव्य पर वेदान्त का अद्वैत, नाथ पंथियों की अन्तस्साधनात्मक रहस्य भावना, हठयोग, कुंडलिनी योग, सहज साधना, इस्लाम का एकेश्वरवाद सबका प्रभाव परलक्षिति होता है.

कबीर की भाषा **सधुक्कड़ी** कहलाती है, जिसमें अवधी, ब्रज, भोजपुरी, राजस्थानी और खड़ी बोली के शब्दों का सहज मिश्रण मिलता है. उनकी भाषा सरल, लोकप्रचलित, किंतु भाव और विचार की दृष्टि से अत्यंत गूढ है.

कबीर की रचनाएँ मुख्यतः –

- दोहे
- साखियाँ
- सबद
- उलटबाँसियाँ

के रूप में उपलब्ध है. कबीर की वाणी का संग्रह 'बीजक' कहलाता है. इसके तीन भाग है सबद, रमैनी और साखी. रमैनी और सबद गेय पद है, साखी दोहों में हैं, कबीर मिथ्याचार, कर्मकांड, हिंसा, बाह्य आडम्बरं, पाखंडो, ऊँच-नीच, जात-पाँत, धर्म-सम्प्रदाय आदि का आजीवन विरोध करते रहे. परम्परा पर संदेह, यथार्थ-बोध, व्यंग्य, रहस्य भावना, उलटबासियाँ, प्रतीकों का प्रयोग आदि उनकी वाणी की विशेषताएँ हैं.

6.5 कबीर के दोहे

1. ऐसी बानी बोलिए मन का आपा खोय.
औरन को शीतल करें आपहु शीतल होय.

व्याख्या : प्रस्तुत दोहे में वाणी के संदर्भ मं कबीरदासजी ने कहा है कि ऐसी वाणी बोलनी चाहिए जो सुनने वाले के मन को अच्छी लगे. ऐसी वाणी से दूसरें लोगों को तो सुख मिलता ही है, स्वयं का मन भी आनंदित रहता है.

2. तिनका कबहूँ ना निन्दिये जो पाँवन तर होय,
कबहूँ उड़ी आँखिन पड़े तो पीर घनेरी होय.

व्याख्या : कबीरदासजी कहते हैं कि पैरों के नीचे दबे हुए तिनके की कभी निंदा मत कीजिए. क्योंकि हवा आने पर यह कभी भी उड़ कर आँख में आ सकता है, जो कि अत्यंत ही तो बहुत पीड़ा दे सकता है. ठीक उसी प्रकार समाज का कोई भी मनुष्य महत्त्ववहीन नहीं है. हमें हमसें निम्नवर्ग के लोगों का भी आदर करना चाहिए. कभी किसी की निंदा नहीं करनी चाहिए.

3. बड़ा भये तो क्या भया जैसे पेड़ खजूर,
पंछी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर.

व्याख्या : कबीरदासजी कहते है कि भले ही खजूर का पेड़ बहुत बड़ा होता है, पर

न तो वह किसी को छाया देता है और न ही कोई सरलता से उसके फल को प्राप्त कर सकता है, इसीलिए समाज में बड़े होने का कोई महत्त्व नहीं यदि वह किसी के काम नहीं आ सकता.

4. **मन के हारे हार है मन के जीते जीत,**
कहे कबीर हरि पाइए मन ही की परतीत

व्याख्या : कबीर ने इस दोहे में आत्मविश्वास की शक्ति का विचार किया है. हमारा मन ही शक्तिशाली होता है. मन की शक्ति को अर्थात् आत्मविश्वास को कोई पहचान लेता है तो उसे संसार की कोई भी मुसीबत विचलित नहीं कर सकती है. ईश्वर की प्राप्ति जैसा कटिन कार्य भी जब मन की शक्ति से सरल बन जाता है तो हमारे सारे कार्यों में मन की शक्ति को ही बनाये रखने की आवश्यकता है.

5. **जिन ढूँढा तिन पाइया, गहरै पानी पैठ**
मैं बपुरा डूबन डरा, रह किनार बैठ.

व्याख्या : कबीरदास का यह दोहा एक प्रेरणात्मक विचार प्रस्तुत करता है. जो व्यक्ति समुद्र की गहराई तक जाता है. वही व्यक्ति समुद्र के मोती प्राप्त करता है. पानी में डूबने के डर से किनारे पर बैठे रहनेवाले के हाथ में कुछ नहीं आता है. कवि परिश्रम के महत्त्व को बताते हुए कहते है कि बिना पुरुषार्थ किये हम कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते, केवल प्रारब्ध पर ही भरोसा रखकर बैठने वाले लोग निष्फलता ही प्राप्त करते हैं. हमें मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है तो हमें परिश्रम का मूल्य समझना चाहिए, संसार के प्रत्येक जीवों को जीवन यापन के लिए या लक्ष्य प्राप्त करने के लिए परिश्रम करना ही पड़ता है.

6. **गुरु गोविंद दोनों खड़े, काके लागूं पांय,**
बलिहारी गुरु आपनो, गोविंद दियो मिलाय.

व्याख्या : यदि गुरु और गोविन्द (ईश्वर) दोनों साथ खड़े हों तो मैं गुरु के ही चरण स्पर्श पहले करूँगा. क्योंकि गुरु ने ही ईश्वर-प्राप्ति की शह दिखाई है. गुरु ही ईश्वर मिलन के प्रेरक है. कवि प्रस्तुत दोहे में गुरु का महत्त्व बताते हुए, बिन गुरु हमारा जीवन दिशाहीन होता है, हमारे जीवन में ईश्वर से भी बढ़कर गुरु का स्थान होना चाहिए क्योंकि उसी ने ईश्वर से मिलाया है.

7. **पानी केरा बुदबुदा, अस मानुस की जात,**
एक दिना छिप जाएगा, ज्यों तारा परभात.

व्याख्या : प्रस्तुत दोहे में कवि जीवन की क्षणभंगुरता का संदेश देते हुए कहते हैं मनुष्य का जीवन पानी के बुलबुले जैसा है. जिस प्रकार बुलबुले का अस्तित्व नश्वर होता है ठीक उसी प्रकार मनुष्य का जीवन भी नश्वर होता है. जैसे प्रभात होते ही तारे छिप जाते हैं, वैसे ही एक दिन यह शरीर भी नष्ट हो जाएगा. पानी का बुलबुला दिखने में चाहे कितना ही सुंदर क्यों न लगता हो, उसका अस्तित्व पल भर के लिए ही होता है. जिस प्रकार सुबह होते ही तारे छुप जाते हैं वैसे ही वक्त आने पर हमें यह दुनिया भी छोड़नी पड़ेगी, इसलिए हमें अभिमान से जीवन नहीं जीना चाहिए.

8. **दुर्लभ मानुष जन्म है, देह न बारम्बार,**
तरुवर ज्यों पत्ता झड़े, बहुरि न लागे डारा

व्याख्या : कबीर मानव जीवन के महत्त्व को समझाते हुए कहते हैं कि इस संसार में मनुष्य का जन्म बड़ी मुश्किल से मिलता है. यह मानव शरीर बार-बार नहिं मिलता. जैसे वृक्ष से पत्ता झड़ जाए तो दोबारा डाल पर नहीं लगता. ठीक वैसे ही मानव देह भी बार बार नहीं मिलती. संसार के सभी प्राणियों में मनुष्य को ही श्रेष्ठ माना गया है. जब मनुष्य को ईश्वर ने इतना अच्छा अवसर दिया है तो मनुष्य इसे सार्थक बनाना चाहिए,

माया मुई न मन मुवा, मरि मरि गया शरीर,
आसा त्रिष्णा मुई यों कहि गया कबीर.

व्याख्या : प्रस्तुत दोहे में कवि कहता है कि हमारा शरीर अनगिनत बार मरता है. लेकिन मोह माया कभी नष्ट नहीं होती ना ही मन की इच्छाएँ. हमारे मन रह रही हमारी लालसा, इच्छाएं, मोहभाव, वासना कभी नहीं मरती. ये सब हमारे मन से जीवित ही रहती है. अतः हमारें मन को हमें नियंत्रण में रखना चाहिए. मन से मोह-माया, वासना, लालसा आदि को हमें समाप्त कर देना चाहिए, मनुष्य जन्म-जन्मान्तर तक किसी न किसी माया का गुलाम बना रहता है. त्याग भावना, निर्मोहीपन और संयमशीलता का बोध यहाँ प्राप्त होता है.

9. "पढ़ी पढ़ी के पत्थर भया लिख्र लिख्र भया जू ईट,
कहें कबीरा प्रेम की लगी न एको छींटा"

व्याख्या : अधिक पढ़ाई के बाद भी मनुष्य ईंट या पत्थर के समान कठोर बना रहे तो उसका क्या फायदा ? जिस पर प्रेम का एक छिंटा भी न पड़ा हो अर्थात् वह संवेदनहीन हो तो उसका अधिक ज्ञान किसी काम का नहीं. केवल पढ़-लिख्रकर महान बन जाने से कुछ नहीं होता, उसमें प्रेम, संवेदना का होना जरुरी है. मात्र ज्ञान की प्राप्ति पर्याप्त नहीं है. कबीर ने समाज के पीडितों पर आक्रोश व्यक्त किया है.

अभ्यास प्रश्न :

1, कबीर वाणी का संग्रह किस ग्रन्थ में प्राप्त होता है ?

2. कबीर को किस धारा का कवि माना गया है ?

3. कबीर तिनके के द्वारा क्या कहना चाहते हैं ?

4. कौन लोग मोती प्राप्त कर सकते है ?

5. कवि ने गुरु को क्या महत्त्वपूर्ण माना है ?

6. कबीर मनुष्य जीवन के बारे में क्या कहते है ?

7. पढ़े-लिखे लोगों पर कबीर क्या व्यंग करते है ?

6.7 सार-बिन्दु :

- ज्ञानमार्गी कबीर ने एक महान समाज सुधारक की भूमिका निभाई थी.
- कबीर की वाणी को 'बीजक' ग्रन्थ में संग्रहित किया गया है.'
- कुप्रथा, अहंकार, झूठी मान्यताओं का कबीर ने विरोध किया था.

6.8 बोध प्रश्न :

1. सरलार्थ कीजिए :

(1) "माया मुई न मन... कहि गया कबीर" दोहे की व्याख्या कीजिए,

2. टिप्पणी लिखिए :

(1) कबीर का साहित्यिक परिचय

3. वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

1. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए.

(1) कबीर की वाणी का ..... संग्रह है. (रमैनी/बीजक)

2. सही के सामने '√' गलत के सामने 'X' का निशान लगाएं.

(1) कबीर के काव्य पर नाथ पंथियों की अन्तसाधनात्मक रहस्यभावना का प्रभाव पड़ा.

6.9 संदर्भ सूचि :

1. हजारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर
2. डॉ. रामचंद्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास
3. 'परशुराम चतुर्वेदी – उत्तरी भारत की संत परंपरा'
4. श्यामसुंदर दास (सं.) – कबीर ग्रंथावली
6. नगेन्द्र –भक्ति आंदोलन और संत काव्य
7. bharatdiscovery.org
8. www.hindikunj.com

इकाई 7 'पद्मावत' – जायसी

इकाई की रूपरेखा

7.1 उद्देश्य

7.2 प्रस्तावना

7.3 मलिक मोहम्मद जायसी का परिचय एवं योगदान

7.4 पद्मावत : संक्षिप्त खंड का सारांश

7.5 मानसरोवर खंड का सारांश

7.6 पद्मावत : व्याख्या-भाग

7.6.1 मानसरोवर खंड : (एक दिवस पून्यो तिथि आई...)

7.6.2 मानसरोवर खंड : (खेलत मानसरोवर गई...)

7.6.3 मानसरोवर खंड : (सरवर तीर पद्मिनी आई...)

7.7 पद्मावत : एक समीक्षात्मक दृष्टि

7.7.1 पद्मावत की कथावस्तु

7.7.2 प्रतीक योजना एवं दार्शनिक दृष्टि

7.7.3 पद्मावत की कथानक रुढ़ियाँ

7.7.4 पद्मावत : एक सूफी प्रेमाख्यान

7.7.5 पद्मावत की ऐतिहासिकता

7.7.6 भाषा-शैली

7.7.7 उद्देश्य

7.8 सार-बिन्दु

7.9 परीक्षा-उपयोगी प्रश्नावली

7.10 उपयोगी अध्ययन सामग्री

7.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को मलिक मोहम्मद जायसी कृत 'पद्मावत' का समग्र, क्रमबद्ध एवं आलोचनात्मक अध्यन कराना है. प्रस्तुत इकाई के माध्यम से छात्रों को जायसी के व्यक्तित्व, उनकी काव्य-दृष्टि तथा सूफी प्रेमाख्यान परंपरा में उनके योगदान से परिचित कराना मुख्य लक्ष्य है. साथ ही 'पद्मावत' को केवल ऐतिहासिक आख्यान न मानकर एक गूढ प्रतीकात्मक, दार्शनिक और सांस्कृतिक महाकाव्य के रूप में समझने की दृष्टि विकसित करना भी इस इकाई का उद्देश्य है.

इस इकाई का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य 'पद्मावत' के कथानक-विन्यास और उसके विभिन्न खंड़ों-विशेषतः मानसरोवर खंड़ - की व्याख्या द्वारा सूफी साधना-पथ को स्पष्ट करना है. विद्यार्थी यह समझ सकें कि जायसी ने किस प्रकार लौकिक प्रेम को आध्यात्मिक प्रेम में रुपांतरित किया है तथा रत्नसेन, पद्मिनी और अलाउद्दीन जैसे पात्र प्रतीकात्मक अर्थ ग्रहण करते हैं.

इकाई का उद्देश्य 'पद्मावत' के महाकाव्यत्व की पहचान कराना भी है – जिसमें कथावस्तु की व्यापकता, नायक-नायिका की गरिमा, उद्देश्य की उदात्तता, संवाद-योजना, देशकाल-चित्रण और कलात्मक संतुलन सम्मिलित है. इसके अंतर्गत पात्र-योजना, संवाद-योजना तथा भाषा,

शिल्प और शैली का विश्लेषण कर विद्यार्थियों में काव्य-समीक्षा की क्षमता का विकास करना भी अपेक्षित है.

इसके अतिरिक्त, इस इकाई का उद्देश्य मध्यकालीन भारतीय समाज, संस्कृति, नारी-चेतना, मर्यादा-बोध और सूफी दर्शन की अवधारणाओं को 'पद्मावत' के संदर्भ में समझाना है. देशकाल के माध्यम से तत्कालीन ऐतिहासिक-सांस्कृतिक परिवेश की पहचान कराना भी इस इकाई की उपलब्धि है.

अंततः, इस इकाई का उद्देश्य विद्यार्थियों में आलोचनात्मक दृष्टि, तुलनात्मक विवेक तथा साहित्यिक संवेदनशीलता का विकास करना है, जिससे वे 'पद्मावत' को ऐतिहासिक, सूफी, सांस्कृतिक और साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में समग्र रूप से मूल्यांकित कर सकें.

7.2 प्रस्तावना

मलिक मोहम्मद जायसी मध्यकालीन हिन्दी साहित्य की सूफी काव्य-परंपरा के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कवि माने जाते है. उनकी प्रसिद्ध कृति 'पद्मावत' न केवल प्रेमाख्यान परंपरा की श्रेष्ठ रचना है, बल्कि वह भारतीय साहित्य, संस्कृति और आध्यात्मिक चेतना का एक सशक्त काव्यात्मक दस्तावेज भी है. अवधी भाषा में रचित यह ग्रंथ सूफी दर्शन, लोक-संस्कृति और भारतीय काव्य-परंपरा का अद्‌भुत समन्वय प्रस्तुत करता है.

'पद्मावत' की कथा चितौड़ के राजा रत्नसेन, सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मिनी और अलाउद्दीन खिलजी के प्रसंगों के माध्यम से विकसित होती है. यद्यपि कथा का आधार ऐतिहासिक माना जाता है, किंतु जायसी का उद्देश्य इतिहास-लेखन नहीं है. वे ऐतिहासिक घटनाओं को प्रतीकात्मक रुप देकर आत्मा-परमात्मा के मिलन, साधना, प्रेम, विरह और त्याग की सूफी अवधारणाओं को व्यक्त करते हैं. मानसरोवर खंड़ से आरंभ होकर संपूर्ण काव्य साधना-पथ की एक क्रमिक यात्रा बन जाता है.

'पद्मावत' में प्रेम को सर्वोच्च साधन और साध्य माना गया है. पद्मिनी सौंदर्य, शुद्धता और आत्मा की प्रतीक है, रत्नसेन साधक है और अलाउद्दीन भोग, अहंकार तथा वासना का प्रतिनिधि है. इस प्रतीकात्मकता के कारण यह काव्य केवल प्रेमकथा न रहकर दार्शनिक कृति बन जाता है.

काव्य की भाषा अवधी होते हुए भी अत्यंत सरस, चित्रात्मक और भावगर्भित है. जायसी की शैली में लोक-जीवन, प्रकृति-चित्रण, संवाद-योजना और प्रतीक-योजना का सुंदर समन्वय मिलता है. पात्रों की गरिमा, कथानक की व्यापकता और उद्देश्य की उदात्तता इसे महाकाव्य का स्वरूप प्रदान करती है.

इस प्रकार 'पद्मावत' मध्यकालीन हिन्दी साहित्य की एक ऐसी अमर कृति है, जो प्रेम, त्याग, मर्यादा और आध्यात्मिक चेतना के माध्यम से मानव जीवन के गहन सत्य को उघाटित करती है. प्रस्तुत इकाई इसी समग्र दृष्टि से 'पद्मावत' के अध्ययन का आधार निर्मित करती है.

7.3 मलिक मोहम्मद जायसी का परिचय एवं योगदान

मलिक मोहम्मद जायसी हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध कवि है. वे जायस नगर के निवासी थे, जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है – "जायस नगर और अस्थानू." उनकी किसी भी उपलब्ध रचना में उनकी निश्चित जन्म-तिथि या जन्म-संवत का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता. परतु वह निश्चित है कि वे सोलहवीं शताब्दी के कवि थे. उन्होंने अपनी प्रसिद्ध कृति 'पद्मावत' का रचनाकाल 947 हिजरी बताया है. जो 1540 ई. के आसपास माना जाता है.

जायसी अपने समय के प्रमुख शासकों के समकालीन थे. 'पद्मावत' में उन्होंने सुलतान

शेरशाह सूरी की प्रशंसा की है. और "आख़िरी कलाम" में **मुगल बादशाह बाबर** को 'शाहे वक्त' कहा है. इससे यह स्पष्ट होता है कि वे इन शासकों के समय में जीवित थे. जायसी ने 'पद्मावत' में अपने चार मित्रों – युसुफ मलिक, सालार, मियाँ सलोने और बड़े शेख – का उल्लेख किया है, लेकिन इनके बारे में ऐतिहासिक जानकारी उपलब्ध नहीं है.

जायसी सूफी परंपरा से जुड़े कवि थे. उन्होंने अपनी रचनाओं में अपने गुरुओं का उल्लेख किया है. उन्होंने **सैयद अशरफ** को अपना मार्गदर्शक माना. जिन्होंने उन्हें प्रेम और साधना का मार्ग दिखाया. इसके साथ ही उन्होंने अपने मुख्य गुरु **शेख़ बुरहान** का भी उल्लेख किया है और स्वयं को उनका शिष्य बताया है. जीवन के अंतिम दिनों में जायसी अमेठी के पास एक जंगल में रहकर साधना करते थे. मान्यता है कि वहीं एक दुर्घटना में उनकी मृत्यु हो गई.

जायसी की प्रमुख रचनाएँ हैं –

(1) पद्मावत

(2) अखरावट

(3) आख़िरी कलाम

(4) महरी बाईसी

(5) चित्रावत

(6) कन्हावत

(7) पोस्तीनामा

इनमें, 'पद्मावत' उनकी सबसे प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण रचना है. वह एक सूफी प्रेमाख्यान है, जिसमें प्रेम को ईश्वर प्राप्ति का माध्यम बताया गया है. 'अखरावट' में सूफी सिद्धांतों का वर्णन है और 'आख़िरी कलाम' में कयामत और पुनरुत्थान का चित्रण मिलता है. 'कन्हावत' में कृष्ण-कथा है और 'पोस्तीनामा' में समाज के एक वर्ग का व्यंग्यात्मक चित्र प्रस्तुत किया गया है.

जायसी का **सबसे बड़ा** योगदान यह है कि उन्होंने **सूफी प्रेमाख्यान काव्य को पूर्ण रूप से विकसित किया.** 'पद्मावत' में पहले इस प्रकार का काव्य पूरी तरह स्थापित नहीं था, लेकिन जायसी ने इसे इतना सफल बनाया कि यह आगे के कवियों के लिए आदर्श बन गया. 'पद्मावत' ठेठ **अवधी भाषा** में लिखी गई है. इसकी भाषा सरल, स्वाभाविक और लोक-जीवन से जुड़ी हुई है. इसमें कहावतों, मुहावरों और लोकोक्तियों का सुंदर प्रयोग हुआ है.

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने जायसी की बहुत प्रशंसा की है. उनके अनुसार जायसी ने प्रेम के माध्यम से हिन्दू और मुसलमान दोनों के हृदयों को जोड़ा. नागमती के विरह-वर्णन को उन्होंने विशेष रूप से सराहा है. भाषा के विषय में बच्चन सिंह ने कहा है कि जायसी की अवधी अत्यंत रसपूर्ण और लोकधर्मी है.

इस प्रकार मलिक मोहम्मद जायसी हिन्दी साहित्य के ऐसे महान कवि है, जिन्होंने प्रेम, मानवता और आध्यात्मिक एकता का संदेश देकर साहित्य को समृद्ध किया.

7.4 पद्मावत : संक्षिप्त परिचय

'पद्मावत' मलिक मोहम्मद जायसी द्वारा रचित हिन्दी साहित्य का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण सूफी महाकाव्य है. यह कृति प्रेमगाथा होते हुए भी केवल लौकिक प्रेम तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें आध्यात्मिक और अलौकिक प्रेम की गहन अभिव्यक्ति मिलती है. जायसी ने इसमें ऐतिहासिक कथा, लोककथा, कल्पना और सूफी दर्शन का ऐसा सुंदर समन्वय किया

है कि 'पद्मावत' हिन्दी साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान बनाता है.

'पद्मावत' की कथा मुख्य रूप से चितौड़ के राजा रत्नसेन और सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती (पद्मिनी) के प्रेम पर आधारित है. यह कथा पूर्णतः काल्पनिक नहीं है, बल्कि रत्नसेन और पद्मिनी की प्रसिद्ध ऐतिहासिक कथा से प्रेरित है. हालांकि जायसी का उद्देश्य इतिहास का यथार्थ चित्रण नहीं, बल्कि प्रेम के माध्यम से आध्यात्मिक सत्य को प्रकट करना है. इस दृष्टि से 'पद्मावत' प्रेममार्गी सूफी काव्य की परंपरा में एक श्रेष्ठ कृति है.

जायसी ने स्वयं बताया है कि उन्होंने 'पद्मावत' की रचना 947 हिजरी (1540 ई.) में की. ग्रंथ के प्रारंभ में उन्होंने तत्कालीन शासक शेरशाह सूरी की प्रशंसा की है, जिससे इसकी रचनातिथि प्रमाणित होती है. यह काव्य अवधी भाषा मं लिखा गया है और दोहा-चौपाई छंद में रचित है. प्रत्येक सात चौपाइयों के बाद इक देहा आता है. पूरी रचना मसनवी शैली में लिखी गई है. इसमें कुल 57 (या कुछ परंपराओं में 58) खंड माने जाते है.

कथा का पहला भाग अधिकतर कल्पनात्मक और लोककथात्मक है. इसमें सिंहलद्वीप के राजा गंधर्वसेन की पुत्री पद्मावती और उसके सुग्गे हीरामन की कथा आती है. हीरामन के माध्यम से राजा रत्नसेन को पद्मावती के अनुपम सौंदर्य का ज्ञान होता है. पद्मावती को पाने के लिए रत्नसेन योगी का वेश धारण कर कठिन यात्रा करता है, अनेक संकटों का सामना करता है और अंततः सिंहलगढ़ पहुँचता है. यह यात्रा केवल प्रेमिका को पाने की यात्रा नहीं, बल्कि प्रेम, साधना और आत्मिक तपस्या का प्रतीक है. सिंहलगढ़ पर चढ़ना, सूली पर चढ़ने को तैयार होना – ये सभी प्रेम के लिए आत्म-बलिदान की भावना को प्रकट करते हैं.

रत्नसेन और पद्मावती का विवाह होने कै बाद कथा का दूसरा भाग आरंभ होता है, जो अधिक ऐतिहासिक है. रत्नसेन की पहली पत्नी नागमती के विरह-वर्णन में जायसी की करुणा और संवेदना विशेष रूप से दिखाई देती है. नागमती का बारहमासा हिन्दी साहित्य का अत्यंत मार्मिक अंश माना जाता है. इसमें विरह की पीड़ा, नारी-हृदय की व्यथा और प्रतीक्षा की भावनाएँ अत्यंत प्रभावशाली रूप में व्यक्त हुई है.

कथा आगे बढ़ती है जब राघव नामक एक तांत्रिक, अपमानित होकर अलाउद्दीन खिलजी के पास जाता है और उसे पद्मावती के सौंदर्य के बारे में बताता है. अलाउद्दीन पद्मावती को पाने के लोभ में चितौड़ पर आक्रमण करता है. धोखे से वह रत्नसेन को बंदी बना लेता है, किन्तु गोरा-बादल की वीरता से रत्नसेन मुक्त हो जाता है. अंततः कुंभलनेर के राजा देवपाल से युद्ध में घायल होकर रत्नसेन की मृत्यु हो जाती है और पद्मावती तथा नागमती उसके साथ जौहर कर लेती है. जब अलाउद्दीन चितौड़ पहुँचता है, तो उसे पद्मावती नहीं, केवल उसकी चिता की राख मिलती है.

इस पूरी कथा में जायसी ने लौकिक और अलौकिक प्रेम के अंतर को स्पष्ट किया है. रत्नसेन और पद्मावती का प्रेम, त्याग, बलिदान और साधना से युक्त है – यह प्रेम आध्यात्मिक और दिव्य है. इसके विपरीत अलाउद्दीन का प्रेम केवल वासना, अहंकार और भौतिक बल पर आधारित है. जायसी पहले प्रेम की विजय और दूसरे की पराजय दिखाते है.

कुछ संस्करणों में 'पद्मावत' को एक रुपकात्मक कृति भी माना गया है, जिसमें चितौड़ को शरीर, रत्नसेन को मन, पद्मावती को बुद्धि और अलाउद्दीन को माया का प्रतीक बताया गया है. हालांकि विद्वानों का मत है कि जायसी ने पूरी रचना में किसी एक निश्चित रूपक को निभाने का प्रयास नहीं किया, बल्कि उनका मुख्य उद्देश्य प्रेम की महिमा को प्रस्तुत करना था.

भाषा की दृष्टि से 'पद्मावत' ठेठ अवधी मे लिखा गया है. इसकी भाषा सरल, सरस, लोक-प्रचलित और भावपूर्ण है. लोकोक्तियों, मुहावरों और सूक्तियों का सुंदर प्रयोग इसे प्रभावशाली बनाता है.

इस प्रकार 'पद्मावत' इतिहास, कल्पना, प्रेम, त्याग और आध्यात्मिक चेतना का अद्‌भुत संगम है. यही कारण है कि यह कृति हिन्दी साहित्य में सूफी परंपरा का एक अमर और श्रेष्ठ महाकाव्य मानी जाती है.

7.5 मानसरोवर खंड का सारांश

मानसरोवर खण्ड पद्मावत महाकाव्य का अत्यंत महत्त्वपूर्ण और काव्यात्मक खण्ड है. इसकी रचना सूफी संत कवि मलिक मोहम्मद जायसी ने की है. जायसी प्रेममार्गी सूफी कवि है, जिन्होंने लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम का निरूपण किया है. इस खण्ड में नायिका पद्मावती को परमात्मा की प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया है. उसके रूप, सौंदर्य और व्यक्तित्व का वर्णन केवल शारीरिक न होकर आध्यात्मिक और रहस्यात्मक अर्थों से युक्त है. जायसी का रहस्यवाद भारतीय अद्वैत भावना से प्रभावित है, जिसमें जीव और ब्रह्म की एकता का बोध कराया गया है.

इस खण्ड में पद्मावती के जन्म का भी संकेत मिलता है. सिंहलद्वीप के राजा गंधर्वसेन की रानी चम्पावती के गर्भ से पद्मावत का जन्म होता है. कन्या राशि में जन्म लेने के कारण उसका नाम पद्मावती रखा गया. जायसी ने उसे साधारण राजकुमारी न मानकर अनंत सौंदर्य और दिव्य चेतना का प्रतीक माना है. उसके व्यक्तित्व में ऐसी अलौकिक आभा है, जिससे वह परम सौंदर्य की साकार मूर्ति प्रतीत होती है.

पूर्णिमा के शुभ दिन पद्मावती अपनी सखियों के साथ मानसरोवर में स्नान के लिए जाती है. इस प्रसंग का वर्णन अत्यंत रमणीय और भावपूर्ण है. कवि कहता है कि ऐसा प्रतीत होता है मानो पूरी की पूरी फुलवारी ही चल पड़ी हो. पद्मावती की सखियाँ विभिन्न फूलों के समान सुंदर, कोमल और सुगंधित हैं. वे पद्मावती के साथ ऐसे चलती है जैसे कमल के साथ कुमुदिनियाँ का समूह हो. उनकी सुगंध से गंधर्वो के समूह भी मोहित हो जाते हैं. इस दृश्य में प्रकृति और मानव सौंदर्य का अद्‌भुत सामंजस्य दिखाई देता है.

मानसरोवर के तट पर पहुँचकर पद्मावती अपने जूड़े को खोलकर केश फैला देती है. उसका मुख चंद्रमा के समान उज्जवल है. और शरीर मलयाचल के चंदन की तरह सुगंधित है. उसके घने, काले केश मेघों के समान छा जाते हैं, जिससे संसार में छाया छा जाती है. उसके सौंदर्य की प्रभा इतनी तीव्र है कि दिन में ही सूर्य का तेज मंद पड़ जाता है और रात्रि में चंद्रमा नक्षत्रों सहित प्रकट होता है. उसके दाँत बिजली के समान चमकीले है, वाणी कोयल जैसी मधुर है, भौंही इंद्रधनुष की तरह धनुषाकार है और नेत्र खंजन पक्षियों की भाँति चंचल प्रतीत होते है. वह नख-शिख सौंदर्य वर्णन श्रृंगार रस से परिपूर्ण है, किन्तु उसमें आध्यात्मिक संकेत भी नीहित है. पद्मावती के सौंदर्य से स्वयं मानसरोवर भी मोहित हो उठता है. उसकी लहरें पद्मावती के चरण छूने के लिए आगे बढ़ती है. ऐसा प्रतीत होता है मानो मानसरोवर पद्मावती के चरण-स्पर्श से पवित्र होकर अपने पापों से मुक्त हो गया हो. यह प्रसंग भक्त और भगवान के संबंध को प्रकट करता है, जहाँ भक्त ईश्वर के चरण-स्पर्श से मुक्ति और शांति प्राप्त करता है.

इस खण्ड में तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति का भी यथार्थ चित्रण है. स्नान और खेल के समय सखियाँ पद्मावती से कहती है कि पीहर के दिन बहुत थोड़े होते है और ससुराल जाकर नारी की स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है. सास-ननद के ताने, ससुर की

कठोरता और पति के व्यवहार की अनिश्चितता– ये सभी उस समय की स्त्री-जीवन की सच्चाइयाँ है. जायसी ने इस माध्यम से नारी की परतंत्र स्थिति और उसके मनोभावों को संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है.

मानसरोदक खण्ड में जायसी ने बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव का भी सुंदर प्रयोग किया है. पद्मावती को बिम्ब और संपूर्ण संसार को उसका प्रतिबिम्ब बताया गया है. उसके नेत्र कमल है, शरीर निर्मल जल के समान है. हास हंस के समान है और दाँत रत्नों जैसे प्रतीत होते हैं. इससे यह भाव स्पष्ट होता है कि सम्पूर्ण जगत उसी दिव्य सत्ता में प्रतिबिंबित है.

इस प्रकार मानसरोदक खण्ड में जायसी ने नारी-सौंदर्य, सामाजिक यथार्थ और सूफी रहस्यवाद का अद्‌भुत समन्वय प्रस्तुत किया है. पद्मावती के माध्यम से प्रेम, सौंदर्य और परमात्मा की अनुभूति कराकर कवि ने इस खण्ड को पद्मावत का अत्यंत प्रभावशाली और स्मरणीय अंश बना दिया है.

7.6 पद्मावत : व्याख्या-भाग

यहाँ संदर्भ, प्रसंग के साथ मानसरोदक खण्ड के निम्नलिखित अंशों की व्याख्या की जायेगी, साथ ही उसके सौन्दर्य पक्ष, को भी प्रस्तुत किया जायेगा.

7.6.1 मानसरोवर खंड :

एक दिवस पून्यो तिथि आई । मानसरोदक चली नहाई ।।
पद्मावति सब सखी बुलाई । जनु फुलवारि सबै चलि आई ।।
कोइ चंपा कोइ कुंद सहेली । कोइ सु केत, करना, रस बेली ।।
कोइ सु गुलाल सुदरसन राती । कोइ सो बकावरी-बकुचन भाँती ।।
कोइ सो मौलसिरि, पुहपावती । कोई जाही जूही सेवर्ती ।।
कोई सोनजरद कोइ केसर । कोई सिंगार-हार नागेसर ।।
कोइ कूजा सदबर्ग चमेली । कोई कदम सुरस रस-बेली ।।

चली सबै मालति सँग फूलीं कवँल कुमोद ।
बेधि रहे गन गँधरब बास-परमदामोद ।।1।।

संदर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत पद मलिक मोहम्मद जायसी कृत महाकाव्य 'पद्मावत' के मानसरोदक (मानसरोवर) खंड से उद्धत है. इस प्रसंग में कवि पद्मावती के सौंदर्य, उसकी सखियों तथा प्रकृति के सामंजस्यपूर्ण सौंदर्य का अत्यंत सरस और चित्रात्मक वर्णन करता है. यह वही प्रसंग है जब पूर्णिमा के पावन दिन पद्मावती मानसरोवर में स्नान के लिए जाती है और अपनी सभी सखियों को साथ बुलाती है. यह दृश्य आगे चलकर रत्नसेन-पद्मावती के प्रेम का आधार बनता है, अतः इसका कथात्मक महत्त्व भी है.

व्याख्या : कवि कहता है कि शुभ दिन पूर्णिमा की तिथि आई. उस पावन अवसर पर पद्मावती मानसरोवर में स्नान करने चलीं. उसने अपनी सभी सखियों को भी आमंत्रित किया. वे सखियाँ इस प्रकार चली मानो कोई सुंदर फूलों की वाटिका चलती हु ई आ रही हो. कोई सखी चंपा के फूल के समान है, कोई कुंद जैसी श्वेत और कोमल, कोई केतकी, कोई करन, कोई रसबेली के समान सुगंधित और आकर्षक है.

कवि आगे सखियों के सौंदर्य की तुलना अनेक रंग-बिरंगे और सुगंधित पुष्पों से करता है. कोई गुलाल की लालिया से युक्त है, कोई गुलबकावली के गुच्छे की तरह हँसती हुई, कोई मौलश्री के समान गंभीर और सुकोमल है, तो कोई जूही और सेवती जैसे कोमल पुष्पों के समान है. कोई सोने जैसी पीली है तो कोई केसर के रंग-सी दमकती हुई. किसी का सौंदर्य हरसिंगार के समान है तो कोई नागकेसर जैसी आकर्षक है.

अंत में कवि कहता है कि ये सभी सखियाँ मालती-सी पद्मावती के साथ इस प्रकार चलीं, जैसे कमल के साथ कुमुदिनियों का समूह चलता हे. उनके शरीर से उठती सुगंध से गंधर्व और भौंरो के समूह मोहित हो रहे थे और सारा वातावरण सुगंध और आनंद से भर गया था. इस प्रकार यह दृश्य मानवीय सौंदर्य और प्राकृतिक सौंदर्य का अद्‌भुत संगम बन जाता है.

साहित्यिक सौंदर्य :

1. यह पद 'पद्मावत' का अत्यंत मनोहर अंश है, जिसमें जायसी ने प्रकृति और मानव सौंदर्य का सुंदर समन्वय प्रस्तुत किया है.
2. पद्मावती और उनकी सखियों की तुलना विविध फूलों से की गई है, जिससे नारी-सौंदर्य प्रकृति के सौंदर्य में विलीन हो जाता है.
3. चंपा, कुंद, केतकी, गुलाल, केसर, कमल-कुमुद आदि उपमानों द्वारा उपमा और रूपक अलंकार का प्रभावशाली प्रयोग हुआ है.
4. पूरा दृश्य अत्यंत चित्रात्मक है और रंग-बिरंगी पुष्प-वाटिका आँखों के सामने सजीव हो उठती है.
5. पद में श्रृंगार रस की प्रधानता है, जिस में कोमलता, सौम्यता और माधुर्य स्पष्ट रूप से प्रकट होते हैं.
6. सूफी काव्य-परंपरा के अनुसार यह सौंदर्य केवल बाह्य न होकर आत्मिक प्रेम और आध्यात्मिक आकर्षण का संकेत देता है.
7. अवधी भाषा की मधुरता, सरलता और लोक-प्रचलित शब्दावली पद को सरस और गेय बनाती है.
8. पुष्पो की सुगंध तथा भौंरों का आकर्षण इंद्रियबोध को जाग्रत कर काव्य-सौंदर्य को और प्रभावी बनाता है.

7.6.2 मानसरोवर खंड :

खेलत मानसरोवर गई । जाइ पाल पर ठाढ़ी भई ॥
देखि सरोवर हँसे कुलेली । पदमावती सी कहहिं सहेली ॥
ए रानी ! मन देखु बिचारी । एहि नैहर रहना दिन चारी ॥
जौ लगि अहै पिता का राजू । खेलि लेहु जो खेलहु आजु ॥
पुनि सासुर हम गवनब काली । कित हम, कित यह सरवर-पाली ॥
कित आवन पुनि अपने हाथा । कित मिलि कै खेलब एक साथा ॥
सासु ननद बोलिन्ह जिउ लेहीं । दारुन ससुर न निसरै देहीं ॥

पिउ पियार सिर ऊपर, पुनि सो करै दहुँ काह ।
दहुँ सुख राखै की दुख, दहुँ कम जनम निवाह ॥ 2 ॥

संदर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत काव्यांश मलिक मोहम्मद जायसी के प्रसिद्ध सूफी महाकाव्य 'पद्मावत' के मानसरोवर खंड से लिया गया है. इस प्रसंग में कवि ने पद्मावती और उसकी सखियों के संवाद के माध्यम से नारी-जीवन की भावनात्मक स्थिति, विवाह-पूर्व की चिंता, मायके-ससुराल का द्वंद्व तथा भविष्य की अनिश्चितता को अत्यंत मार्मिक रूप में प्रस्तुत किया है. यह प्रसंग केवल सौंदर्य-चित्रण तक सिमित नहीं है, बल्कि इसमें जीवन का गहन यथार्थ और स्त्री-मन की व्यथा भी अभिव्यक्त होती है.

व्याख्या : कवि वर्णन करता है कि पद्मावती और उसकी सखियाँ खेलती-कूदती हुई मानसरोवर पहुँची और उसके तट पर जाकर खड़ी हो गई. मानसरोवर की अनुपम सुंदरता को देखकर

वे आंनद से भर उठा और प्रसन्नता में हँसने-कूदने लगी. इसी आनंदमय वातावरण में एक सखी पद्मावती से गंभीर स्वर में बात करती है.

सखी पद्मावती से कहती है – "हे रानी ! जरा मन में विचार कर देखो. यहाँ पिता के घर (नैहर) में अब केवल चार दिन का ही समय शेष है. जब तक पिता का राज्य और मायके का संरक्षण है, तब तक जितना चाहो हँस-खेल लो. क्योकि यह समय फिर लौटकर नहीं आएगा."

सखी आगे कहती है कि विवाह के बाद ससुराल जाना निश्चित है. तब न तो हम यहाँ रह पाएँगी और न ही इस मानसरोवर के तट पर आकर स्वतंत्रता से खेल सकेंगी. भविष्य में फिर अपने हाथ से यहाँ आना और सब सखियों के साथ मिलकर खेलना संभव नहीं होगा. यह पंक्तियाँ नैहर की अस्थिरता और ससुराल की अनिवार्यता को अत्यंत करुण भाव से व्यक्त करती है.

इसके बाद सखी ससुराल के यथार्थ का चित्र प्रस्तुत करती है. वह कहती है कि वहाँ सास और ननद तानों से प्राण हर लेगी और कठोर ससुर घर से बाहर निकलने भी नहीं देगा. यहाँ कवि ने तत्कालीन समाज में स्त्री की सीमित स्वतंत्रता और पारिवारिक दबावों का सजीव चित्र खींचा है.

अंत में सखी पति के विषय में चिंता व्यक्त करती है. वह कहती है कि पति का प्रेम इन सबके ऊपर होगा, लेकिन यह निश्चित नहीं कि वह सुख देगा या दुःख. जीवन भर का निर्वाह कैसे होगा, यह भी अज्ञात है. इस प्रकार यह प्रसंग विवाह से पहले की नारी-चिंता, भय और अनिश्चित भविष्य को अत्यंत संवेदनशील ढंग से सामने लाता है.

साहित्यिक सौंदर्य :

1. यह काव्यांश 'पद्मावत' में नारी-मन के यथार्थ और संवेदनशील चित्रण का सशक्त उदाहरण है.
2. जायसी ने स्त्री-जीवन की आंतरिक पीड़ा, आशंका और भावनात्मक द्वंद्व को अत्यंत सच्चाई के साथ प्रस्तुत किया है.
3. सखी और पद्मावती के संवाद काव्य को स्वाभाविक, सरल और मार्मिक बनाते हैं.
4. प्रारंभ में श्रृंगार और आनंद का वातावरण है, जो धीरे-धीरे करुण रस में परिवर्तित हो जाता है.
5. सास-ननद के ताने, ससुर का कठोर व्यवहार और स्त्री की पराधीन स्थिति तत्कालीन सामाजिक यथार्थ को उजागर करते हैं.
6. सांसारिक सुख-दुःख, भविष्य की अनिश्चितता और जीवन की अस्तिरता से सूफी दर्शन की झलक मिलती है.
7. मानसरोवर के सौंदर्य और भविष्य की चिंता का भावात्मक विरोध इस अंश को अधिक प्रभावशाली बनाता है.
8. अवधी भाषा की सरलता, सहायता और माधुर्य भावों को सीधी हृदय तक पहुँचाते हैं.

7.6.3 मानसरोवर खंड :

सरवर तीर पदमिनी आई । खौपा छोरि केस मुकलाई ।।
ससि-मुख, अंग मलयगिरि बासा । नागिन झाँपि तीन्ह चहुँ पासा ।।
ओनई घटा परी जग छाँहा । ससि के सरन लीन्ह जनु राहाँ ।।

छपि गै दिनहिं भानु कै दासा । लेइ निसि नखत चाँद परगसा ।।
भूलि चकोर दीठि मुख लावा । मैघपटा महँ चंद देखावा ।।
दमन दामिनी, कोकिल भाखी । भौंहें धनुष गगन लेइ राखी ।।
नैन-खँजन दुइ केलि करैही । कुच-नारँग मधुकर रस लेहीं ।।
सरवर रूप बिमोहा, हिये होलोरहि लेइ ।
पाँव छुवै मकु पावौं एहि मिस लहरिह देइ ।।4।।

संदर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत काव्यांश मलिक मोहम्मद जायसी के प्रसिद्ध सूफी महाकाव्य 'पद्मावत' के मानसरोवर खंड से लिया गया है. यह वही प्रसंग है जहाँ कवि ने पद्मावती के अलौकिक सौंदर्य का चरम बिंदु प्रस्तुत किया है. इससे पूर्व पद्मावती अपनी सखियों के साथ मानसरोवर आती है और अब यहाँ उसके सौंदर्य का ऐसा वर्णन किया गया है कि प्रकृति, आकाश, ग्रह-नक्षत्र और सरोवर तक उसके रुप से प्रभावित हो उठते हैं. यह प्रसंग न केवल श्रृंगार-प्रधान है, बल्कि सूफी दृष्टि से दैवी सौंदर्य का भी प्रतीक है.

व्याख्या : कवि वर्णन करता है कि पद्मावती सरोवर के तट पर आई और उसने अपने जूड़े को खोल दिया, जिससे उसके लंबे केश बिखर गए. जूड़ा खोलना यहाँ केवल शारीरिक क्रिया नहीं, बल्कि सौंदर्य के पूर्ण प्रस्फुटन का संकेत है.

कवि कहता है कि पद्मावती का मुख चंद्रमा के समान उज्जवल है और उसका शरीर मलयगिरि के चंदन के समान सुगंधित है. उसके अंगों से ऐसी सुगंध आर ही है मानो मलय पर्वत से चंदन की वासना प्रवाहित हो रही हो. बिखरे हुए केश उसके मुख के चारों और इस प्रकार फैल गए है, जैसे चंदन की सुगंध से आत्कृष्ट होकर कोई नागिन उसे चारों ओर से लिपट गई हो.

ये केश बादलो की भाँति फैलकर ऐसे छा गए कि संसार मं अंधकार-सा छा गया. उस अंधकार मं पद्मावती का मुख चंद्रमा की तरह चमक रहा है. कवि ने यांहाँ राहु-चंद्र ग्रहण की कल्पना की है – मानो काले केश राहु हों और उज्जवल मुख चंद्रमा हो, जिसकी शरण में राहु आ गया हो.

पद्मावती के सौंदर्य से सूर्य भी दिन में ही छिप गया और रात्रि का आभास होने लगा. चंद्रमा और तारे प्रकट हो गए. चकोर पक्षी, जो चंद्रमा का प्रेमी माना जाता है, बादलों के बीच चंद्रमा को देखकर सब कुछ भूलकर उसी की ओर दृष्टि लगाए बैठा है. यहाँ चकोर की दृष्टि पद्मावती के मुख पर टिक गई है.

आगे कवि उसके दातों की तुलना बिजली से करता है - दामिनी की तरह चमक रहे हैं. उसकी वाणी कोयल के समान मधुर है. उसकी भौंहे आकाश से लाया गया धनुष (इन्द्रधनुष) प्रतीत होती है. उसकी आँखें दो खंजन पक्षियों की तरह आपस में क्रीड़ा कर रही हैं.

उसके स्तन नारंगी के समान गोल और पुष्ट हैं तथा उनके अग्रभाग श्यामल है. ऐसा प्रतीत होता है मानो काले भौंरे नारंगी पर बैठकर उसका मधुर रस पी रहे हों. यह उपमा अत्यंत सजीव और श्रृंगार-प्रधान है.

अंत में कवि कहता है कि पद्मावती के इस अनुपम सौंदर्य से स्वयं मानसरोवर भी मोहित हो गया. उसका हृदय हिलोरे लेने लगा और वह अपनी लहरों को आगे बढ़ाकर पद्मावती के चरणों को स्पर्श करना चाहता है. यहाँ प्रकृति को मानवीय भावों से युक्त कर दिया गया है.

साहित्यिक सौंदर्य :

1. यह काव्यांश अलौकिक शृंगार रस का उत्कृष्ट उदाहरण है, जिसमें सौंदर्य संयमित, मर्यादित और दिव्य रूप में प्रकट हुआ है.
2. चंद्रमा, राहु, बादल, बिजली, कोयल, खंजन और भौंरे जैसे उपमानों से उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकारो की बहुलता दिखाई देती है.
3. सरोवर का हृदय हिलोरें लेना और लहरों का चरण-स्पर्श के लिए बढ़ना प्रकृति के मानवीकरण का सुंदर उदाहरण है.
4. बिखरे केश, उज्जवल मुख, चमकते दाँत और लहराता सरोवर – पूरा दृश्य अत्यंत चित्रात्मक और सजीव है.
5. पद्मावती का सौंदर्य केवल भौतिक न होकर सूफी दृष्टि से ईश्वरीय और आत्मिक सौंदर्य का प्रतीक बन जाता है.
6. अवधी भाषा की कोमलता, प्रवाह और ध्वन्यात्मक मधुरता इस अंश को अत्यंत रसपूर्ण बनाती है.
7. सूर्य का छिप जाना और सरोवर का मोहित हो जाना जैसी अतिशयोक्तियाँ काव्य-सौंदर्य को और प्रभावी बनाती है.
8. मानव सौंदर्यो, प्रकृति और ब्रह्मांड का तादात्म्य इस अंश को 'पद्मावत' का सर्वोत्तम सौंदर्य-प्रसंग सिद्ध करता है.

- **निम्नलिखित पद्य-खंड की संदर्भ सहित व्याख्या करें.**

  1. एक दिवस पून्यो तिथि आई _____ बास-परमदामोद
  2. खेलत मानसरोवर गई _____ कस जनम निवाह.
  3. सरवर तीर पदमिनी आई _____ मिस लहरहि देइ.

7.7 पद्मावत : एक समीक्षात्मक दृष्टि

पद्मावत मलिक मोहम्मद जायसी की सर्वाधिक प्रसिद्ध और प्रतिनिधि कृति है, जिसका महत्त्व केवल कथा के स्तर पर नहीं, बल्कि उसके गहन प्रतीकात्मक, दार्शनिक और साहित्यिक वैशिष्ट्य के कारण भी है. इस महाकाव्य में कथावस्तु, प्रतीक-योजना, सूफी प्रेमदृष्टि और यथार्थबोध का सशक्त समन्वय दिखाई देता है. जायसी ने ऐतिहासिक और कल्पित तत्त्वों को जोड़कर प्रेमाख्यान की परंपरा को ऊँचाई प्रदान की है. भाषा-शैली की सरलता, प्रतीकों की गहराई और उद्देश्य की आध्यात्मिकिता इस काव्य को विशिष्ट बनाती है. हिन्दी आधारों पर पद्मावत की समीक्षा इसके कथानक, प्रतीक, सूफी दृष्टि, यथार्थ दर्शन और साहित्यिक उद्देश्य के संदर्भ में की जाती है.

7.7.1 पद्मावत की कथावस्तु :

मलिक मोहम्मद जायसी कृत पद्मावत का कथानक एक विस्तृत क्रमबद्ध और भावनात्मक रूप से समृद्ध प्रेमाख्यान है, जिसमें ऐतिहासिक, कल्पित, सूफी और लोकविकास के तत्त्व एक साथ गुंथे हुए हैं. कथा का आरम्भ सिंहद्वीप से होता है. कवि सिंहलद्वीप की प्राकृतिक शोभा, उसके राजा गन्धर्वसेन, शजसभा, नगर, उद्यानों और वैभव का वर्णन करता है. इसी राज्य में अनुपम सुन्दरी पद्मावती का जन्म होता है. राज महल में 'हीरामन' नाम का एक अद्‌भुत और बुद्धिमान सुआ रहता है, जो पद्मावती का अत्यन्त प्रिय होता है. पद्मावती उसी के साथ बैठकर अपने मन की बातें किया करती है. जैसे-जैसे वह सयानी होती है, उसका सौन्दर्य संसार में अद्वितीय हो जाता है. विवाह न होने के कारण यह हीरामन में अपने योग्य वर की चर्चा करती रहती है. एक दिन सुआ यह प्रस्ताव रखता है कि वह देश-देशान्तर

घूमकर उनके योग्य वर ख़ोज लाए. यह बात राजा गन्धर्वसेन तक पहुँचती है और वह क्रोध में आकर सुए को मार डालने का आदेश देता है. पद्मवती के विनय से सुए के प्राण बचते है, पर सुए के मन में भय और असुरक्षा बनी रहती है.

एक दिन पद्मावती सखियों के साथ मानसरोवर में स्नान और जलक्रीड़ा के लिए जाती है. इसी अवसर का लाभ उठाकर हीरामन वन की ओर उड़ जाता है. वन में अन्य पक्षी उसका सम्मान करते हैं, पर कुछ दिनों बाद एक बहेलिया उसे पकड़ लेता है और बाजार में बेचने के लिए ले जाता है. संयोगवश एक दीन ब्राह्मण उसे ख़रीदकर चितौड़ ले आता है. उस समय चितौड़ का राजा चित्रसेन नहीं रहा था और उसका पुत्र रत्नसेन सिंहासन पर बैठ चुका था. सुए की प्रशंसा सुनकर रत्नसेन उसे भारी मूल्य देकर ख़रीद लेता है.

एक दिन रानी नागमती सुए से पूछती है कि क्या संसार में उससे अधिक सुन्दरी कोई है? इस पर सुआ हँसकर सिंहलद्वीप की पद्मिनी स्त्रियों ओर विशेष रूप से पद्मावती के अनुपम सौन्दर्य का वर्णन करता है. यह सुनकर नागमती के मन में भय और इर्ष्या उत्पन्न होती है और वह सुए को मरवा देना चाहती है, पर धाय उसे छिपा लेती है. जब रत्नसेन को सुए के गायब होने का पता चलता है, तो वह अत्यन्त क्रुद्ध होता है. अन्ततः सुआ उसके सामने लाया जाता है और पद्मावती के सौंदर्य, गुण और वैभव का विस्तृत वर्णन करता है. वह वर्णन सुनकर रत्नसेन प्रेम में विह्वल हो जाता है और पद्मावती को पाने के लिए जोगी का वेश धारण कर सिंहलद्वीप की यात्रा पर निकल पड़ता है. उसके साथ सोलह हजार कुँवर भी जोगी बनकर जाते हैं.

कठिन मार्गो, दुर्गम प्रदेशों और सात समुद्रों को पार करते हुए रत्नसेन सिंहलद्वीप पहुँचता है. वहाँ वह महादेव के मंदिर में तप और ध्यान करता है. हीरामन पद्मावती के पास जाकर रत्नसेन के प्रेम, त्याग और कष्टों का वर्णन करता है. पद्मावती यह सुनकर द्रवित हो जाती है और वसन्त पंचमी के दिन महादेव के मंडप में दर्शन देने का वचन देती है. वसन्त पंचमी को जब पद्मावती सखियों सहित आती है, तो उसे देख्रते ही रत्नसेन मूर्च्छित हो जाता है. पद्मावती उसके हृदय पर चन्दन से प्रेमसंदेश लिख्रकर चली जाती है. इस घटना से रत्नसेन अत्यन्त व्याकुल हो जाता है.

देवताओं के आग्रह पर महादेव और पार्वती उसकी परीक्षा लेते है और उसके प्रेम को सच्चा पाकर उसे सिद्धि प्रदान करते है. रत्नसेन गढ़ में प्रवेश करता है, पर पकड़ा जाता है और मृत्यु-दण्ड की तैयारी होती है. इसी बीच महादेव, हनुमान आदि देवताओं की सहायता से युद्ध होता है. अन्ततः राजा गन्धर्वसेन अपनी भूल स्वीकार करता है और धूमधाम से रत्नसेन और पद्मावती का विवाह कर देता है. सिंहल में कुछ समय सुख्रपूर्वक रहने के बाद रत्नसेन चितौड़ लौटने का निश्चय करता है.

वापसी के मार्ग में समुद्र राजा के लोभ और अहंकार के कारण कुपित होता है. जहाज टूट जाते है और रत्नसेन तथा पद्मावती अलग-अलग बह जाते है. लक्ष्मी दोनों की परीक्षा लेती है और अन्ततः उनका पुनर्मिलन कराती है. अनेक कष्टों के बाद वे चितौड़ लौटते है. वहाँ नागमती और पद्मावती दोनों रानियाँ सुख्रपूर्वक जीवन बिताती हैं.

कथा का अंतिम भाग राघवचेतन, अलाउद्दीन, गोरा-बादल और जौहर-सती की करुण और वीरतापूर्ण घटनाओँ से भरा है. राघव के षड्यंत्र से अलाउद्दीन चितौड़ पर आक्रमण करता है. छल से रत्नसेन को बंदी बना लिया जाता है, पर गोरा और बादल की वीरता से वह मुक्त होता है. अन्ततः युद्ध में रत्नसेन वीरगति को प्राप्त होता है ओर पद्मावती तथा नागमती सती हो जाती है. इस प्रकार पद्मावत का कथानक प्रेम, त्याग, भक्ति, वीरता और करुणा का विराट आख्यान प्रस्तुत करता है. जिसमें सूफी दर्शन और भारतीय सांस्कृतिक मूल्य गहराई से निहित है.

7.7.2 प्रतीक योजना एवं दार्शनिक दृष्टि :

जायसी का पद्मावत हिन्दी साहित्य का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण सूफी प्रेमाख्यान है, जिसमें कथा के प्रत्येक पात्र, प्रसंग और स्थान के पीछे गहन प्रतीकात्मक अर्थ निहित है. यह काव्य केवल ऐतिहासिक या लौकिक प्रेम की कथा नहीं है, बल्कि आत्मा और परमात्मा के मिलन की आध्यात्मिक साधना का रूपक है. वापसी ने सूफी दर्शन को भारतीय सांस्कृतिक चेतना के साथ जोड़ते हुए प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत किया है, जिससे काव्य बहुस्तरीय अर्थ ग्रहण करता है.

तन चितउर, मन राजा कीन्हा, हिय सिंघल, बुधि पदमिनि चीन्हा.
गुरु सुआ जेइ पंथ देखावा, बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा?
नागमती यह दुनिया-धंधा, बाँचा सोइ न एहि चित्त बंधा.
राघव दूत सोई सेतानू, माया अलाउदीं सुलतानू.

पद्मावत की प्रतीक-योजना का केन्द्रीय आधार पद्मावती है. वह केवल सिंहलद्वीप की राजकुमारी नहीं, बल्कि परमात्मा, परम सत्य और दिव्य सौंदर्य की प्रतीक है. उसकी अद्वितीय रूप, पवित्रता और दुर्लभता इस तथ्य को दर्शाती है कि साक्षात्कांर नहीं, बल्कि कठिन साधना और तपस्या से प्राप्त होता है. पद्मावती का सौंदर्य लौकिक न होकर आध्यात्मिक है, जो आत्मा को आकर्षित कर सत्य की ओर ले जाता है.

रत्नसेन इस काव्य में आत्मा (जीवात्मा) का प्रतीक है. वह राजपाट, वैभव और सांसारिक सुखों का त्याग कर जोगी बनता है, जो सूफी साधना के त्याग और वैराग्य भाव को व्यक्त करता है. आत्मा जब तक अहंकार और भोग-वासनाओं में उलझी रहती है, तब तक वह परमात्मा को नहीं पा सकती. रत्नसेन की कठिन यात्राएँ, संकट और परीक्षाएँ आत्मिक साधना की जटिल प्रक्रिया को दर्शाती है.

हीरामन तोता गुरु या आध्यात्मिक मार्गदर्शक का प्रतीक है. सूफी परंपरा में गुरु का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, क्यंकि वही आत्मा को परम सत्य का मार्ग दिखाता है. हीरामन ही रत्नसेन को पद्मावती के सौंदर्य और अस्तित्व का ज्ञान कराता है. और उसे प्रेम-मार्ग पर अग्रसर करता है. उसका बिकना और अपमान सहना इस सत्य को उद्घाटित करता है कि सत्य का उपदेश देने वाला स्वयं भी संसार की पीड़ा और उपेक्षा का शिकार होता है. सिंहलद्वीप माया या संसार का प्रतीक है. यह वह भौतिक जगत है जहाँ आत्मा अनेक आकर्षणों, मोह और भ्रमों में उलझी रहती है. सात समुद्रों की यात्रा आत्मा की कठिन साधना और आत्मसंघर्ष का संकेत है. नागमती सांसारिक मोह और लौकिक प्रेम की प्रतीक है. उसका विरह-विलाप मानवीय प्रेम की तीव्रता को व्यक्त करता है, पर यह प्रेम आत्मा को परमात्मा से नहीं, बल्कि संसार से बाँधता है., इस प्रकार जायसी लौकिक प्रेम और आध्यात्मिक प्रेम के अंतर को स्पष्ट करते हैं.

अलाउद्दीन खिलजी सांसारिक वासना, अहंकार और बाहरी भाषाओं का प्रतीक है. वह पद्मावती को बलपूर्वक प्राप्त करना चाहता है, जो यह दर्शाता है कि भोग, सत्ता और हिंसा के माध्यम से परम सत्य को नहीं पाया जा सकता. इसके विपरीत रत्नसेन प्रेम, तप और समर्पण के द्वारा पद्मावती को प्राप्त करता है. अलाउद्दीन का विनाश इस सूफी सिद्धांत को पुष्ट करता है कि अहंकार और लोभ का मार्ग अंततः पतन की ओर ले जाता है.

दार्शनिक दृष्टि से पद्मावत सूफी प्रेम-दर्शन का उत्कृष्ट उदाहरण है. इसमें प्रेम को ईश्वर-प्राप्ति का सर्वोच्च साधन माना गया है. विरह को साधना की अनिवार्य अवस्था के रूप में चित्रित किया गया है, क्योंकि विरह-वेदना के माध्यम से ही आत्मा शुद्ध होकर परमात्मा से एकाकार होती है. साथ ही जायसी ने हिंदू-मुस्लिम सांस्कृतिक समन्वय सम्वय, सामाजिक मूल्यों और नैतिक चेतना को भी काव्य में समाहित किया है.

इस प्रकार पद्मावत की प्रतीक-योजना और दार्शनिक दृष्टि इसे केवल प्रेमकथा न बनाकर एक गहन आध्यात्मिक महाकाव्य के रूप में प्रतिष्ठित करती है.

7.7.3 पद्मावत की कथानक रुढ़ियाँ :

मलिक मुहम्मद जायसी का **'पद्मावत'** अवधी भाषा में रचित हिन्दी का एक प्रमुख महाकाव्य है, जिसमें राजा रत्नसेन और रानी पद्मावती की प्रेमकथा को केन्द्र में रखते हुए लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना की गई है. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'जायसी ग्रन्थावली' की भूमिका में यह स्पष्ट किया है कि 'पद्मावत' का पूर्वार्ध पूर्णतः कल्पित है, जबकि उत्तरार्ध ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित है. इस महाकाव्य में जायसी ने **प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश काव्यों मे चली आ रही कथानक रुढ़ियों का समुचित प्रयोग किया है,** जिसमें यह स्पष्ट होता है कि वे अपने समय की साहित्यिक परंपरा का पालन करने के साथ-साथ नवाचार भी कर रहे थे.

सबसे पहले, **माता-पिता के विशेष आराधनाओं और संतान की उत्पत्ति** की परंपरा दिखाई देती है. पद्मावती का जन्म माता-पिता की देवी-देवता की विशेष आराधना से होना और उसका अत्यंत रूपवती होना इस रुढ़ि का प्रत्यक्ष, उदाहरण है. यह कथा रुढ़ि प्राचीन भारतीय साहित्य में बार-बार देखने को मिलती है, जैसे नल और दमयंती, राजा रत्नसेन और अन्य नायकों के जन्मकथाओं में. इस प्रकार यह कथानक तत्त्व नायिका की अलौकिक सुंदरता और महत्त्वपूर्ण भूमिका को पहले से ही स्थापित कर देता है.

दूसरी प्रमुख रुढ़ि है **पक्षियों या अन्य माध्यमों से प्रेम की उत्पत्ति.** 'पद्मावत' में हीरामन तोता के मुख से रत्नसेन को पद्मावती के रूप और गुणों का वर्णन सुनकर प्रेम की ज्वाला उत्पन्न होती है. यह कथानक परंपरा पुरानी है और नल-दमयंती या अन्य महाकाव्यों में भी इसे बार-बार देखा गया है. इसके अलावा **स्वप्नदर्शन या चित्रदर्शन द्वारा प्रेम उत्पन्न** की योजना में शामिल है. ऐसे माध्यम नायक या नायिका को प्रेम की ओर प्रवृत्त करते है, जो बाद में कथा के विकास का आधार बनता है.

गुप्त मिलन की घटना भी एक सामान्य कथानक रुढ़ि है. 'पद्मावत' में रत्नसेन और पद्मावती का शिवमन्दिर में गुप्त मिलन प्रेमकथा को रोमांचक और रहस्यमय बनाता है. इसी प्रकार, **पशु-पक्षियों की बातचीत से भावी घटनाओं का अनुमान** भी इस महाकाव्य की कथा-संरचना में देखा जा सकता है. ये घटनाएँ कथानक की पूर्वानुमेय बनाती है और पाठक में उत्सुकता उत्पन्न करती है.

महाकाव्य में **दिव्य सहायता और अलौकिक शक्ति का हस्तक्षेप** भी पारंपरिक रुढ़ि का हिस्सा है. जैसे शिव और पार्वती नायक के कष्ट देखकर उनकी सहायता करते है. युद्ध में देवताओं का सहयोग मिलता है, और पार्वती द्वारा नायक के प्रेम की परीक्षा भी ली जाती है. इन घटनाओं के माध्यम से नायक की वीरता, प्रेम और तप की परीक्षा होती है तथा उसका चरित्र पूर्णता की ओर अग्रसर होता है.

साधनात्मक कथानक रुढ़ियों में **राजा का जोगी बनकर निकल पड़ना, समुद्र की कठिनाइयों में ब्राह्मण वेश धारण करना और बहुमूल्य उपहार प्रदान करना,** तथा **नायिका को पाने के लिए दूती भेजना शामिल है.** ये तत्त्व कथानक में रोमांच, रणनीति और नैतिकता की अनुभूति कराते है. अंततः, पारंपरिक कथानक के अनुसार **पति की मृत्यु के उपरांत पत्नी का सती होना** भी महाकाव्य में एक महत्त्वपूर्ण रुढ़ि के रूप में प्रस्तुत है, जो नायिका की समर्पणशीलता और आदर्श स्त्रीत्व को उजागर करती है.

कुल मिलाकर, जायसी ने 'पद्मावत' में **पूर्ववर्ती प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश काव्यों की कथानक रुढ़ियों का पालन करते हुए उन्हें अपने समय की सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना और सूफी दृष्टिकोण के अनुरुप प्रस्तुत किया है.** ये रुढ़िया प्रेम, वीरता, त्याग, सतीत्व,

अलौकिक सहायता और मनोवैज्ञानिक गहनता के साथ कथानक को सुसंगठित करती है. इसके परिणामस्वरूप 'पद्मावत' न केवल प्रेमकथा है, बल्कि धार्मिक, सामाजिक और दार्शनिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण महाकाव्य बन जाता है.

इस प्रकार, **जायसी ने पारंपरिक कथानक रुढ़ियों का प्रयोग करके न केवल कथा की मानक रूप दिया, बल्कि उसमें सूफी और भारतीय लोकजीवन के तत्वों का सम्मिश्रण करके इसे गहन, विविध और प्रभावशाली बना दिया,** जिससे 'पद्मावत' अवधी साहित्य का अद्वितीय रत्न बनकर उभरता है.

7.7.4 पद्मावत की प्रेम-भावना :

मलिक मुहम्मद जायसी का 'पद्मावत' प्रेम की एक विशिष्ट और जटिल काव्यात्मक अवधारणा प्रस्तुत करता है, जिसमें लौकिक प्रेम, दांपत्य भाव, सूफी रहस्यवाद और भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना का समन्वय दिखाई देता है. 'पद्मावत' मूलतः प्रेमकथा है, किंतु यह प्रेम साधारण भोगप्रधान या केवल रोमानी नहीं, बल्कि साधनात्मक, तपस्यमय और आदर्शोन्मुख है.

जायसी ने 'पद्मावत' में जिस प्रेमपद्धति का चित्रण किया है, वह मुख्यतः गुणश्रवण और रूपवर्णन से उत्पन्न पूर्वराग की श्रेणी में आती है. रत्नसेन का पद्मावती के रूप-गुणओं को तोते के मुख से सुनकर योगी बन जाना इसी प्रेमपद्धति का उदाहरण है. यह प्रेम नायक को संसार-त्याग, कष्ट-साधना और आत्मबलिदान की ओर प्रवृत्त करता है. यद्यपि यह स्थिति लौकिक व्यवहार की दृष्टि से कुछ अस्वाभाविक प्रतीत होती है, फिर भी सूफी प्रेमदर्शन के संदर्भ में यह अज्ञात और अदृश्य सत्यके प्रति आकृष्ट आत्मा का प्रतीक बन जाती है. यहाँ प्रेम केवल देह या रूप का आकर्षण नहीं, बल्कि आत्मा की यात्रा है.

जायसी के प्रेम की एक प्रमुख विशेषता यह है कि उसमें मानसिक पक्ष प्रधान और शारीरिक पक्ष गौण है. चुंबन, आलिंगन जैसे स्थूल शृंगार का वर्णन न्यून है, जबकि विरह, वेदना, आकुलता और अंतद्वेद्व का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण अधिक है. रत्नसेन का प्रेम पहले रूपलोभ के रूप में उभरता है, किन्तु शिवमंदिर में पद्मावती के साक्षात्कार के बाद वह विशिष्ट, एकनिष्ठ और पूर्ण प्रेम में रूपांतरित होता है. यही वह क्षण है जहाँ प्रेम का लक्ष्य-निर्दिष्ट होता है और वह लोभ से ऊपर उठकर प्रेम का स्वरूप ग्रहण करता है.

पद्मावती का प्रेम भी क्रमशः विकसित होता है. प्रारंभिक व्याकुलता को कवि योगजन्य प्रभाव से जोड़ता है, किन्तु वास्तविक प्रेमका उदय रत्नसेन के तप, त्याग और प्रेमकथा को सुनने के बाद होता है. विवाहोपरांत पद्मावती का प्रेम विपत्ति की घड़ी में अपने चरम रूप में प्रकट होता है – पहले रत्नसेन की बंदी होने की स्थिति में साहस और उद्योग के रूप में, और अंततः पति की मृत्यु पर सतीत्व और आत्मसमर्पण के दिव्य रूप में. यह प्रेम सांसारिक आशा-निराशा से ऊपर उठकर परलोकगामी शांति में परिणत होता है.

'पद्मावत' की प्रेमभावना में नागमती का गार्हस्थ्यपरिपुष्ट प्रेम भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है. उसका विरह-वर्णन हिन्दी साहित्य में विप्रलंभ शृंगार का उत्कृष्ट उदाहरण है. नागमती भारतीय स्वकीया प्रेम की प्रतिनिधि है, जिसमें पति-परायणता, धैर्य और भावनात्मक गहनता दिखाई देती है. इस प्रकार जायसी प्रेम के दो रूप प्रस्तुत करते है – पद्मावती का आदर्श, साधनात्मक प्रेम और नागमती का पारिवारिक, व्यवहारसिद्ध प्रेम.

बहुविवाह से उत्पन्न जटिलता को कवि दार्शनिक ढंग से सुलझाता है. रत्नसेन द्वारा दिया गया उपदेश प्रेम को ईश्वर-भक्ति के रूपक से जोड़ता है, जहाँ एक पुरुष अनेक स्त्रियों के लिए पूज्य बन सकता है. यह दृष्टि तत्कालीन सामाजिक संरचना और धार्मिक विश्वासों से जुड़ी है. इस प्रकार जायसी प्रेमकथा के भीतर सामाजिक यथार्थ और मतगत सामंजस्य को भी स्थान देते है.

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'पद्मावत' की प्रेम-भावना बहुआयामी है – उसमें सूफी रहस्यवाद की अलौकिकता, भारतीय लोक-जीवन की व्यवहारिकता, दांपत्य प्रेम की गरिमा और विरह की करुणा आ अद्‌भुत समन्वय है. यही कारण है कि 'पद्मावत' श्रृंगाररस प्रधान होते हुए भी केवल प्रेमकथा न रहकर एक गहन भावात्मक और दार्शनिक काव्य के रुप में प्रतिष्ठित होता है.

7.7.5 पद्मावत की ऐतिहासिकता :

'पद्मावत' हिन्दी साहित्य की सूफी परंपरा का उत्कृष्ट ग्रंथ है, जिसमें रत्नसेन और पद्मावती की प्रेमकथा का वर्णन किया गया है. इस आख्यायिका को हम **दो भागों में विभक्त** कर सकते हैं – पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध.

कथा के पूर्वार्द्ध में रत्नसेन की **सिंहलद्वीप यात्रा से लेकर चितौड़ लौटने तक** का समय आता है. इस भाग को कल्पित माना जाता है. यहाँ रत्नसेन के साहसिक प्रयास, पद्मावती के सौंदर्य का वर्णन, तोते और गुरु हीरामन के माध्यम से प्रेम का प्रारंभ आदि घटनाएँ शामिल है. जायसी ने इसमें सूक्ष्म और मनोहर कल्पनाओं के माध्यम से कथा को काव्यात्मक रुप प्रदान किया है. इस भाग में कथानक का उद्देश्य केवल प्रेम और वीरता के आदर्शो का प्रदर्शन है, न कि ऐतिहासिक तथ्य प्रस्तुत करना.

उत्तरार्द्ध में कथा **ऐतिहासिक आधार** पर आधारित हो. इसमें राधव के निकाले जाने से लेकर पद्मिनी के सती होने तक का समय आता है. टोंड के अनुसार, अलाउद्दीन ख़िलजी ने संवत 1346 में चितौडगढ़ पर दूसरी बार चढ़ाई की थी. इस युद्ध में राणा और उनके ग्यारह पुत्रों का वीरगति प्राप्त होना तथा रानी पद्मिनी द्वारा जौहर करना ऐतिहासिक घटनाएँ हैं. 'आइना ए अक्बारी' में भी इसी घटना का उल्लेख्र मिलता है, जिसमें रतनसी (रत्नसेन) का नाम आता है. जायसी ने अपने महाकाव्य में रत्नसेन का नाम **ऐतिहासिक आधार से** लिया है. हालांकि, उन्होंने मुसलमानों के हाथों रत्नसेन के मारे जाने का विवरण नहीं दिया और इसे **कुम्भलनेर के युद्ध में मारे जाने** का रूप मं प्रस्तुत किया. इसका कारण यह हो सकता है कि लग ऐतिहासिक सत्य को कथा की सृजनात्मकता के साथ संतुलित करना चाहते थे.

उत्तर भारत में प्रचलित कथा, विशेषकर अवध क्षेत्र में, जायसी के कथनानुसार ही प्रचलित है. यहाँ रानी पद्मिनी और हीरामन तोते की कहानी जनसाधारण के बीच लोककथा के रुप मं जीवित रही. जायसी ने इन प्रचलित कथाओं को लेकर उन्हें **साहित्यिक और काव्यात्मक** रुप प्रदान किया.

इस कथा का **फारसी और ऊर्दू संस्करण** भी मौजूद है. हुसैन गजनवी ने 'किस्सा ए पद्मावत' नामक फारसी काव्य लिख्रा. 1652 ई. में रायगोविंद मुन्शी ने 'तुकफतुल कुलूब' के रूप में इसे फारसी गद्य में प्रस्तुत किया. 1769 ई. में और जियाउद्दीन और गुलामअली ने ऊर्दू शेरों में इस कथा का लेख्रन किया. वहीं, मलिक मुहम्मद जायसी ने इसे 1520 ई. में अवधी में महाकाव्य का रूप दिया.

अतः **पद्मावत की ऐतिहासिकता** मिश्रित है. इसका पूर्वार्द्ध कल्पित और काव्यात्मक है, जबकि उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित है. जायसी ने प्रचलित लोककथाओं, ऐतिहासिक घटनाओं और सूफी दर्शन का संयोजन का इसे साहित्यिक और दार्शनिक दृष्टि से समृद्ध किया. यही कारण है कि यह महाकाव्य न केवल प्रेम और वीरता का आदर्श प्रस्तुत करता है, बल्कि इतिहास और लोककथाओं के बीच एक **संतुलित दृष्टिकोण** भी प्रदान करता है.

7.7.6 भाषा-शैली :

'पद्मावत' हिन्दी साहित्य की सूफी परंपरा का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है. इसकी रचना अवधी भाषा में हुई है, जो उस समय की प्रचलित लोकभाषाओं से एक थी. जायसी ने

अपनी मातृभाषा का प्रयोग करते हुए इसे सहज, लयबद्ध और पठनीय नाया, ताकि आम जनता भी इसे आसानी से समझ सके. हालाकि, ग्रंथ में फारसी और अरबी शब्दों का भी समावेश है, जो सूफी दृष्टिकोण और इस्लामी सांस्कृतिक प्रभाव को दर्शाते है. यह मिश्रण भाषा को गहन और वैविध्यपूर्ण बनाता है.

भाषा की संरचना में ठेठ अवधी का प्रयोग प्रमुख है. इसमें ग्राम्य और लोकसाहित्यिक प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है. जायसी ने अपने ग्रंथ को दोहे और चौपाई छंदों में लिखा है, जो सूफी और भक्ति काव्य शैली काएक पारंपरिक अंग था. दोहा में संक्षिप्त और सटीक भाव व्यक्त होते हैं, जबकि चौपाई छंद कथा के प्रवाह और विस्तार के लिए उपयोगी है. इस प्रकार दोहा और चौपाई का संयोजन कथा और भाव दोनों को लयबद्ध और संतुलित बनाता है.

शैली की दृष्टि से 'पद्मावत' मसनवी शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है. मसनवी शैली में प्रेम, विरह, संघर्ष और दर्शनात्मक विचारों का सुचारु प्राह संभव होता है. जायसी ने इसमें सूफी तत्त्वों और रहस्यवाद को समाहित किया है. नायक और नायिका के प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम और ईश्वर-प्रेम का संदेश दिया गया है. इसके अतिरिक्त लोक-जीवन, सामाजिक रीति-रिवाज, युद्ध और नैतिकता के तत्त्वों को भी कथा में शामिल किया गया है. जिससे यह महाकाव्य केवल प्रेमकथा न रहकर सामाजिक और दार्शनिक दृष्टि से भी समृद्ध बन गया.

जायसी की भाषा-शैली की विशेषता यह है कि उन्होंने संस्कृत, अरबी और फारसी ज्ञान के बावजूद अपने ग्रंथ को लोकाभिधा और अवधी लोकभाषा में प्रस्तुत किया. इस कारण पाठक को न केवल कथा की सजीवता का अनुभव होता है, बल्कि सूफी दर्शन और आध्यात्मिकता भी सहज रूप में समझ में आती है. बाद में गोस्वामी तुलसीदास ने भी इसी अवधी भाषा और छंद शैली का प्रयोग अपने महाकाव्य 'रामचरित मानस' में किया, जो 'पद्मावत' की प्रभावशाली भाषा शैली का प्रमाण है.

साहित्यिक आलोचक बाबू गुलाबराय लिखते है कि जायसी में "कवि के समस्त गुण विद्यमान है. उन्होंने सामाजिक समस्या के लिए प्रेम की पीर की देन दी. उस पीर को उन्होंने शक्तिशाली महाकाव्य के द्वारा उपस्थित किया. वे अमर कवि है." यह टिप्पणी 'पद्मावत' की भाषा और शैली की विशिष्टता को स्पष्ट करती है.

अतः 'पद्मावत' की भाषा और शैली सरल, प्रवाही और संगीतपूर्ण है, जिसमें अवधी भाषा, दोहा-चोपाई, छंद, मसनवी शैली, सूफी तत्त्व और सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों का समन्वय गहन रूप में दिखाई देता है. यही कारण है कि यह महाकाव्य हिन्दी-साहित्य में अपनी उच्च काव्यात्मक और दार्शनिक महत्ता के लिए अमर माना जाता है.

7.7.7 उद्देश्य :

पद्मावत केवल प्रेमकथा नहीं है, बल्कि इसके माध्यम से दार्शनिक, नैतिक और आध्यात्मिक संदेश दिए गए हैं. महाकाव्य में रत्नसेन और पद्मावती का प्रेम लौकिक और अलौकिक रूप में प्रस्तुत किया गया है. रत्नसेन का प्रेम केवल भौतिक आकर्षण नहीं, बल्कि आत्मा और परमात्मा के मिलन का प्रतीक है.

पद्मावत का एक उद्देश्य सांस्कृतिक और धार्मिक समन्वय स्थापित करता भी है. जायसी, मस्लिम कवि होते हुए, हिन्दू रीति-रिवाज, सतीत्व और नैतिक मूल्यों का समावेश करते हैं. प्रेम, वीरता और धर्म को कहानी में जोड़कर यह संदेश दिया गया है कि सच्चा प्रेम केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामाजिक और नैतिक कर्तव्य से भी जुड़ा होता है.

महाकाव्य में पात्रों के प्रतीकात्मक अर्थ भी इसके उद्देश्य को स्पष्ट करते है पद्मावती सौंदर्य और सत्य, रत्नसेन आत्मा, और अलाउद्दीन वासना तथा बादाओं का प्रतीक है. इन

प्रतीकों के माध्यम से कहानी में भावनाओं की गहराई और जीवन के उच्च मूल्य पाठकों तक पहुँचते हैं.

अवधी भाषा, दोहा-चौपाई छंद और सरल कथ्य ने इसे सुलभ और बोधगम्य बनाया है. कथा का प्रवाह स्पष्ट और घटनाओं का क्रम सहज है. पात्रों के भाव आसानी से समझें जा सकते हैं, जिससे महाकाव्य का दार्शनिक और नैतिक संदेश सीधे पाठक तक पहुँचता है.

अत: पद्मावत का उद्देश्य है प्रेम, वीरता, नैतिकता और आध्यत्मिक उन्नति का संदेश देना, जिसे पाठक सरलता से समझ सके और जीवन में अपनाने योग्य मान सकें.

7.8 सार बिन्दु

- पद्मावत मलिक मुहम्मद जायसी का अवधी में रचित प्रमुख महाकाव्य है.
- कथा का मुख्य विषय राजा रत्नसेन और रानी पद्मावती का आदर्श प्रेम है.
- कहानी में लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम का बोध कराया गया है.
- पद्मावती सौंदर्य, सत्य और परमात्मा के प्रतीक रूप में प्रस्तुत है.
- रत्नसेन नायक के रूप में आत्मा और प्रेम की आकांक्षा का प्रतीक है.
- अलाउद्दीन खिलजी बाधा और सांसारिक वासना का प्रतीक है.
- हीरामन तोता और अन्य पात्र गुरु या मार्गदर्शक के प्रतीक है.
- कथा में पूर्वार्ध कल्पित है, जिसमें रत्नसेन की सिंहलद्वीप यात्रा और पद्मावती से संयोग शामिल है.
- उत्तरार्ध ऐतिहासिक आधार पर है, जिसमें चितौड़गढ़ पर अलाउद्दीन की चढ़ाई और जौहर का वर्णन है.
- पद्मावत में सूफी प्रेम और हिन्दू धार्मिक परंपराओं का सम्मिलन है.
- कथानक में पारंपरिक रूढ़ियाँ जैसे स्वप्नदर्शन, चित्रदर्शन और शिवमंदिर में गुप्त मिलन शामिल है.
- जायसी ने भाषा और शैली में अवधी का प्रयोग किया, जो सरल और बोधगम्य है.
- महाकाव्य में दोहा और चौपाई छंद का सुन्दर संयोजन देखा जाता है.
- यह रचना प्रेम, वीरता, सतीत्व, नैतिकता और आध्यात्मिकता का आदर्श प्रस्तुत करती है.
- पद्मावत का उद्देश्य समाज में प्रेम, धर्म और सांस्कृतिक समन्वय का संदेश देना है.

7.9 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

1. विस्तृत प्रश्न :

(i) मलिक मुहम्मद जायसी का परिचय और साहित्यिक योगदान बताइए. उनके काव्य में सूफी तत्त्वों का स्थान स्पष्ट कीजिए.

(ii) पद्मावत के कथानक की संक्षिप्त व्याख्या करते हुए प्रमुख घटनाओं और पात्रों की भूमिका समझाइए.

(iii) पद्मावत मे प्रतीक योजना एवं दार्शनिक दृष्टि की व्याख्या कीजिए. इसमें लौकिक और अलौकिक प्रेम की व्यंजना को उदाहरण सहित समझाइए.

- **निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखे :**
  - मलिक मोहम्मद जायसी का जीवन-परिचय

- मलिक मोहम्मद जायसी का साहित्यिक योगदान
- पद्मावत का संक्षिप्त परिचय
- मानसरोवर खंड का सार
- पद्मावत में प्रतीक-योजना एवं दार्शनिक दृष्टि स्पष्ट कीजिए.
- पद्मावत की ऐतिहासिकता
- पद्मावत की भाषा एवं शैली

2. लघु उत्तरीय प्रश्न :

(1) पद्मावत के लेखक कौन हैं और इस महाकाव्य की रचना कब हुई?

(2) पद्मावत की भाषा, छंद और लिपि क्या है?

(3) रत्नसेन और पद्मावती किसका प्रतीक है?

(4) पद्मावत में अलाउद्दीन खिलजी का प्रतीकात्मक अर्थ क्या है?

(5) पद्मावत का पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध किस प्रकार विभक्त किया गया है?

3. बहुविकल्पीय प्रश्न (MCQ) :

1. पद्मावत का रचनाकार कौन है?

(A) तुलसीदास (B) मलिक मुहम्मद जायसी

(C) सूरदास (D) रहीम

2. पद्मावत की भाषा क्या है?

(A) ब्रजभाषा (B) अवधी

(C) हिन्दी (D) संस्कृत

3. पद्मावत की लिपि कौन-सी है?

(A) देवनागरी (B) फारसी

(C) ब्राह्मी (D) गुजराती

4. पद्मावत में रत्नसेन किसका प्रतीक है?

(A) बाहरी शत्रु (B) जीवात्मा/आत्मा

(C) गुरु (D) संसार

5. पद्मावती का प्रतीकात्मक अर्थ क्या है?

(A) सौंदर्य (B) परमात्मा/सत्य

(C) मोह (D) वीरता

6. अलाउद्दीन खिलजी पद्मावत में किसका प्रतीक है?

(A) अहंकार और बाधा (B) प्रेम

(C) शांति (D) सौंदर्य

7. पद्मावत का पूर्वार्द्ध किस पर आधारित है?

(A) ऐतिहासिक घटनाएँ (B) कल्पना

(C) रामायण (D) फारसी मसनवी

8. **पद्मावत का उत्तरार्द्ध किस आधार पर ऐतिहासिक माना गया है.**

(A) टॉड और आइना-ए-अकबारी के वृत्तांत

(B) केवल लोककथा

(C) फारसी साहित्य

(D) रामायण

9. **पद्मावत में शिवमंदिर का महत्त्व क्या है?**

(A) युद्धस्थल (B) नायक-नायिका का गुप्त मिलन

(C) पर्वतारोहण (D) ब्राह्मण शिक्षा

10. **पद्मावत में हीरामन तोता किसका प्रतीक है?**

(A) प्रेम (B) गुरु/मार्गदर्शक

(C) शत्रु (D) राजा

उत्तर : 1. B 2. B 3. B 4. B 5. B

6. A 7. B 8. A 9. B 10. B

7.10 उपयोगी अध्ययन सामग्री

1. जायसी ग्रंथावली, लेखक - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
2. मलिक मोहम्मद जायसी, - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली
3. जायसी, लेखक- डॉ. आर. पी. वर्मा, लक्ष्मी प्रकाशन, दिल्ली-64
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास, लेखक – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
5. https://epustakalay.com/book/3955-padmavat-by-malik-muhammad-jayasi/#google_vignette
6. https://ebooks/infibnet.ac.in/himp05/chapter/E0%A4%AA%E0%A4%A6%E0%A5%8D%E0%A4%AE%E0%A4%BF%E0%A4%B5%E0%A4%A4-%E0%A4%90%E0%A4%A4%E0%A4%BF%E0%A4%B9%E0%A4%BE%E0%A4B8%E0A4%BF%E0%A4%95%E0%A4%A4%E0%A4%BE-E0%A4%94%E0%A4%B0%E0%A4%AE%E0%A4%B9/
7. https://www.hindwi.org/ebookds/detail/padmawat-malik-mohammad-jayasi-ebooks
8. https://www.hindisamay.com/content/546/%E0%A4%B0%E0%A4%BE%E0%A4%AE%E0%A4%9A%E0%A4%82%E0%A4%A6%E0%A5%8D%E0%A4%B0-%E0%A4%B6%E0%A5%81%E0%A4%95%E0%A5%8D%E0%A4%B2-%E0%A4%A6%E0%A5%8D%E0%A4%B5%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A4%BE-%E0%A4%B8%E0%A4%82%E0%A4%AA%E0%A4%BE%E0%

A4%A6%E0%A4%BE%E0%%A4%A4-

E0%A4%95%E0%A4%B5%E0%A4%BF%E0%A4%A4%E0%A4%BE%E0%A4%8F%E0%A4%81-

%E0%A4%AA%E0%A4%A6%E0%A4%AE%E0%A4%BE%E0%A4%B5%E0%A4%A4.espx.

इकाई 8 'भ्रमरगीत सार' - सूरदास

रूपरेखा

8.1 उद्देश्य

8.2 प्रस्तावना

8.3 सूरदास का परिचय एवं योगदान

8.4 भ्रमरगीत सार : संक्षिप्त परिचय

8.5 भ्रमरगीत सार : व्याख्या-भाग

8.5.1 भ्रमरगीत सार : पद - आयो घोष बड़ो व्योपारी.

8.5.2 भ्रमरगीत सार : पद - निर्गुन कौन देस को बासी ?

8.5.3 भ्रमरगीत सार : पद - ऊधौ जोग जोग हम नाहीं.

8.5.4 भ्रमरगीत सार : पद - काहे को गोपीनाथ कहावत ?

8.6 भ्रमरगीत का मूल्यांकन

8.6.1 भ्रमरगीत का कथानक

8.6.2 भ्रमरगीत : चरित्र विधान

8.6.3 भ्रमरगीत : ज्ञान पर प्रेम की विजय का काव्य

8.6.4 भ्रमरगीत में प्रकृति

8.6.5 भ्रमरगीत में सहृदयता एवं वाग्विदग्धता

8.6.6 भ्रमरगीत का दार्शनिक पक्ष / विचार

8.6.7 भ्रमरगीत : भाषा और शैली

8.6.8 भ्रमरगीत : उद्देश्य

8.7 सार बिंदु

8.8 परीक्षा-उपयोगी प्रश्नावली

8.9 उपयोगी अध्ययन सामग्री

8.1 उद्देश्य

'भ्रमरगीत' सूरदास की काव्य-प्रतिभा का अत्यंत महत्त्वपूर्ण और भावप्रधान अंश है, जिसमें विरह, प्रेम, भक्ति और मानवीय संवेदना का अत्यत समन्वय दिखाई देता है. इस इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य हैं.

- विद्यार्थियों को भ्रमरगीत में निहित विरह, प्रेम, भक्ति और मानवीय संवेदना के समन्वय को जानना.
- भ्रमरगीत के कथ्य को स्पष्ट रूप से समझ पाना.
- उद्धव के माध्यम से प्रस्तुत ब्रह्मज्ञान और निर्गुण भक्ति के संदेश को पहचानना.
- गोपियों द्वारा निर्गुण भक्ति के अस्वीकार और सगुण प्रेम-भक्ति की स्वीकृति को समझना.
- भ्रमरगीत को केवल विरह-वर्णन न मानकर प्रेम-भक्ति की श्रेष्ठता के काव्य के रूप में देखना.

- भ्रमरगीत की काव्य-योजना और उसकी संरचना के निहितार्थ को जानना.
- 'भ्रमर' के प्रतीकात्मक अर्थ और उसकी संदेशवाहक भूमिका को समझना.
- संवाद, प्रतीक और व्यंग्य के माध्यम से निर्गुण - सगुण भक्ति के द्वंद्व को समझना.
- गोपियों की तर्क-योजना से परिचित होना.
- गोपियों की वाणी में निहित व्यंग्य, प्रश्नाकुलता, भावुकता और तर्क के संतुलन को समझना.
- विद्यार्थियों में साहित्यिक समझ, भावबोध और आलोचनात्मक दृष्टि का विकास करना.

8.2 प्रस्तावना

सूरदास का भ्रमरगीत हिंदी भक्ति-साहित्य की तक अत्यंत महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट काव्य-रचना है, जो उनके प्रसिद्ध ग्रंथ सूरसागर का प्रमुख अंश है. यह प्रसंग कृष्ण-विरह से व्याकुल गोपियों और ज्ञानी उद्धव के बीच हुए संवाद का मार्मिक, भावपूर्ण और दार्शनिक चित्र प्रस्तुत करता है. भ्रमरगीत में सूरदास ने केवल विरह-वेदना का चित्रण ही नहीं किया, बल्कि ज्ञान और प्रेम, निर्गुण और सगुण, दर्शन और भावना के द्वंद्व को अत्यंत सशक्त काव्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया है. इसी कारण यह रचना सूरदास की काव्य-प्रतिभा का उत्कर्ष मानी जाती है.

अध्ययन का महत्व यह है कि भ्रमरगीत के माध्यम से पुष्टिमार्गीय भक्ति, कृष्ण-प्रेम की गहनता, ब्रज का लोक-जीवन, सामाजिक परिवेश और संस्कृति को समझने का अवसर मिलता है. साथ ही यह सूरदास की अद्वितीय काव्य-कला, भावनात्मक गहराई और वक्र-विनोद का श्रेष्ठ उदाहरण भी प्रस्तुत करता है. संक्षेप में, भ्रमरगीत भक्ति, दर्शन, लोक-संस्कृति और काव्य-शिल्प का अद्‌भुत संगम है, जिसका अध्ययन छात्रों के लिए अत्यंत उपयोगी और समृद्ध अनुभव प्रदान करता है.

8.3 सूरदास का परिचय एवं योगदान

हिंदी भक्ति-काव्य परंपरा में सूरदास का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट है. वे सगुण भक्ति शाखा के कृष्ण-भक्त कवि हैं और पुष्टिमार्ग के प्रमुख आचार्य श्री वल्लभाचार्य के शिष्य माने जाते हैं. सूरदास के जीवन के संबंध में ऐतिहासिक और प्रामाणिक सामग्री का अभाव है, इसलिए उनके जन्म, जन्मस्थान और जीवन-घटनाओं को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद मिलते हैं.

सामान्यतः यह माना जाता है कि सूरदास का जन्म लगभग 1478 ई. के आसपास मथुरा-आगरा मार्ग पर स्थित रुनकता (या रेणु) नामक ग्राम में हुआ था. कुछ विद्वान उनका जन्म स्थान सीही ग्राम बताते हैं और उन्हें सारस्वत ब्राह्मण कुल का मानते हैं. 'भावप्रकाश', 'निजवार्ता' और 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' जैसे ग्रंथों में उनके जन्मस्थान के भिन्न-भिन्न उल्लेख मिलते हैं. मथुरा और आगरा के बीच गऊघाट पर उनका निवास बताया गया है, जहाँ उनकी भेंट श्री वल्लभाचार्य से हुई.

सूरदास की जन्मतिथि के निर्धारण में 'साहित्य-लहरी' विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण मानी जाती है. इसमें संवत् 1607 वि. का उल्लेख मिलता है, जिससे यह अनुमान लगाया जाता है कि यह ग्रंथ उसी काल में रचा गया. वल्लभसंप्रदाय की मान्यता के अनुसार वल्लभाचार्य सूरदास से दस दिन बड़े थे, इसलिए सूरदास का जन्म संवत् 1535 वि. के आसपास माना जाता है. रामचंद्र शुक्ल के अनुसार सूरदास का जन्म संवत् 1540 वि. के सन्निकट और मृत्यु संवत् 1620 वि. के आसपास हुई. 'सूरसरावली' के आधार पर उनकी आयु 67 वर्ष मानी जाती है.

सूरदास के जन्मांध होने को लेकर भी विद्वानों में मतभेद हैं. परंपरागत ग्रंथों में उन्हें जन्म से अंधा बताया गया है, सकतु उनकी कविताओं में राधा-कृष्ण के रूप-सौंदर्य, रंगों, भाव-भंगिमाओं और प्रकृति के सूक्ष्म वर्णन को देकर अनेक आधुनिक विद्वान इस मत को स्वीकार नहीं करते. श्यामसुंदर दास का मत है कि वैसा सजीव श्रृंगार-वर्णन कोई जन्मांध कवि नहीं कर सकता. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी सूरदास के आत्मविनय को प्रतीकात्मक माना है, न कि शाब्दिक सत्य.

सूरदास अष्टछाप के कवियों में सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं. वे श्रीनाथजी के मंदिर में कीर्तन करते थे और उनकी पदावली संगीतात्मकता से भरपूर है. साहित्यिक योगदान की दृष्टि से सूरदास हिंदी साहित्य के महानतम कवियों में गिने जाते हैं. उनकी सर्वप्रसिद्ध रचना सूरसागर है, जिसमें श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं, वात्सल्य, श्रृंगार और भक्ति-रस का अद्वितीय चित्रण मिलता है. कहा जाता है कि इसमें मूलतः सवा लाख पद थे, किंतु आज सात-आठ हजार पद ही उपलब्ध हैं. सूरसारावली दार्शनिक और भक्तिपरक ग्रंथ है, जबकि साहित्य-लहरी में कूट पदों का संकलन मिलता है. इसके अतिरिक्त नल-दमयंती और ब्याहलो का भी उल्लेख किया जाता है. नागरी प्रचारिणी सभा के अनुसार सूरदास से संबंधित लगभग 16 ग्रंथों का उल्लेख मिलता है, किंतु प्रथम तीन ग्रंथ ही प्रामाणिक और महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं.

निष्कर्षतः सूरदास ने हिंदी भक्ति-काव्य को भावनात्मक गहराई, कलात्मक सौंदर्य और मानवीय संवेदना प्रदान की. श्रीकृष्ण की बाल-छवि को शब्दों में जीवंत कर देने वाली उनकी लेखनी उन्हें हिंदी साहित्य का अमर कवि सिद्ध करती है.

8.4 भ्रमरगीत सार : संक्षिप्त परिचय

सूरदास का 'भ्रमरगीत सार' हिंदी भक्ति-साहित्य की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण कृति है, जिसका संबंध उनके प्रसिद्ध ग्रंथ 'सूरसागर' से है. आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा संपादित 'सूरसागर' के चयनित पदों के आधार पर 'भ्रमरगीत सार' का स्वरूप निर्मित हुआ है. यह रचना श्रीकृष्ण के मथुरा गमन के पश्चात् ब्रज में व्याप्त गोपियों की विरह-वेदना और उद्धव के साथ हुए उनके भावपूर्ण संवाद को केंद्र में रखती है.

इस काव्य-प्रसंग की पृष्ठभूमि 'सूरसागर' के दशम स्कंध से जुड़ी हुई है. श्रीकृष्ण ब्रज छोड़कर मथुरा चले जाते हैं और वहाँ से अपने मित्र उद्धव को गोपियों के पास भेजते हैं. उद्धव कृष्ण का संदेश लेकर आते हैं, जिसमें निर्गुण ब्रह्म, योग और वैराग्य का उपदेश निहित है. किंतु ब्रज की गोपियाँ, जो कृष्ण के सगुण रूप से अनन्य प्रेम रखती हैं, इस शुष्क ज्ञान को स्वीकार करने से इनकार कर देती हैं. यहीं से 'भ्रमरगीत' का मार्मिक और वैचारिक संवाद आरंभ होता है.

'भ्रमरगीत सार' में गोपियाँ उद्धव के उपदेशों का प्रतिवाद लोक-जीवन से जुड़े तर्कों, तीखे व्यंग्यों और भावनात्मक प्रश्नों के माध्यम से करती हैं. इस काव्य में 'भ्रमर' अर्थात् काले भौरे का प्रतीक अत्यंत अर्थपूर्ण है. गोपियाँ भौरे को देखकर उसे उद्धव का प्रतीक मान लेती हैं और कहती हैं कि जैसे भौंरा फूल-फूल का रस लेकर कहीं स्थिर नहीं रहता, वैसे ही उद्धव भी प्रेम छोड़कर निर्गुण ब्रह्म की बात कर रहे हैं. इस प्रतीक के माध्यम से गोपियाँ अपने वियोग, क्षोभ और प्रेम-निष्ठा को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करती हैं.

'भ्रमरगीत' में गोपियों की वचन-वक्रता विशेष रूप से उल्लेखनीय है. वे निराकार ब्रह्म के माता-पिता, रूप-रंग और निवास के विषय में सहज प्रश्न पूछकर उद्धव के दार्शनिक ज्ञान को चुनौती देती हैं. ये प्रश्न साधारण प्रतीत होते हैं, किंतु गहन दार्शनिक अर्थ लिए हुए हैं. इसके माध्यम से सूरदास यह स्थापित करते हैं कि शुष्क ज्ञान की अपेक्षा प्रेम-भक्ति अधिक मानवीय और सार्थक है.

रस की दृष्टि से 'भ्रमरगीत सार' में श्रृंगार रस और भक्ति रस का सुंदर समन्वय दिखाई देता है. गोपियों का कृष्ण-प्रेम, उनकी विरह-व्यथा और भक्ति-निष्ठा इस रचना को अत्यंत करुण और प्रभावशाली बनाती है. संक्षेप में, 'भ्रमरगीत सार' भक्ति और श्रृंगार से परिपूर्ण तक ऐसा काव्य है, जिसमें सूरदास ने लोक-भाषा, प्रतीक, व्यंग्य और दर्शन के माध्यम से प्रेम-भक्ति की श्रेष्ठता को अमर रूप प्रदान किया है.

8.5 भ्रमरगीत सार : व्याख्या-भाग

8.5.1 भ्रमरगीत सार

आयो घोष बड़ो व्योपारी.
लादि खेप ज्ञान-जोग की ब्रज में आन उतारी.
फाटक दै कर हाटक माँगत भोरै निपट सुधारी.
धुर ही तें खोटी खायो है लये फिरत सिर भारी.
इनके कहे कौन डहकावै ऐसी कौन अजानी ?
अपनो दूध छाँड़ि को पीवै खार कूप को पानी.
ऊधो जाहु सबार यहाँ तें बेगि गहरु जनि लावौ.
मुँह माँग्यो पैहो सूरज प्रभु साहुहि आनि दिखावौ.

संदर्भ-प्रसंग : प्रस्तुत पद सूरदास के भ्रमरगीत प्रसंग से उद्धृत है. भ्रमरगीत में श्रीकृष्ण के मथुरा-गमन के उपरान्त ब्रज में विरहाकुल गोपियों और उद्धव के बीच संवाद का चित्रण है. श्रीकृष्ण ने उद्धव को ब्रज भेजा था ताकि वे गोपियों को निर्गुण ब्रह्म, ज्ञान और योग का उपदेश देकर उनके विरह-दुःख को शांत करें किंतु गोपियाँ प्रेममार्ग की साधिकाएँ हैं; उनके लिए कृष्ण कोई दार्शनिक सत्ता नहीं, बल्कि साकार, स्नेहिल और रसपूर्ण प्रियतम हैं. इसलिए उद्धव का निर्गुण ज्ञान उन्हें न केवल निरर्थक प्रतीत होता है, बल्कि उनके प्रेम के विरुद्ध भी लगता है. इसी मानसिक स्थिति में गोपियाँ उद्धव को 'व्यापारी' कहकर तीखे व्यंग्य के साथ संबोधित करती हैं.

व्याख्या : गोपियाँ परस्पर कहती हैं - देखो सखियो,, अहीरों की इस बस्ती में एक बहुत बड़ा व्यापारी आया है. यहाँ 'व्यापारी' शब्द प्रतीकात्मक है. उद्धव को ऐसा व्यापारी कहा गया है जो ज्ञान और योग का माल लेकर आया है. वह अपने 'गुण-ज्ञान-योग' की खेप ब्रज में उतार देता है, मानो यह कोई बाजार हो जहाँ दर्शन का व्यापार किया जा सकता है.

गोपियाँ आगे कहती हैं कि यह व्यापारी हमें भोला-भाला समझकर 'फाटक' अर्थात् निकृष्ट, निस्सार निर्गुण ब्रह्म देकर 'हाटक' यानी बहुमूल्य स्वर्ण माँग रहा है. यहाँ स्वर्ण से तात्पर्य कृष्ण की प्रेममयी भक्ति है. गोपियों के अनुसार उद्धव उनसे वह अमूल्य निधि छीनना चाहते हैं, जो उन्हें सहज रूप से प्राप्त है - कृष्ण-प्रेम.

वे कहती हैं कि आरंभ से ही इस व्यापारी को घाटा हुआ है, क्योंकि उसके माल को किसी ने खरीदा ही नहीं. अर्थात् ब्रज में किसी भी गोपी ने निर्गुण ज्ञान को स्वीकार नहीं किया. अब वह अपने सिर पर ज्ञान का भारी बोझ लादे फिर रहा है. इस कथन में गोपियों का व्यंग्य अपने चरम पर है - ज्ञान यहाँ मुक्ति का साधन नहीं, बल्कि बोझ बन गया है.

गोपियाँ प्रश्न करती हैं - भला ऐसे खोटे माल को इसके कहने पर कौन खरीदेगा ? और फिर एक अत्यंत सशक्त लोक-उपमा देती हैं - "कौन ऐसा मूर्ख होगा जो अपने घर का मधुर दूध छोड़कर आरे कुएँ का पानी पीएगा" ? दूध सगुण, साकार, मधुर कृष्ण-भक्ति का प्रतीक है और खारे कुएँ का पानी शुष्क, नीरस निर्गुण उपासना का. इस उपमा के माध्यम

से गोपियाँ स्पष्ट कर देती हैं कि उनके लिए निर्गुण साधना स्वादहीन और जीवन-विरोधी है.

अंत में गोपियाँ उद्धव से कहती हैं - "हे उद्धव, यदि तुम अपना माल बेचना चाहते हो तो यहाँ से शीघ्र चले जाओ और उस महाजन को लेकर आओ, जिसने यह माल देकर तुम्हें भेजा है". यहाँ 'महाजन' स्वयं श्रीकृष्ण हैं. गोपियाँ व्यंग्य में कहती हैं कि यदि कृष्ण स्वयं आ जाएँ तो वे उद्धव का ज्ञान स्वीकार करने को भी तैयार हैं. वस्तुतः यह उनकी गहन विरह-पीड़ा और कृष्ण-दर्शन की उत्कट लालसा का ही स्वर है.

साहित्यिक सौंदर्य : इस पद का साहित्यिक सौंदर्य मुख्यतः उसके व्यंग्यात्मक शिल्प और लोक-जीवन से लिए गए व्यापारिक रूपकों में निहित है. 'व्यापारी', 'खेप', 'हाटक', 'फाटक', 'घाटा', 'महाजन' जैसे शब्द पूरे पद को तक सजीव बाज़ार-दृश्य में बदल देते हैं. दार्शनिक विवाद को सूरदास ने अत्यंत सहज और जनसुलभ बना दिया है.

अलंकारों की दृष्टि से यहाँ रूपक, व्यंग्य, उपमा और प्रतीक अलंकारों का सुंदर प्रयोग हुआ है. भाव-पक्ष में श्रृंगार रस और विरह की प्रधानता है, जिसमें भक्ति रस का गहरा संचार है. गोपियों का प्रेम इतना प्रबल है कि वह ज्ञान और योग को भी पराजित कर देता है.

समग्रतः यह पद निर्गुण ज्ञान पर सगुण प्रेम की विजय का घोष करता है. सूरदास यहाँ यह स्थापित करते हैं कि भक्ति का मार्ग तर्क और दर्शन से नहीं, बल्कि प्रेम, रस और सजीव अनुभूति से प्रशस्त होता है. यही इस पद की भावात्मक शक्ति और साहित्यिक गरिमा है.

8.5.2 भ्रमरगीत सार

निर्गुन कौन देस को बासी ?

मधुकर ! हँसि समुझाय, सौंह दै बूझति, साँच, न हाँसी.
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी ?
कैसो बरन, भेस है कैसो केहि रस कै अभिलासी.
पावैगो पुनि कियो अपनो जो रे ! कहैगो गाँसी.
सुनत कौन है रह्यो ठग्यो सो सूर सबै मति नासी.

संदर्भ-प्रसंग : प्रस्तुत पद सूरदास के भ्रमरगीत प्रसंग से लिया गया है. यह प्रसंग उस समय का है जब श्रीकृष्ण मथुरा चले गए हैं और उनके संदेशवाहक के रूप में उद्धव ब्रज पहुँचे हैं. उद्धव गोपियों को निर्गुण ब्रह्म, योग और वैराग्य का उपदेश देते हैं, ताकि वे कृष्ण-विरह के दुःख से मुक्त हो सकें. परंतु गोपियाँ सगुण, साकार और प्रेममय कृष्ण की उपासिका हैं. उन्हें उद्धव का निर्गुण ज्ञान न केवल नीरस प्रतीत होता है, बल्कि उनके प्रेमानुभव के प्रतिकूल भी लगता है. इसी भावावेश में गोपियाँ व्यंग्य, तर्क और भावुकता के साथ निर्गुण ब्रह्म की अवधारणा पर प्रश्न उठाती हैं.

व्याख्या : गोपियाँ पूछती हैं - हे उद्धव ! यह बताइए कि निर्गुण ब्रह्म किस देश का निवासी है ? यहाँ 'देश' का प्रश्न केवल भौगोलिक नहीं, बल्कि अस्तित्वगत है. वे जानना चाहती हैं कि जो सत्ता सर्वथा निराकार, निर्गुण और अमूर्त कही जाती है, उसका कोई ठोस परिचय कैसे संभव है. आगे वे कहती हैं - हम सचमुच कसम खाकर पूछ रही हैं, यह हँसी-मज़ाक नहीं है. यह कथन व्यंग्यात्मक भी है और चुनौतीपूर्ण भी, क्योंकि वास्तव में वे उद्धव के ज्ञान पर ही प्रश्नचिह्न लगा रही हैं.

गोपियाँ आगे निर्गुण ब्रह्म के पारिवारिक संबंधों के बारे में पूछती हैं - उसका पिता कौन है, माता कौन है, उसकी स्त्री कौन है और दासी कौन ? इन प्रश्नों के माध्यम से वे यह

स्पष्ट करना चाहती हैं कि मानवीय अनुभूति और संबंधों से परे किसी सत्ता को वे स्वीकार नहीं कर सकतीं. उनके लिए प्रेम, संबंध और साकारता ही ईश्वर की सच्ची पहचान है.

वे आगे पूछती हैं - उसका रंग कैसा है, वेश कैसा है और वह किस रस में डूबा रहता है ? यहाँ 'रस' शब्द विशेष रूप से महत्वपूर्ण है. भारतीय काव्यशास्त्र में रस अनुभूति का मूल है, और गोपियों के लिए कृष्ण 'श्रृंगार रस' के साकार प्रतीक हैं. निर्गुण ब्रह्म, जो किसी रस में बँधा नहीं है, उन्हें नीरस और शुष्क लगता है.

अंत में गोपियाँ चेतावनी के स्वर में कहती हैं कि हे उद्धव, अब अधिक उपदेश मत दो, नहीं तो तुम्हें अपनी करनी का फल भी भोगना पड़ेगा. यह कथन उनके तीखे व्यंग्य और आत्मविश्वास को दर्शाता है. पद के अंत में कवि सूरदास कहते हैं कि गोपियों की ऐसी वाणी सुनकर उद्धव ठगे से रह गए, उनकी सारी बुद्धि नष्ट-सी हो गई और वे मौन रह गए. यहाँ निर्गुण ज्ञान पर प्रेम की विजय दिखाई गई है.

साहित्यिक सौंदर्य : इस पद में भक्ति काव्य की मधुरता, वात्सल्य और श्रृंगार रस का अद्‌भुत समन्वय है. गोपियों की भाषा ब्रजभाषा की स्वाभाविकता और चुटीलेपन से युक्त है. व्यंग्य, प्रश्नोत्तर शैली और लोक-जीवन के उदाहरणों के माध्यम से दार्शनिक विषय को सहज बना दिया गया है.

अलंकारों की दृष्टि से यहाँ व्यंग्य अलंकार, प्रश्नालंकार और अनुप्रास की छटा देखने को मिलती है. भाव-पक्ष इतना सशक्त है कि दर्शन भी भावुक संवाद में बदल जाता है. गोपियाँ तर्क से नहीं, प्रेम से जीतती हैं - यही इस पद का केन्द्रीय सौंदर्य है.

समग्रतः यह पद निर्गुण बनाम सगुण भक्ति के द्वंद्व में सगुण, प्रेममय भक्ति की श्रेष्ठता को स्थापित करता है और सूरदास की काव्य-प्रतिभा, मानवीय संवेदना तथा लोक-जीवन से जुड़े दर्शन को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करता है.

8.5.3 भ्रमरगीत सार

ऊधौ जोग जोग हम नाहीं.

अबला सार-ज्ञान कह जानें, कैसें ध्यान धराहीं.
तेई मूँदन नैन कहत हौ, हरि मूरति जिन माहीं
ऐसी कथा कपट की मधुकर, हमतैं सुनी न जाहीं.
स्रवन चीरि सिर जटा बधावहु, ये दुख कौन समाहीं. चं
दन तजि अंग भस्म बतावत, बिरह-अनल अति दाहीं.
जोगी भ्रमत जाहि लागि भूले, सो तौ है अप माहीं.
सूर स्याम तैं न्यारी न पल-छिन, ज्योयों घट तैं परछाहीं.

संदर्भ-प्रसंग : प्रस्तुत पद सूरदास के भ्रमरगीत प्रसंग से लिया गया है. श्रीकृष्ण के मथुरा-गमन के पश्चात् उद्धव ब्रज में आकर गोपियों को योग, ज्ञान और निर्गुण साधना का उपदेश देते हैं. उद्धव का उद्देश्य गोपियों को विरह - दुःख से मुक्त करना है, परंतु गोपियाँ सगुण, साकार और प्रेमप्रधान भक्ति की साधिकाएँ हैं. उनके लिए कृष्ण कोई अमूर्त तत्त्व नहीं, बल्कि सजीव, स्नेहिल और सौंदर्यपूर्ण प्रियतम हैं. इसलिए वे उद्धव के योग-ज्ञान को न केवल अस्वीकार करती हैं, बल्कि उसे अपने अनुभव के प्रतिकूल भी मानती हैं. इसी भावभूमि में गोपियाँ स्पष्ट शब्दों में कहती हैं कि योग उनके लित उपयुक्त मार्ग नहीं है.

व्याख्या : गोपियाँ उद्धव से कहती हैं - "हे उद्धव ! योग हमारे बस की बात नहीं है." वे स्वयं को 'अबला' कहकर अपनी सामाजिक और भावनात्मक स्थिति को सामने रखती

हैं. वे कहती हैं कि सूक्ष्म सार-ज्ञान को वे कैसे जानें और ध्यान कैसे लगाएँ ? यह कथन उनकी अज्ञानता की स्वीकृति नहीं, बल्कि प्रेममार्ग की स्वाभाविकता का उद्‌धोष है.

वे आगे उद्धव की उस योग-साधना पर व्यंग्य करती हैं जिसमें आँख्ये मूंदकर ध्यान करने की बात कही जाती है. गोपियाँ कहती हैं कि तुम हमें आँख्ये मूँदने को कहते हो, जबकि हरि की मूर्ति हमारी आँखों में बसी है. उनके लिए कृष्ण का ध्यान किसी साधना से नहीं, बल्कि स्वाभाविक प्रेम से होता है.

गोपियाँ योग-ज्ञान को 'कपट की कथा' कहती हैं और मधुमक्ख्री (भ्रमर) के रूप में उद्धव को संबोधित करते हुए कहती हैं कि ऐसी बातें उनसे सुनी नहीं जातीं. यहाँ उनका आक्रोश और प्रेमजन्य असहिष्णुता प्रकट होती है.

वे आगे योगियों के बाह्य आचरण की ओर संकेत करती हैं - कान फाड़ना, सिर पर जटा बाँधना, शरीर पर भस्म लगाना और चंदन का त्याग करना. गोपियाँ कहती हैं कि ये सब दुःख कौन सह सकता है ? उनके लिए विरह की अग्नि ही पहले से अत्यंत दाहक है; ऐसे में योग के कष्ट ओर असह्य हैं.

अंत में वे कहती हैं कि जो योगी इधर-उधर भटकते हैं, वे वास्तव में स्वयं में ही भूले हुए हैं. सच्चा योग तो आत्मिक तकत्व है. गोपियाँ अपनी स्थिति स्पष्ट करती हैं - वे श्रीकृष्ण से एक पल-क्षण के लिए भी अलग नहीं हैं, जैसे घट (देह) से परछाईं कभी अलग नहीं होती. यह उपमा उनके अद्वैत प्रेम को व्यक्त करती है.

साहित्यिक सौंदर्य : इस पद का साहित्यिक सौंदर्य भाव-पक्ष की सघनता में निहित है. गोपियों का कथन सीधा, सहज और अनुभूतिजन्य है. उन्होंने दार्शनिक योग-साधना को नकारते हुए प्रेम को सर्वोच्च साधना के रूप में प्रतिष्ठित किया है.

भाषा ब्रजभाषा की माधुर्यपूर्ण और प्रवाहमयी है. अलंकारों में व्यंग्य, उपमा, यमक और प्रतीक का सुंदर प्रयोग हुआ है. 'घट और परछाई' की उपमा प्रेम की अभिन्नता को अत्यंत सटीक रूप में प्रकट करती है.

रस की दृष्टि से यहाँ विरह-श्रृंगार और भक्ति रस का उत्कर्ष है. गोपियों का प्रेम इतना तीव्र है कि वही उनका ध्यान, वही उनका योग और वही उनका ज्ञान बन गया है.

समग्रत : यह पद निर्गुण योग की अपेक्षा सगुण, प्रेमप्रधान भक्ति की श्रेष्ठता को स्थापित करता है. सूरदास यह दिखाते हैं कि प्रेम में डूबा हृदय किसी साधना-विधि का मोहताज नहीं होता-वही सच्चा योग है, वही परम ज्ञान.

8.5.4 भ्रमरगीत सार

काहे को गोपीनाथ कहावत ?
जे पै मधुकर कहत हमारे गोकुल काहे न आवत ?
सपने की पहिचानि जानि कै हमहि कलंक लगावत.
जे पै स्याम कूबरी रीझे सो किन नाम धरावत ?
ज्यों गतराज काज के औसर औरो दसन दिखात.
कहत सुनन को हम हैं ऊधो सूर अनत बिरमावत.

संदर्भ-प्रसंग : प्रस्तुत पद सूरदास के भ्रमरगीत प्रसंग का है. श्रीकृष्ण के मथुरा-गमन के बाद उद्धव ब्रज में आकर गोपियों को निर्गुण भक्ति और ज्ञान-योग का उपदेश देते हैं. परंतु गोपियाँ अपने सगुण, साकार और प्रेममय कृष्ण के विरह में तड़प रही हैं. मथुरा में कृष्ण का कुब्जा पर अनुराग, ब्रज में बैठी गोपियों के मन में ईर्ष्या, वेदना और आक्रोश

को जन्म देता है. इसी भावभूमि में गोपियाँ उद्धव से तीखे प्रश्न करती हैं और कृष्ण की कथित लीला पर व्यंग्य करती हैं. यह पद गोपियों के प्रेम में उत्पन्न मान, ईर्ष्या और विरह - तीनों भावों का सघन चित्र प्रस्तुत करता है.

व्याख्या : गोपियाँ प्रश्न करती हैं - "हे उद्धव ! कृष्ण अपने को गोपीनाथ क्यों कहलवाते हैं ?" यह प्रश्न मात्र नाम पर नहीं, बल्कि अधिकार और निष्ठा पर है. गोपियाँ कहना चाहती हैं कि यदि कृष्ण वास्तव में हमारे स्वामी हैं, हमारे प्रेम को स्वीकार करते हैं, तो वे गोकुल लौट क्यों नहीं आते ? 'गोपीनाथ' नाम धारण करना और गोकुल न आना - इन दोनों के बीच का विरोध उन्हें असह्य लगता है.

वे आगे कहती हैं कि कृष्ण और हमारा संबंध तो स्वप्न जैसा है - क्षणिक, अस्थायी. फिर भी उसी स्वप्न-समान संबंध को आधार बनाकर वे हमें 'गोपीनाथ' नाम से कलंकित कर रहे हैं. यहाँ गोपियों की पीड़ा सामाजिक लज्जा से जुड़ जाती है. ब्रज में उनका पूरा जीवन कृष्ण-प्रेम से जुड़ा है, परंतु कृष्ण का दूर रहना उनके प्रेम को लोक-दृष्टि में प्रश्नांकित कर देता है.

गोपियाँ आगे व्यंग्य करती हैं - यदि कृष्ण सचमुच कुब्जा पर ही मोहित हैं, तो वे स्वयं को 'कूबरीनाथ' क्यों नहीं कहलवाते ? यह कथन तीखे व्यंग्य और आक्रोश से भरा है. इसमें प्रेम में ठुकराए जाने की कसक, स्त्री-मन की ईर्ष्या और अधिकार-बोध - तीनों स्पष्ट दिखाई देते हैं.

इसके बाद गोपियाँ तक अत्यंत प्रभावशाली उपमा देती हैं - यह तो उसी हाथी की तरह है, जिसके खाने के दाँत और होते हैं और दिखेने के दाँत और. अर्थात् कृष्ण की कथनी और करनी में अंतर है. कहने-सुनने के लिए वे गोपियों को अपनी प्रेयसी बताते हैं, पर वास्तविक प्रेम कहीं और प्रकट करते हैं. यह उपमा लोक-जीवन से ली गई है और गोपियों के भाव को अत्यंत सजीव बना देती है.

अंत में गोपियाँ कहती हैं - हे उद्धव ! सुनने-सुनाने के लिए तो हम ही उनकी प्रियतमा हैं, पर वे ठहरते कहीं और हैं. यहाँ उनका विरह करुणा में बदल जाता है. सूरदास कहते हैं कि इस प्रकार की बातें कहकर गोपियाँ विराम लेती हैं, मानो उनके शब्दों में अपार पीड़ा समाई हो.

साहित्यिक सौंदर्य : इस पद का साहित्यिक सौंदर्य भावनात्मक गहनता और व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति में निहित है. गोपियों का प्रेम यहाँ आदर्शीकृत नहीं, बल्कि मानवीय रूप में प्रस्तुत हुआ है - ईर्ष्या, मान, क्रोध और व्यथा से युक्त. यही सूरदास की काव्य-विशेषता है कि वे भक्ति को मानव-हृदय की समस्त जटिलताओं के साथ प्रस्तुत करते हैं.

भाषा ब्रजभाषा की स्वाभाविकता और माधुर्य से परिपूर्ण है. अलंकारों में प्रश्नालंकार, व्यंग्य अलंकार और उपमा का सटीक प्रयोग हुआ है. 'हाथी के दाँत' वाली उपमा अत्यंत सशक्त और व्यंजक है.

रस की दृष्टि से इस पद में विरह-श्रृंगार और करुण रस की प्रधानता है. गोपियों का प्रेम इतना गहरा है कि उसमें शिकायत भी अधिकार का ही रूप ले लेती है.

समग्रतः यह पद सगुण भक्ति की मानवीय संवेदना को उजागर करता है. सूरदास यह स्थापित करते हैं कि सच्चा प्रेम प्रश्न करता है, रूठता है, व्यंग्य करता है - परंतु अंततः उसी में ईश्वर का साक्षात् अनुभव निहित होता है.

निम्नलिखित पदों की संदर्भ सहित व्याख्या करें-

- आयो घोष बड़ो व्योपारी. _____ प्रभु साहुहि आनि दिखावौ.
- निर्गुन कौन देस को बासी ? _____ सूर सबै मति नासी.
- ऊधौ जोग जोग हम नाहीं. _____ ज्यों घट तैं परछाहीं.
- काहे को गोपीनाथ कहावत ? _____ ऊधो सूर अनत बिरमावत.

8.6 भ्रमरगीत का मूल्यांकन

भ्रमरगीत केवल विरह-काव्य नहीं, बल्कि सगुण भक्ति, लोक-जीवन, प्रेमानुभूति और दार्शनिक चिंतन का सशक्त समन्वय है. उद्धव-गोपियों के संवाद के माध्यम से यहाँ ज्ञान, योग और निर्गुण साधना के समक्ष प्रेम, रस और अनुभूति की विजय प्रतिपादित हुई है. गोपियों की वाणी में व्यंग्य, उपालम्भ, करुणा और सहृदयता तक साथ विद्यमान हैं. भ्रमरगीत भक्ति आंदोलन में प्रेममार्ग की महत्ता को कलात्मक और मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित करता है.

8.6.1 भ्रमरगीत का कथानक

सूरदास कृत भ्रमरगीत हिन्दी भक्ति काव्य परम्परा का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और भावप्रधान अंश है. यह सूरसागर का वह भाग है जिसमें भगवान श्रीकृष्ण के मथुरा गमन के बाद ब्रज में व्याप्त विरह, वेदना और प्रेम की अनुभूति का सजीव चित्रण मिलता है. भ्रमरगीत का कथावस्तु मुख्यतः गोपियों और उद्धव के संवाद पर आधारित है, जिसमें सगुण भक्ति और निर्गुण ज्ञान का वैचारिक संघर्ष स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आता है.

कृष्ण के मथुरा चले जाने के पश्चात ब्रज सूना हो जाता है. राधा सहित समस्त गोपियाँ कृष्ण-वियोग में अत्यन्त व्याकुल हैं. उनका जीवन, चेतना और अस्तित्व मानो कृष्ण के बिना निरर्थक हो गया है. ऐसे समय में कृष्ण अपने परम मित्र उद्धव को ब्रज भेजते हैं, ताकि वे गोपियों को ज्ञान और योग का उपदेश देकर उनके दुःख को शांत कर सकें. उद्धव ब्रज पहुँचकर गोपियों को समझाते हैं कि कृष्ण केवल एक व्यक्ति नहीं, बल्कि सर्वव्यापक, निर्गुण और निराकार ब्रह्म हैं. अतः उनके विरह में दुःखी होने के स्थान पर उन्हें निर्गुण भक्ति और योग के मार्ग पर चलना चाहिए.

उद्धव के इस ज्ञानोपदेश को गोपियाँ सहर्ष स्वीकार नहीं करतीं. वे अपने तर्कों, भावनात्मक उद्‌गारों और व्यंग्य के माध्यम से उद्धव के निर्गुण दर्शन का विरोध करती हैं. उनके लिए कृष्ण कोई अमूर्त सत्ता नहीं, बल्कि सजीव, साकार और प्रेममय प्रियतम हैं, जिनके साथ उन्होंने हँसना-रोना, खेलना और जीवन जीना सीखा है. गोपियाँ स्पष्ट रूप से कहती हैं कि जो प्रेम उन्होंने कृष्ण से पाया है, वह किसी योग या ज्ञान से कहीं अधिक श्रेष्ठ और सार्थक है.

भ्रमरगीत का एक प्रमु और प्रतीकात्मक प्रसंग 'भ्रमर' अर्थात भौरे से संवाद है. गोपियाँ भ्रमर को कृष्ण का दूत मानकर उससे बातें करती हैं, उसे उलाहना देती हैं और अपने मन की पीड़ा उसके माध्यम से व्यक्त करती हैं. वे भ्रमर पर यह आरोप भी लगाती हैं कि वह भी कृष्ण की भाँति चंचल और स्वार्थी है. यह प्रतीक गोपियों के आक्रोश, व्यथा और प्रेम की गहराई को अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है.

कथावस्तु के क्रम में गोपियों का चरित्र अत्यन्त सशक्त रूप में उभरता है. वे केवल विरहिणी नारी नहीं हैं, बल्कि आत्मसम्मानी, विवेकशील और अपने प्रेम-दर्शन में दृढ़ हैं. वे उद्धव जैसे ज्ञानी पुरुष के तर्कों का खण्डन करती हैं और प्रेम को ही सच्चा योग एवं साधना घोषित करती हैं. अंततः उद्धव भी गोपियों की प्रेम-भक्ति की महत्ता को स्वीकार करने लगते हैं.

इस प्रकार भ्रमरगीत की कथावस्तु कृष्ण-वियोग, गोपियों की अनन्य प्रेम-भक्ति, उद्धव के निर्गुण ज्ञान और दोनों के मध्य संवादात्मक संघर्ष पर आधारित है. यह कथावस्तु भक्ति काव्य को केवल आध्यात्मिक ही नहीं, बल्कि मानवीय संवेदना और गहन भावात्मकता से भी समृद्ध करती है.

8.6.2 भ्रमरगीत : चरित्र विधान

सूरदास कृत भ्रमरगीत में चरित्र-विधान अत्यन्त सशक्त, भावप्रधान और प्रतीकात्मक है. सीमित पात्रों के माध्यम से कवि ने भक्ति, प्रेम, दर्शन और मानवीय संवेदना के गहन पक्षों को उजागर किया है. इस काव्यांश के प्रमुख पात्र हैं - गोपियाँ, उद्धव, श्रीकृष्ण (अप्रत्यक्ष रूप में) तथा भ्रमर. इन सभी पात्रों का चरित्र-विधान भावात्मक संवाद और प्रतीकात्मक संकेतों के माध्यम से सम्पन्न हुआ है.

गोपियाँ भ्रमरगीत की केन्द्रीय पात्र हैं. उनका चरित्र केवल विरहिणी नारी का नहीं, बल्कि आत्मसम्मानी, तर्कशील और दृढ़ प्रेम-भावना से युक्त साधिका का है. कृष्ण-वियोग में वे अत्यन्त व्याकुल हैं, किन्तु उनकी व्याकुलता करुण विलाप मात्र नहीं, बल्कि चेतन, सशक्त और बौद्धिक प्रतिवाद का रूप ले लेती है. वे उद्धव के निर्गुण ज्ञान को अस्वीकार करती हैं और प्रेम को सर्वोच्च साधना सिद्ध करती हैं. गोपियों का प्रेम अनन्य, निष्काम और आत्मसमर्पण से युक्त है, जो उन्हें सामान्य नायिका से ऊपर उठाकर आध्यात्मिक ऊँचाई प्रदान करता है. उनके कथनों में व्यंग्य, कटाक्ष और भावनात्मक तीव्रता उनके चरित्र को जीवंत बना देती है.

उद्धव का चरित्र निर्गुण ब्रह्म, ज्ञान और योग का प्रतिनिधि है. वे कृष्ण के सखा और ज्ञानी पुरुष हैं, जो गोपियों को तर्क और उपदेश के माध्यम से विरह-दुःख से मुक्त करना चाहते हैं. प्रारम्भ में उद्धव गोपियों के प्रेम को अज्ञानजन्य आसक्ति मानते हैं, किन्तु गोपियों के प्रेम-तर्क और भावनात्मक दृढ़ता के सामने उनका ज्ञान प्रभावहीन सिद्ध होता है. धीरे-धीरे उद्धव का अहं और बौद्धिक गर्व टूटता है और वे गोपियों की प्रेम-भक्ति की श्रेष्ठता स्वीकार करने लगते हैं. इस प्रकार उद्धव का चरित्र परिवर्तनशील और शिक्षाप्रद बन जाता है. श्रीकृष्ण भ्रमरगीत में प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित नहीं हैं, फिर भी सम्पूर्ण काव्य उन्हीं के इर्द-गिर्द केन्द्रित है. वे गोपियों के लिए प्रियतम, जीवन-आधार और आराध्य हैं. उद्धव के माध्यम से उनका निर्गुण, ब्रह्मस्वरूप सामने आता है, जबकि गोपियों के हृदय में वे सगुण, साकार और प्रेममय रूप में विद्यमान हैं. कृष्ण का चरित्र यहाँ प्रेम और भक्ति का आदर्श बनकर उभरता है.

भ्रमर एक प्रतीकात्मक पात्र है. वह कृष्ण का दूत और पुरुष-प्रवृत्ति का प्रतीक है. गोपियाँ उससे संवाद कर अपनी पीड़ा, आक्रोश और व्यंग्य को व्यक्त करती हैं. भ्रमर का प्रयोग सूरदास की कल्पनाशीलता और प्रतीकात्मक चरित्र-विधान का उत्कृष्ट उदाहरण है.

इस प्रकार भ्रमरगीत का चरित्र-विधान सीमित पात्रों में भी गहन भाव, दार्शनिक द्वन्द्व और मानवीय संवेदना को प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत करता है.

8.6.3 भ्रमरगीत : ज्ञान पर प्रेम की विजय का काव्य

सूरदास का भ्रमरगीत हिन्दी भक्ति काव्य में उस काव्यात्मक विचारधारा का प्रतिनिधि ग्रंथ है, जिसमें शुष्क, तर्कप्रधान ज्ञान पर सहज, अनुभूत और आत्मिक प्रेम की स्पष्ट विजय स्थापित होती है. यह काव्य न केवल कृष्ण-वियोग की कथा प्रस्तुत करता है, बल्कि भक्ति-दर्शन का भी सशक्त प्रतिपादन करता है. यहाँ उद्धव और गोपियों के संवाद के माध्यम से सगुण प्रेम-भक्ति और निर्गुण ज्ञान के बीच वैचारिक संघर्ष का चित्रण किया गया है.

उद्धव ज्ञान और योग के प्रतिनिधि हैं. वे ब्रज आकर गोपियों को उपदेश देते हैं कि श्रीकृष्ण निर्गुण, निराकार और सर्वव्यापक ब्रह्म हैं; अतः उनके साकार रूप से आसक्ति छोड़कर निर्गुण भक्ति और योग का मार्ग अपनाना चाहिए. उद्धव का यह ज्ञान शास्त्रीय, बौद्धिक और तर्कप्रधान है, जिसमें भावात्मक ऊष्मा का अभाव है. गोपियों को यह ज्ञान न तो संतोष देता है और न ही उनके विरह-दुःख को शांत कर पाता है.

इसके विपरीत गोपियाँ प्रेम की मूर्त प्रतीक हैं. उनका प्रेम अनन्य, निष्काम और आत्मसमर्पण से युक्त है. वे अपने अनुभव के आधार पर ज्ञान का विरोध करती हैं और स्पष्ट रूप से कहती हैं-

निर्गुन कौन देश को बासी ?
मधुकर ! हँसि समुझाई, सौंह दै बूझति, साँच न हाँसी.

इस पद में गोपियाँ व्यक्त करती हैं कि जो निर्गुण ज्ञान केवल तर्क और शास्त्र पर आधारित है, वह हृदय को संतुष्ट नहीं कर सकता. ज्ञान शुष्क है; प्रेम ही जीवन-प्राण और अनुभूति का स्रोत है.

फिर गोपियाँ अपने प्रेम की श्रेष्ठता स्पष्ट करती हैं -

"सबसे ऊँची प्रेम सगाई.
दुर्योधन की मेवा त्यागी, साग विदुर घर पाई."

यहाँ उन्होंने उदाहरण के माध्यम से बताया कि प्रेम में त्याग और समर्पण सर्वोच्च गुण हैं. उनका प्रेम पूर्णतः एकनिष्ठ और भावनात्मक है-

"ऊधौ ! बिरहौ प्रेमु करै.
ज्यों बिनु पुट पट गहै न रंगसह, पुट गहे रसहि परै."

इस पद के माध्यम से स्पष्ट होता है कि गोपियों के लिए प्रेम ही सच्चा योग है, विरह ही तपस्या और निरंतर स्मरण ही साधना है.

भूर-प्रसंग में गोपियाँ व्यंग्य और उपालम्भ के साथ अपने प्रेम की गहराई प्रकट करती हैं. यह दिखाता है कि प्रेम की भाषा केवल हृदय और अनुभूति के माध्यम से समझी जा सकती है, बौद्धिक ज्ञान से नहीं.

अंततः गोपियों के प्रेम की तीव्रता और दृढ़ता उद्धव को भी प्रभावित करती है. उनका ज्ञान-गर्व टूटता है और वे स्वीकार करते हैं कि गोपियों का प्रेम साधारण आसक्ति नहीं, बल्कि उच्चतम आध्यात्मिक अवस्था है. वे स्पष्ट कहते हैं -

जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहे ।
मूरि के पातिन के बदलै, कौ मुक्ताहल देहै ॥

निष्कर्षतः भ्रमरगीत यह सिद्ध करता है कि जहाँ ज्ञान तर्क और अहं से बँधा हो सकता है, वहीं प्रेम सहज, अनुभूत और मोक्षदायी होता है. सूरदास ने प्रेम को भक्ति का सर्वोच्च रूप मानकर हिन्दी काव्य को गहरी भावात्मक और दार्शनिक ऊँचाई प्रदान की है.

8.6.4 भ्रमरगीत में प्रकृति

सूरदास का भ्रमरगीत केवल विरह और प्रेम का काव्य नहीं है, बल्कि इसमें प्रकृति तक सजीव, संवेदनशील और भावनात्मक सत्ता के रूप में उपस्थित है. ब्रज की प्रकृति गोपियों के जीवन और अंतर्मन से इतनी गहराई से जुड़ी हुई है कि वह उनके दुःख-सुख, आशा-निराशा और प्रेम-विरह की सहचरी बन जाती है. भ्रमरगीत में प्रकृति केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि कथा और भावों की सक्रिय सहभागी है.

कृष्ण के मथुरा गमन के बाद ब्रज की समस्त प्रकृति शोकाकुल प्रतीत होती है. यमुना की धारा मंद पड़ जाती है, कुंज-गलियाँ सूनी हो जाती हैं, वृक्षों के पत्ते मुरझाए हुए लगते हैं और पुष्पों की सुगंध में भी विषाद घुल जाता है. यह गोपियों के विरह-वेदन को और अधिक तीव्र बनाता है. इस भाव को सूरदास ने निम्न पद में व्यक्त किया है-

"देखियत कालिंदी अति कारी.

अहौ पथिक कहियौ उन हरि सौं, भयौ बिरह जुर जारी".

यहाँ कालिंदी (यमुना) की 'अति कारी' छवि ब्रज की शोकाकुल स्थिति और विरह की गहनता को दर्शाती है. नदी की मंद धारा और अंधकार का वातावरण गोपियों के दुःख को और अधिक तीव्र बनाता है.

भ्रमर के माध्यम से प्रकृति संवाद का साधन बनती है. भ्रमर केवल कीट नहीं, बल्कि कृष्ण का दूत और गोपियों के आक्रोश का लक्ष्य है. गोपियाँ उसे उपालम्भ देती हैं और उसकी चंचलता को प्रकृति की अस्थिरता से जोड़ती हैं.

प्रकृति गोपियों की सखी और साक्षी दोनों है. सूरदास ने चंद्रमा, पवन और वनस्थली को उनके भावों के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है:

"हमारे माई मोरवा बैर परे ।

घन गरजत बरज्यौ नहिं मानत, त्यौं त्यौं रटत खरे."

यह पद बताता है कि तूफ़ान और गरजते बादल भी गोपियों के विरह में सहभागी हैं. प्रकृति का यह मानवीकरण उनके दुःख की तीव्रता को बढ़ाता है.

"मधुबन तुम क्यों रहत हरे.

बिरह बियोग स्याम सुंदर के ठाढ़े क्यों न जरे."

यहाँ मधुबन का हरा-भरा दृश्य विरह की स्थिति में निष्प्रभावी प्रतीत होता है, जो गोपियों के मनोभाव के विपरीत है.

"सखी री चातक मोहिं जियावत.

जैसेंहि रैनि रटति हौं पिय पिय, तैसैंहि वह पुनि गावत".

चातक पक्षी की प्रतीकात्मकता गोपियों के प्रतीक्षा और निरंतर स्मरण को दर्शाती है.

"कोकिल हरि कौ बोल सुनाउ ।

मधुबन तैं उपटारि स्याम कौं, इहिं ब्रज कौं लै आउ."

कोकिल का मधुर बोल कृष्ण की याद दिलाता है और प्राकृतिक आवाजें गोपियों के प्रेम और विरह में सामंजस्य स्थापित करती हैं.

सूरदास की प्रकृति मानवीकरण की उत्कृष्ट मिसाल है. प्रत्येक प्राकृतिक तत्व-कालिंदी, भ्रमर, कोकिल, पवन और वनस्थली - गोपी भावनाओं के प्रतीक बनकर प्रेम-विरह की अनुभूति को सघन बनाता है. इस प्रकार भ्रमरगीत में प्रकृति प्रेम और भक्ति की अभिव्यक्ति की तक सशक्त काव्यात्मक शक्ति के रूप में उभरती है.

8.6.5 भ्रमरगीत में सहृदयता एवं वाग्विदग्धता

सूरदास का भ्रमरगीत भक्तिकालीन साहित्य की एक अनुपम कृति है, जिसमें गोपियों का प्रेम केवल भावनात्मक आवेग नहीं, बल्कि गहन सहृदयता और तीव्र वाग्विदग्धता से युक्त दिखाई देता है. कृष्ण के मथुरा चले जाने के बाद उद्धव ब्रज में निर्गुण ब्रह्म और योग का संदेश लेकर आते हैं. इसी प्रसंग में गोपियों की सहृदय चेतना और उनकी वाणी की चतुरता पूर्णतः उभरकर सामने आती है.

सहृदयता का मूल अर्थ है - अन्य के भावों को गहराई से समझने और अनुभव करने की क्षमता. भ्रमरगीत की गोपियाँ अत्यंत सहृदया हैं. वे उद्धव के ज्ञान को समझती हैं, पर उसे अपने प्रेमानुभव से ही परखती हैं. उनका प्रेम स्वार्थरहित है - वे कृष्ण से शिकायत करती हैं, फिर भी उनके कुशल-मंगल की कामना करती हैं -

"ऊधौ! मन न भए दस बीस.
एक हुतो सो गयो स्याम संग, को अवराधै ईस."

यह पद गोपियों की सहृदयता का प्रमाण है, जहाँ वे अपने एकमात्र मन के कृष्ण के साथ चले जाने की पीड़ा व्यक्त करती हैं, किंतु इसमें कोई द्वेष नहीं, केवल प्रेमजन्य वेदना है. गोपियों की सहृदयता उनके करुण भाव में भी व्यक्त होती है. वे कृष्ण को दोषी ठहराते हुए भी उन्हें ईश्वर मानकर स्वीकार करती हैं. उनका प्रेम व्यापक और उदार है - यही सहृदयता भक्ति को मानवीय ऊँचाई प्रदान करती है.

इसके साथ ही भ्रमरगीत में **वाग्विदग्धता** का अत्यंत सशक्त रूप देखने को मिलता है. वाग्विदग्धता का अर्थ है **बोलने या लिखने की चतुराई भरी, प्रभावशाली और तीक्ष्ण कला, जिसमें व्यक्ति** अपनी बात को व्यंग्य, तर्क और गहराई से इस तरह कहता है कि सामने वाला निरुत्तर हो जाए, जैसा कि सूरदास के पदों में गोपियों के संवाद में दिखता है; यह वाक्चाटुता या वाङ्मतुर्य के समान है.

गोपियों की वाणी व्यंग्य, श्लेष और उपालम्भ से युक्त है. वे उद्धव के शुष्क ज्ञान का उत्तर तीखे व्यंग्य से देती हैं -

"उर में माखन-चोर गड़े.
अब कैसेहू निकसत नहिं ऊधो! तिरछे है जु अड़े."

यहाँ गोपियाँ ज्ञान और प्रेम के अंतर को अत्यंत चतुर वाणी में स्पष्ट करती हैं. उनकी दृष्टि में वह ज्ञान व्यर्थ है, जिसमें प्रेम का स्पर्श न हो.

भ्रमर को संबोधित पदों में गोपियों की वाग्विदग्धता अपने चरम पर पहुँच जाती है -

काहे को रोकत मारग सूधो ?
सुनहु मधुप ! निर्गुन-कंटक तें राजपंथ क्यों रूधो ?"

यह पद वाणी की तीक्ष्णता, व्यंग्य और भावनात्मक चोट-तीनों का उत्कृष्ट उदाहरण है. भ्रमर को 'कपटी' कहकर वे वास्तव में कृष्ण के व्यवहार पर कटाक्ष करती हैं.

"लरिकाई को प्रेम, कहौ अलि, कैसे करिकै छूटत ?
कहा कहौं ब्रजनाथ-चरित अब अंतरगति यों लूटत."

इस प्रकार भ्रमरगीत में **सहृदयता** गोपियों के प्रेम की गहराई को प्रकट करती है और **वाग्विदग्धता** उनकी बौद्धिक तथा काव्यात्मक श्रेष्ठता को. सूरदास ने इन दोनों गुणों के माध्यम से यह सिद्ध किया है कि सच्ची भक्ति में केवल भावुकता नहीं, बल्कि संवेदनशील हृदय और प्रखर वाणी- दोनों का संतुलन आवश्यक है. यही भ्रमरगीत को भक्तिकाव्य की शिर रचना बनाता है.

8.6.6 भ्रमरगीत का दार्शनिक पक्ष/विचार

सूरदास का भ्रमरगीत केवल विरह-काव्य या उपालम्भ-प्रधान रचना नहीं है, बल्कि इसमें गहन दार्शनिक चिंतन निहित है. यह ग्रंथ सगुण भक्ति और निर्गुण ज्ञान के द्वंद्व, प्रेम और योग के विरोध, तथा अनुभूति और तर्क के संघर्ष को काव्यात्मक रूप में प्रस्तुत करता है.

उद्धव और गोपियों का संवाद वस्तुतः भक्ति-दर्शन और ज्ञान-दर्शन के बीच वैचारिक मंथन है, जिसमें अंततः प्रेममूलक भक्ति की विजय होती है.

भ्रमरगीत का मूल दार्शनिक संघर्ष निर्गुण ब्रह्म बनाम सगुण साकार ईश्वर से जुड़ा है. उद्धव निर्गुण ब्रह्म, योग और ज्ञानमार्ग का उपदेश देते हैं, जबकि गोपियाँ साकार कृष्ण-भक्ति की साधिकाएँ हैं. वे निर्गुण को अमूर्त, शुष्क और हृदयहीन मानती हैं -

"निर्गुन कौन देस को बासी ?
मधुकर ! हँसि समुझाय, सौंह दै बूझति, साँच, न हाँसी."

इस पद में गोपियाँ निर्गुण ब्रह्म की अवधारणा पर प्रश्न उठाती हैं. उनका तर्क यह है कि जो अनुभव और प्रेम से परे हो, वह साधना का विषय कैसे बन सकता है. यह दर्शन **अनुभूति-प्रधान** है, जहाँ सत्य का बोध हृदय से होता है, केवल बुद्धि से नहीं.

भ्रमरगीत में ज्ञान और प्रेम के बीच स्पष्ट दार्शनिक भेद स्थापित किया गया है. उद्धव का ज्ञान शास्त्रीय और बौद्धिक है, जबकि गोपियों का प्रेम अनुभवजन्य और आत्मिक है. गोपियाँ ज्ञान की सीमाओं को इंगित करती हैं -

"हमारे हरि हारिल की लकरी.
मन बच क्रम नंदनंद सों उर यह दृढ़ करि पकरी."

यहाँ प्रेम को ज्ञान से श्रेष्ठ ठहराया गया है. सूरदास के अनुसार वह ज्ञान निरर्थक है जिसमें प्रेम और करुणा का समावेश न हो. यह विचार भक्तिकालीन भक्ति-दर्शन का मूल तत्त्व है.

भ्रमरगीत का तक महत्त्वपूर्ण दार्शनिक पक्ष विरह को साधना के रूप में प्रतिष्ठित करना है. गोपियों का विरह केवल भावनात्मक पीड़ा नहीं, बल्कि आत्मा की ईश्वर से दूरी का प्रतीक है. विरह उन्हें कृष्ण-स्मरण में निरंतर बनाए रखता है, जिससे उनकी भक्ति और अधिक गहन हो जाती है -

"निरखत अंक स्यामसुंदर के बारबार लावति छाती.
लोचन-जल कागद-मसि मिलि कै है गई स्याम स्याम की पाती."

यह पद दर्शाता है कि विरह प्रेम को नष्ट नहीं करता, बल्कि उसे और प्रखर करता है. यह विचार आध्यात्मिक साधना के स्तर पर अत्यंत महत्त्वपूर्ण है.

दार्शनिक दृष्टि से भ्रमरगीत में अहंकार-त्याग और आत्म-समर्पण की भावना भी निहित है. गोपियाँ स्वयं को कृष्ण में पूर्णतः विलीन कर देती हैं. उनका 'मैं' समाप्त हो चुका है -

"अब हौं माया-हाथ बिकानौ.
परबस भयौ पसू ज्यों रजु-बस, भज्यौ न श्रीपति रानौ."

यह पद भक्ति-दर्शन के शरणागति सिद्धांत को उजागर करता है, जहाँ साधक अपने अस्तित्व को ईश्वर में अर्पित कर देता है.

अंतत : भ्रमरगीत का दार्शनिक निष्कर्ष यह है कि प्रेममूलक सगुण भक्ति ही जीवन का परम सत्य है. निर्गुण ज्ञान सीमित है, जबकि प्रेम सर्वग्राही और सर्वसुलभ है. सूरदास ने गोपियों के माध्यम से यह प्रतिपादित किया कि ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग हृदय से होकर जाता है, बुद्धि से नहीं. यही कारण है कि भ्रमरगीत भारतीय भक्ति-दर्शन का एक शिखर ग्रंथ बनता है.

8.6.7 भ्रमरगीत : भाषा और शैली

सूरदास का भ्रमरगीत ब्रजभाषा में रचित भक्तिकालीन काव्य की एक उत्कृष्ट कृति है, जिसमें भाषा और शैली का अद्‌भुत सौंदर्य देखा जा सकता है. यह रचना केवल भावनात्मक अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं है, बल्कि भाषा की सरलता, शैली की विविधता और पदों की संगीतात्मकता इसे हिंदी साहित्य में विशिष्ट बनाती है. भ्रमरगीत की भाषा और शैली गोपियों के प्रेम, विरह, व्यंग्य और दर्शन-सभी को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती है.

भ्रमरगीत की भाषा मुख्यतः सहज, सरस और लोकधर्मी ब्रजभाषा है. इसमें तत्सम और तद्‌भव शब्दों का संतुलित प्रयोग हुआ है. भाषा में कृत्रिमता नहीं, बल्कि स्वाभाविक प्रवाह है, जो गोपियों की ग्रामीण चेतना और सहज भावलोक को सजीव बनाता है. उदाहरणस्वरूप, गोपियों की पीड़ा और प्रेम सहज शब्दों में प्रकट होती है-

"ऊधौ ! मन न भत दस बीस.
एक हुतो सो गयो स्याम संग, को अवराधै ईस.

इस पद में भाषा की सरलता और भावों की गहनता स्पष्ट दिखाई देती है. यहाँ शब्दों में अलंकारिक जटिलता नहीं है, फिर भी विरह की तीव्रता और प्रेम का मार्मिक अनुभव प्रकट होता है.

भ्रमरगीत की भाषा में लोक-उपमानों और मुहावरों का सुंदर प्रयोग हुआ है. गोपियाँ अपने दैनिक जीवन के अनुभवों से उपमाएँ ग्रहण करती हैं, जिससे भाषा अधिक प्रभावशाली बनती है. भ्रमर को संबोधित करते हुए उनका व्यंग्य और तीक्ष्णता इस प्रकार प्रकट होती है-

"ऊधो ! कोकिल कूजल कानन.
तुम हमको उपदेस करत हौ भस्म लगावन आनन."

यहाँ 'कूजल' और 'भस्म लगावन' जैसे शब्द गोपियों के आक्रोश और चतुर व्यंग्य को उजागर करते हैं. भाषा की यह तीक्ष्णता उनके प्रेम की गहनता और हृदयस्पर्शी भाव को और अधिक प्रभावी बनाती है.

शैली की दृष्टि से भ्रमरगीत में **उपालम्भ, संवाद और नाटकीय शैली** का प्रमुख प्रयोग है. गोपियाँ उद्धव और भ्रमर से प्रत्यक्ष संवाद करती हैं, जिससे पदों में नाटकीयता आती है और पाठक घटनास्थल का अनुभव करता है. यह संवादात्मक शैली व्यंग्य, श्लेष और वक्रोक्ति से युक्त होती है.

भावात्मक और दार्शनिक शैली का संतुलन भी इस काव्य की विशेषता है. एक ओर गोपियों की करुणा और विरह है, तो दूसरी ओर निर्गुण-सगुण का दार्शनिक विमर्श-

"निर्गुन कौन देस को बासी ?
मधुकर ! हँसि समुझाय, सौंह दै बूझति, साँच, न हाँसी."

यह पद दर्शन को भी सरल और प्रभावी रूप में प्रस्तुत करता है.

भ्रमरगीत की शैली में **संगीतात्मकता** भी उल्लेखनीय है. पद-रचना, लय, तुक और अनुप्रास इसे गेय बनाते हैं. यह शैली आज भी लोकगायन में जीवित है -

बिन गोपाल बैरिनि भई कुंजैं.
तब ये लता लगति अति सीतल, अब भई विषम ज्वाल की पुंजैं."

इस प्रकार, भ्रमरगीत की भाषा और शैली सरलता में गहनता, लोकधर्मिता में दर्शन और भाव में सौंदर्य का अद्वितीय समन्वय प्रस्तुत करती है.

8.6.8 भ्रमरगीत : उद्देश्य

सूरदास का भ्रमरगीत भक्तिकालीन साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण रचना है, जिसका उद्देश्य केवल गोपियों के विरह-विलाप का चित्रण करना नहीं, बल्कि भक्ति, प्रेम और मानवीय संवेदना के गूढ़ तत्त्वों को उद्घाटित करना है. यह काव्य कृष्ण के मथुरा गमन के बाद ब्रज में उत्पन्न स्थिति को आधार बनाकर रचा गया है, जहाँ उद्धव के ज्ञान-उपदेश के माध्यम से भक्ति-दर्शन का मर्म स्पष्ट किया गया है. भ्रमरगीत का उद्देश्य बहुआयामी और दार्शनिक है.

भ्रमरगीत का प्रमुख उद्देश्य प्रेममूलक भक्ति की प्रतिष्ठा है. उद्धव द्वारा प्रस्तुत निर्गुण ब्रह्म और योगमार्ग के विपरीत गोपियों की सगुण, साकार और हृदयगत भक्ति को श्रेष्ठ सिद्ध किया गया है. गोपियाँ यह मानती हैं कि ईश्वर की प्राप्ति ज्ञान और तर्क से नहीं, बल्कि प्रेम और आत्मसमर्पण से होती है. इस प्रकार सूरदास भक्ति को जीवन का सहज और सर्वसुलभ मार्ग सिद्ध करते हैं.

दूसरा महत्त्वपूर्ण उद्देश्य ज्ञान पर प्रेम की विजय को दर्शाना है. उद्धव का शास्त्रीय ज्ञान गोपियों के प्रेमानुभव के सामने असफल हो जाता है. गोपियाँ अपने सहज तर्कों और भावपूर्ण वाणी से यह सिद्ध कर देती हैं कि प्रेम अनुभूति का विषय है, न कि बौद्धिक विवेचन का. इस उद्देश्य के माध्यम से सूरदास यह संदेश देते हैं कि शुष्क ज्ञान मानव-हृदय को संतुष्ट नहीं कर सकता. भ्रमरगीत का एक अन्य उद्देश्य विरह को भक्ति की साधना के रूप में स्थापित करना है. गोपियों का विरह उन्हें निराश नहीं करता, बल्कि कृष्ण-स्मरण में निरंतर बनाए रखता है. विरह उनके प्रेम को और अधिक परिपक्व बनाता है. इस प्रकार सूरदास विरह को आध्यात्मिक उन्नति का माध्यम सिद्ध करते हैं.

सूरदास का उद्देश्य **मानवीय भावनाओं** की गरिमा को प्रतिष्ठित करना भी है. गोपियों का प्रेम ईश्वर के प्रति होते हुए भी पूर्णतः मानवीय है - उसमें शिकायत, व्यंग्य, करुणा और समर्पण सभी भाव विद्यमान हैं. इससे भक्ति को अलौकिक ऊँचाइयों से उतारकर जन-साधारण के जीवन से जोड़ा गया है.

इसके अतिरिक्त, भ्रमरगीत का उद्देश्य **लोकभाषा और लोक-संस्कृति के माध्यम से दर्शन का संप्रेषण** भी है. सूरदास ने ब्रजभाषा में गूढ़ दार्शनिक विचारों को सरल और सहज रूप में प्रस्तुत कर भक्ति को जनमानस तक पहुँचाया.

अंततः भ्रमरगीत का उद्देश्य यह सिद्ध करना है कि सच्ची भक्ति में प्रेम, सहृदयता और आत्मसमर्पण का समन्वय आवश्यक है. यही कारण है कि भ्रमरगीत केवल एक काव्य-रचना नहीं, बल्कि भारतीय भक्ति-दर्शन का सशक्त घोषणापत्र बन जाता है.

8.7 सार बिन्दु

सूरदास का भ्रमरगीत भारतीय भक्तिकाव्य का तक अद्वितीय रत्न है, जो गोपियों के कृष्ण-प्रेम, विरह और भक्ति-दर्शन को सजीव रूप में प्रस्तुत करता है. इसके सार को निम्न बिंदुओं में निष्कर्ष के रूप में समझा जा सकता है:

1. भ्रमरगीत का मुख्य विषय गोपियों का कृष्ण के मथुरा गमन के बाद का विरह और प्रेम है.
2. गोपियाँ सगुण भक्ति की प्रतीक हैं, जबकि उद्धव निर्गुण ब्रह्म और योगमार्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं.
3. प्रेममूलक भक्ति को ज्ञान आधारित निर्गुण मार्ग से श्रेष्ठ दिखाया गया है.

4. विरह गोपियों के प्रेम को तीव्र और परिपक्व बनाता है; इसे भक्ति की साधना के रूप में प्रस्तुत किया गया है.

5. ज्ञान बनाम प्रेम का द्वंद्व रचना का दार्शनिक केंद्र है. गोपियाँ प्रेम की अनुभूति को ज्ञान से ऊपर मानती हैं.

6. प्रकृति गोपियों के भावों की सहचरी है; यमुना, पुष्प, कुंज आदि उनके विरह और प्रेम को दर्शाते हैं.

7. गोपियों में सहृदयता स्पष्ट है - वे कृष्ण के मंगल की कामना करती हैं, अपने दुःख को भूलकर.

8. वाग्विदग्धता का अद्‌भुत प्रयोग - उपालम्भ, श्लेष, व्यंग्य और लोक-उपमाओं के माध्यम से भावों की तीव्रता और हास्यपूर्ण व्यंग्य प्रस्तुत होता है.

9. भाषा सरल और लोकधर्मी है; ब्रजभाषा का प्रवाह, लय और तुक पाठक को भावाभिनिवेश में डुबो देता है.

10. शैली संवादात्मक, नाटकीय और संगीतात्मक है, जो काव्य को गेय और पठनीय बनाती है.

11. रचना का दार्शनिक संदेश यह है कि प्रेम, सहृदयता और आत्मसमर्पण ही सच्ची भक्ति के मूल तत्त्व हैं.

12. भ्रमरगीत में मानवीय भावनाओं का गौरव है - गोपियों का प्रेम हृदय से उत्पन्न, करुणा और समर्पण से युक्त है.

13. सूरदास ने भक्ति, दर्शन और मानवीय अनुभूति को सहज और जन-सुलभ रूप में प्रस्तुत किया.

भ्रमरगीत केवल उपालम्भ या विरह-काव्य नहीं, बल्कि प्रेममूलक भक्ति और जीवन-दर्शन का सशक्त संदेश है. इसमें प्रेम, सहृदयता, आत्मसमर्पण और संगीतात्मक भाषा के माध्यम से भारतीय भक्ति-साहित्य की गहनता और सार्वभौमिकता प्रकट होती है. यही इसे हिंदी साहित्य और भक्ति परंपरा में अमर बनाता है.

8.8 परीक्षा-उपयोगी प्रश्नावली

विस्तृत प्रश्न

1. सूरदास का भ्रमरगीत ज्ञान और प्रेम के दृष्टिकोण से किस प्रकार महत्वपूर्ण है ? इसे अपने उत्तर में उद्धव और गोपियों के संवाद के संदर्भ में समझाइए.

2. भ्रमरगीत में प्रकृति का चित्रण किस प्रकार किया गया है ? विभिन्न पदों के उदाहरण देकर उसकी भूमिका स्पष्ट कीजिए.

3. भ्रमरगीत का दार्शनिक पक्ष और ज्ञान पर प्रेम की विजय कैसे सिद्ध होती है ? अपने उत्तर में पदों का संदर्भ दीजिए.

निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखें

- सूरदास के जीवन-परिचय एवं साहित्यिक योगदान
- 'भ्रमरगीत सार'
- 'निर्गुन कौन देस को बासी ?'
- भ्रमरगीत में ज्ञान और प्रेम के द्वंद्व

- भ्रमरगीत में प्रकृति-चित्रण, सहृदयता एवं वाग्विदग्धता
- भ्रमरगीत के दार्शनिक पक्ष, भाषा-शैली एवं उद्देश्य

लघु प्रश्न

1. भ्रमरगीत का मुख्य उद्देश्य क्या है?
2. गोपियों का प्रेम किस प्रकार का है - स्वार्थयुक्त या निष्काम?
3. भ्रमरगीत की भाषा किस भाषा में है और इसके विशेष गुण क्या हैं?
4. गोपियों के विरह का आध्यात्मिक महत्व क्या है?
5. उद्धव का ज्ञान गोपियों के लिए क्यों निरर्थक सिद्ध होता है?
6. भ्रमरगीत में वाग्विदग्धता का उदाहरण कौन-सा पद है?

MCQ प्रश्न

1. भ्रमरगीत किस कालीन रचना है?

   (a) रीतिकालीन (b) भक्ति कालीन (c) आधुनिक (d) मध्यकालीन

2. गोपियाँ किस प्रकार की भक्ति में विश्वास करती हैं?

   (a) निर्गुण और तर्कप्रधान (b) सगुण और अनुभवजन्य

   (c) केवल योगमार्ग (d) केवल शास्त्रीय ज्ञान

3. “निर्गुन कौन देस को बासी” ? पद किस विचार को प्रकट करता है?

   (a) निर्गुण ज्ञान की श्रेष्ठता

   (b) प्रेम और अनुभव से रहित ज्ञान का निरर्थक होना

   (c) कृष्ण का उपासना आदेश

   (d) योग का प्रचार

4. भ्रमरगीत की भाषा कौन-सी है?

   (a) संस्कृत (b) ब्रजभाषा (c) अवधी (d) खड़ी बोली हिन्दी

5. गोपियों के प्रेम का स्वरूप क्या है?

   (a) स्वार्थपूर्ण (b) आत्मसमर्पणयुक्त (c) अहंकारी (d) ज्ञान आधारित

6. भ्रमर का प्रतीक किस रूप में प्रयोग हुआ है?

   (a) प्रेम और विरह का दूत (b) केवल अलंकार

   (c) शास्त्रीय ज्ञान का द्योतक (d) प्रकृति का सूचक

7. सूरदास ने गोपियों की भाषा में किस शैली का प्रयोग किया है?

   (a) केवल व्यंग्य (b) उपालम्भ, संवाद और व्यंग्य

   (c) केवल दार्शनिक (d) केवल अलंकारिक

8. भ्रमरगीत में प्रकृति का क्या स्थान है?

   (a) पृष्ठभूमि मात्र (b) भावात्मक और संवेदनशील सहभागी

   (c) केवल अलंकारिक (d) ज्ञान का प्रतीक

9. उद्धव और गोपियों का संवाद किस प्रकार का है?

(a) केवल भावात्मक

(b) ज्ञान और प्रेम के बीच वैचारिक संघर्ष

(c) केवल उपदेशात्मक

(d) केवल संगीतात्मक

10. भ्रमरगीत में संगीतात्मकता किस माध्यम से व्यक्त होती है?

(a) अनुप्रास, तुक और लय (b) केवल पद-रचना

(c) केवल अलंकार (d) केवल संवाद

उत्तर

1. (b) भक्ति कालीन
2. (b) सगुण और अनुभवजन्य
3. (b) प्रेम और अनुभव से रहित ज्ञान का निरर्थक होना
4. (b) ब्रजभाषा
5. (b) आत्मसमर्पणयक्त
6. (a) प्रेम और विरह का दूत
7. (b) उपालम्भ, संवाद और व्यंग्य
8. (b) भावात्मक और संवेदनशील सहभागी
9. (b) ज्ञान और प्रेम के बीच वैचारिक संघर्ष
10. (a) अनुप्रास, तुक और लय

8.9 उपयोगी अध्ययन सामग्री

1. सूरदास और भ्रमरगीत, लेख्रक- प्रो. राजकुमार शर्मा, विश्वभारती पब्लिकेशन, नयी दिल्ली
2. सूरदास और उनका भ्रमरगीत, लेक - कल्पना पटेल, अमर पब्लिकेशन, कानपुर
3. हिंदी साहित्य का इतिहास, लेख्रक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
4. https://dn721201.ca.archive.org/0/items/HindiBookSurdasAurBhramargeet/Hindi%20book%DSurdas%20Aur%20Bhramargeet.pdf
5. https://ebooks.inflibnet.ac.in/hinp05/chapter/%E0%A4%A4%BF%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4A7%E0%A4BE%A4%B0%%A4%E0%A4%A4%E0%AA%BE%E0%A4%96%E0%A5%8D%E0%A%AF-2/
6. https://dn721802.ca.archive.org/0/items/HindiSahityaKaltihas.Hind/HindisahityaKaItihash.pdf.
7. https://epustakalay.com/book/61315-sooradas-by-ramchandar-shukla/

इकाई 9 सगुण रामभक्ति काव्य 'श्रीरामचरितमानस' - तुलसीदास

रूपरेखा

9.1 उद्देश्य

9.2 प्रस्तावना

9.3 तुलसीदास का साहित्यिक परिचय

9.4 बालकांड की विषय वस्तु

9.5 मुख्य प्रसंग वर्णन

9.5.1 राम जन्म

9.5.2 विश्वामित्र का राम को मांगना

9.5.3 ताड़का सुबाहु मारीच आदि वध

9.5.4 अहल्या उद्धरण प्रसंग

9.5.5 सीताराम विवाह

9.6 सार बिंदु

9.7 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

9.8 सहायक पाठ्य सामग्री

9.1 उद्देश्य

- तुलसीदास की काव्य-दृष्टि, रामचरितमानस की महत्ता और बालकांड की मुख्य घटनाओं के माध्यम से आदर्श जीवन मूल्यों को समझ पाएंगे.
- रामचरितमानस की रचना-प्रक्रिया और उसके स्रोत (वेद, पुराण, रामायण आदि) के बारे मे जान पाएगे.
- तुलसीदास के स्वान्तः सुखाय लिखने के बावजूद भी यह ग्रंथ जनसाधारण के लिए अत्यंत उपयोगी है यह जान पाएंगे.
- बालकांड की प्रमुख घटनाओं और प्रसंगों का परिचय प्राप्त कर पाएंगे.
- राम के चरित्र (मर्यादा, करुणा, प्रेम, धर्म) तथा सामाजिक-धार्मिक मूल्यों को समझ पाएंगे.

9.2 प्रस्तावना

श्री रामचरितमानस का स्थान हिंदी साहित्य में ही नहीं बल्कि विश्व वाग्मय में अद्वितीय है. इसमें उपयोग किए हुए उत्तम काव्य के लक्षण साहित्य के सभी रसों का अस्वादन कराने वाला एवं काव्यकला की दृष्टि से - 'आदर्श पतिव्रतधर्म, आदर्श भातृधर्म, सर्वोच्च भक्ति, ज्ञान, त्याग, वैराग्य, आदर्श तथा सदाचार दर्शाता है.

सगुण- सकार ईश्वर की आदर्श मानवलीला तथा उनके गुण प्रभाव रहस्य तथा प्रेम के गहन तत्त्व को अत्यंत सरल रोचक एवं ओजस्वी शब्दों में व्यक्त करने वाला कोई दूसरा ग्रंथ न सिर्फ हिंदी भाषा में बल्कि कदाचित किसी अन्य भाषा में पाना भी मुश्किल है. यही कारण है कि समाज के हर वर्ग धनी-दीन, शिक्षित - अशिक्षित, गृहस्थ- सन्यासी , स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध सभी के लिए यह आनंदप्रद एवं ज्ञानप्रद है.

9.3 तुलसीदासः साहित्यिक परिचय

तुलसीदास मध्यकाल के श्रेष्ठ कवि हैं जिनका बचपन घोर दरिद्रता एवं असहाय अवस्था में बिता हिंदी साहित्य में तुलसी दास का नाम शिरमोर्य है वह भारतीय संस्कृति के आदर्श रहे हैं. जननायक के रूप में प्रसिद्ध तुलसीदास द्वारा रचित 12 ग्रंथ प्रमाणिक माने जाते हैं. रामचरितमानस उनकी प्रसिद्धि का मुख्य आधार है भक्ति और जीवन के आदर्शों का सुंदर समन्वय तुलसी की चौपाइयों की पहचान है उनकी रचनाओं में लोक मंगलकारी पक्ष पर अधिक बल देखने को मिलता है उन्होंने अकाल महामारी आदि के साथ-साथ सामंतों की लोलुप प्रवृत्ति का भी वर्णन किया है वे विभिन्न धार्मिक पाखंडो को उद्घाटित करते हुए दैहिक, दैविक, भौतिक, तापों से रहित सर्व सुखद रामराज्य का स्वप्न बुनते हैं. गोस्वामी तुलसीदास मानस में खुद लिखते हैं कि...

"नानापराणनिगभागमसम्मतं यदु रामायणे निगदितं कचिदन्यतोऽपि ।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा- भाषानिबन्धमतिमंजुलमातनोति"

अनेक पुराण, वेद, ओर (तंत्र) शास्त्र से समस्त तथा जो रामायण में वर्णित है और कुछ अन्यत्र से भी उपलब्ध श्री रघुनाथ जी की कथा को तुलसीदास अपने अंतःकरण के सुख के लित अन्यत्र भाषा रचना में विस्तृत करते हैं. तुलसी चित्रकूट में बैठकर मानस के दोहे रचते हैं... वो कितना भी स्वांतः सुखाय लिख रहे हो लेकिन वो लिखा जन मानस के लिये ही गया है.

आज के युग में शब्द और अर्थ के बीच सौंदर्य - प्रतियोगिता की दृष्टि से तुलसी और उनके मानस को बहुत सारे किंतु - परंतु के बावजूद सराहा जाता रहा है. यह भी है कि उन सभी किंतु परंतु का जन्म आधुनिक युग की आलोचना ने ही किया है. विमर्शों ने तो तुलसी और उनके 'मानस' से सबसे ताकतवर लोहा ले रखा है. यह भी दिलचस्प है कि तुलसी की प्रशंसा, समर्थन और विरोध सब की वजह जनपक्षधरता अधिकार और लोकतांत्रिक चेतना के संदर्भ में ही हुई है, जो हमें आगे देखने को मिलेगा. प्रस्तुत इकाई में हम तुलसीदास द्वारा रचित रामचरितमानस के बालकांड के कुछ अंश का अध्ययन करेंगे. तो चलिए अपने मुख्य विषय बालकांड पर आते हैं.

9.4 बालकांड की विषय वस्तुः

रामचरितमानस के सात काण्डों में पहला एवं महत्त्वपूर्णकांड बालकांड है. बालकांड में 58 सर्ग है. इसकी शुरुआत बालकांड मंगलाचरण से होती है और श्री रामचरित सुनने और गाने की महिमा सर्ग 58 पर खत्म होती है यह तुलसीदास द्वारा रचित महाकाव्य का प्रारंभिक भाग है और इसमें भगवान श्री राम के जन्म से लेकर उनके विवाह तक की घटना का वर्णन है. जिसमें उनके अवतार का कारण, अयोध्या का वर्णन, राम जन्म, नामकरण और बाललीलाएं, विश्वामित्र आगमन, ताड़का सुबाहु वध, अहिल्या उद्धार, जनकपुर की यात्रा एवं सीता स्वयंवर, राम-सीता विवाह इत्यादि का समागम है. जिसकी शुरुआत मंगलाचरण से सभी देवी-देवताओं, गुरुजनों, संतजनों की वंदना से होती है. जिसमें सरस्वती- गणेश, गौरी-शंकर, वाल्मीकि-हनुमान, सीता जी, सद्गुरु, ब्राह्मणों एवं संतो-सज्जनों एवं दुष्टो को भी वंदित भाव दिखाते हैं एवं सभी का महिमामंडन एवं सहयोग मांगते हैं. तुलसी यहां दुर्जनों के क्रियाकलाप स्वभाव एवं चरित्र का वर्णन करने के बाद कहते हैं-

बंदऊ संत असज्जन चरना ॥ दुखप्रद उभय बीच कछु बरना ॥
बिछुरत तक प्रान हरि लेही. मिलत तक दारुन दुख देही ॥

कि मैं (तुलसी) संत ओर असंत दोनों के चरणों की वंदना करता हूं; दोनों ही दुख देने वाले हैं. परंतु उनमें कुछ अंतर कहा गया है वह अंतर यह है कि एक संत तो बिछुड़ते समय प्राण हर लेते हैं और दूसरे (असंत) मिलते हैं तब दारुण देते हैं. (अर्थात संतों का बिछड़ना मरने के समान दुखदायी होता है और असंतो का मिलना) एवं तेसे ही कई उदाहरणो से आगे बताते हैं- की भला भलाई ही ग्रहण करता है और नीच- नीचता को ही ग्रहण कित रहता है. अमृत की सराहना अमर करने में होती है और विजय की मारने में और चौरासी लाख योनियों में चार प्रकार के (स्वदेश, अंणज्य, अदृज्यजरायुज) जीव जल पृथ्वी और आकाश में रहते हैं उन सबसे भरे हुए इस सारे जगत को श्री सीतारामम्य जानकर मैं दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूं.

तुलसीदास कहते हैं-

कबितु बिबेक तक नहीं मोरे ।
सत्य कहउँ लिखी कागद कोरे ।।

कि काव्य संबंधी तक भी बात का ज्ञान नहीं है यह मैं कोरे कागज पर लिखकर सत्य-सत्य कहता हूं !

गिरा ग्राम्य में सिय राम जस गांवहि सुनहि सुजान.

तवारु भाषा (गांव या अंचल) की भाषा होने पर भी श्रीसीताराम जी के यश को बुद्धिमान लोग बड़े चाव से सुनते हैं. एक संदर्भ इसके लिए मुझे याद आता है- हिंदी साहित्य में दो कवि हुए समकालीन जिन्होंने राम की गाथा लिखी

(1) गोस्वामी तुलसीदास (2) केशव दास (ओरछानरेश के राज्य कवि)

गोस्वामी तुलसीदास की रचना- श्री रामचरितमानस

केशव की रचना -रामचंद्रिका

"भाषा बोल न जानिहे जिन के कुल के दास तै भाषा कविता लिखी, जड़मति केशव दास"

केशव कहते हैं- मेरे घर के नौकर जो संस्कृत में बातचीत करते हैं और मैं जड़मति केशव जो विद्वान होते हुए ब्रज में अपनी रचना कर रहा हूं जहां हम भाषा के प्रति ईनिफेरियटी कामपलेक्स दे सकते है. जन श्रुति के अनुसार रामचंद्रिका 36 जनपदों में सोने के कवर में भिजवाई गयी थी कि ओरछा के राज्य कवि की रचना है और तुलसी जब मानस की रचना करते हैं तो काशी के भैयाकरो पंडितों के द्वारा भाषायिता लेकर उसका विरोध होता है. लेकिन आज जब हम देखते हैं तो पाते हैं भारत के किसी कोने में दिन ढलता है किसी दूसरे देश में (Around the globe) किसी सात्विक के घर रिकॉर्डर बजे तो.... श्री रामचंद्र कृपालु.....

9.5 मुख्य प्रसंग वर्णन

9.5.1 राम जन्म

राजा दशरथ पुत्र लालसा में वशिष्ठ के पास गए. वशिष्ठ ने पुत्रकामेष्ठ यज्ञ करवाया जिससे यज्ञकुंड से अग्निदेव स्वयं तक स्वर्ण पात्र में दिव्य पायसम (खीर) लेकर प्रकट हुए. उसको खाकर सभी माताएं गर्भवती हुई एवं जग का कल्याण करने वाले जग में शीतलता भरने वाले राम का जन्म हुआ. जिससे पूरी अयोध्या देवलोक बैकुंठ कैलाश सभी प्रसन्नचित है पूरे अयोध्या में उत्सव मचा हुआ है दान -धर्म- प्रेम की लहरें बह उठी हैं. इस उत्सव पश्चात कुछ दिन बीत गए अब नामकरण का समय आया और वशिष्ठ जी को बुलावा

भेजा गया और वशिष्ठ जी ने कहा-

"जो आनंद ख्रइंधु सुखराशी. सीकर ते त्रेलोक सुपासी ।
सौ सुख्रधाम राम अस नामा. अपख्रल लोक दायक विश्रामा" ॥

इसी तरह अन्य भाइयों के नामकरण भी हुए. कथा आगे बढ़ती है और प्रसंग घटित होते हैं...

तुरु के घर जाकर श्री राम विद्या ग्रहण करते हैं एवं अल्पकाल में ही सब विद्या का ग्रहण कर लेते हैं.

9.5.2 विश्वामित्र का राम को मांगना

विश्वामित्र जी राक्षसों के त्रास से दशरथ से उनके बेटे राम को मांगने आते हैं. राम लक्ष्मण की मांग को जानकर दशरथ बड़े ही दुखी हुए उन्होंने विश्वामित्र से आपको जो चाहिए मांग लीजिए यह चतुर रंगिणी सेना अयोध्या के लड़ाकू योद्धा, पृथ्वी, धन, गऊ, जाना, जो चाहित लेकिन राम यह सुकोमल शरीर से कैसे उन राक्षसों से लड़ेगा ? वशिष्ठ के समझाने पर आखिर में दशरथ मान जाते हैं और दशरथ के पूछने पर राम को ले जाने कारण बताते हुए विश्वामित्र कहते हैं कि -

चौवने धन संपत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता ।
एकैकमणयनयाय किमु यत्र चतुभ्यम ॥

जवानी (यौवनम) धन- संपत्ति (पैसा) प्रभुत्व (अधिकार) एवं अविवेकता (अज्ञानता) यह चारों चीजों में से एक भी आ जाए तो मनुष्य अहंकारी हो जाता है तुम्हारे राम के पास ये चारों है और फिर भी विनम्र हैं, इसलिए मैं राम को ले जा रहा हूं.

9.5.3 ताड़का, सुबाहु, मारीच आदि वध..

दशरथ के मान जाने पर अयोध्या से निकलने के बाद वन मार्ग में विश्वामित्र ताड़का की ओर संकेत करते हैं ओर ताड़का उनकी और दौड़ती हैं और श्री राम जी तक ही बाण से उनके प्राण हर लेते हैं और दीन जानकर उसको निज पद (अपनादिव्य स्वरुप) देते हैं.

विश्वामित्र तत्पश्चात दोनों भाइयों को अतिबला विद्या प्रदान करते हैं इस विद्या से ना उन्हें थकावट आएगी ना कभी शरीर जवराकान्त होगा और ना उन्हें रुप की हानि होगी और इसके बल से कभी भी उन्हें भूख प्यास न सताएगी जिसका लाभ राम लक्ष्मण को युद्ध समय मे भी होगा और सोते हुए भी अशुद्ध दशा में राक्षस लोग उनका कुछ भी न कर सकेंगे. संसार भर में कोई भी उनके बाहुबल की समानता न कर सकेगा जो विज्ञान और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस आज कर रहा है वह उस समय भी मुमकिन था. सोते हुए भी होश में रहने की यह विद्या का दृश्य पंचवटी में गुप्त भी दर्शाते हैं -

"जाग रहा यह कौन धनुर्धर जबकि भुवन भर सोता है ? भोगी कुसुमायुद्ध योगी सा बना दृष्टिगत होता है ॥"

यह वह तकलीफ है जो आज ऑटोमेशन में उपयोग होती है कि लक्ष्मण शिला पर बैठे हैं, सो रहे हैं, बाहर से, लेकिन जैसे ही उनके आसपास कोई भी राक्षसीय पाशविक हलचल होती है वह होश में आ जाते हैं राम लक्ष्मण के संरक्षण में विश्वामित्र यज्ञ शुरु करते हैं यज्ञ की शुरुआत होते ही मारीच, सुबाहु एवं अन्य राक्षस दौड़ते हुए आते हैं. राम लक्ष्मण राक्षसों को मारकर ब्राह्मणों को निर्भय करते हैं. इसी प्रसंग में विश्वामित्र राम एवं लक्ष्मण को दिव्य ज्ञान, अस्त्र-शस्त्र, राक्षसों के संहार तथा धार्मिक कार्यों का शिक्षण देते हैं. इसके धनुष्यज्ञ देखने के लिए विश्वामित्र राम लक्ष्मण को जनकपुर ले जाते हैं.

9.5.4 अहल्या उद्धरण प्रसंग:

वाल्मीकि रामायण और श्री तुलसीदास की मानस में अहिल्या की कथा में बहुत सारे अंतर हैं यहां आदि कवि कहते हैं कि अहिल्या शापवश राख्र में पड़ी रही वहीं तुलसी ने अहिल्या को श्रापवश शिला बन जाना लिख्रा है आदि कवि की रामायण में (48 वे सर्ग) के श्लोक 17-19 के अनुसार अहिल्या ने इनको पहचानने के बाद ही स्वीकृति दी थी.

तस्यानतंर विदित्वा च सहस्त्राक्ष: शचीपति: ।
मुनिवेषधरी भूत्वा अस्ल्यामिदमब्रवीत ॥
ऋतुकाल प्रतीक्षन्ते नार्थिन: सुसमाहिते ।
संगम त्वमिच्छामि त्वया सह सुमध्यमें ॥
मुनिवेष सहस्त्राक्ष विज्ञाय रघुन्दन ।
मति चकार दुमेधा देवराज कुतुहलात ॥

एक दिन गौतम ऋषि की अनुपस्थिति में इंद्र मुनिवेश धारण कर आए और अहिल्या से बोले रती की कामना रख्रने वाले पुरु ष त्रतुकाल की प्रतीक्षा नहीं करते. हे सुंदर कटिप्रदेश वाली मैं तुम्हारे साथ समागम करना चाहता हूं इस प्रकार राम से विश्वामित्र कहते हे ! रघुनंदन मुनिवेश धारण किए हुए इंद्र को पहचान कर भी उस मतिभ्रष्ट नारी ने कोतूहलवश (कि देवराज इंद्र मुझ़से प्रणययाचना कर रहे हैं) समागम का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया.

मानस में दर्शाया गया है कि...

पत्थर की एक शिला को देख्रकर प्रभु ने पूछा, तब विस्तार पूर्वक कथा मुनि ने कही..

कि गौतम मुनि की स्त्री अहिल्या ने श्राप वश पत्थर की देह धारण किया है बड़े धीरज से आपके चरणकमलो की धुली चाहती है. हे रघुवीर ! इस पर कृपा कीजिए.

श्री राम के पवित्र और शोक का नाश करने वाले चरणों का स्पर्श पाते ही वह अहिल्या प्रकट हुई और राम के वंदन में लीन हुई.

जबकि वाल्मीकि रामायण 51 स्वर्ग श्लोक 16 के अनुसार ..

सा हि गोतमवाकयेन दुनिरीक्ष्या बभूष ह ।
त्रयाणामापि लोकानांयावद समस्य दर्शनम ।
शापास्यान्तमुपागम्य तेषा दर्शनमागता ॥

रामचंद्र के द्वारा देख्रे जाने के पूर्व गौतम के शाप के कारण अहिल्या का दर्शन तीनों लोको के किसी प्राणी को होना दुर्लभ था. राम का दर्शन कर लेने मात्र से उसके श्राप का अंत हो गया और तब वह सबको दिख्राई देने लगी. यह तुलसी द्वारा दर्शाया गया है... कि राम स्पर्श से अहिल्या का उद्धार करते हैं जो उनके इश्वरत्व को स्थापित करता है. ईश्वर अपने भक्तों का कल्याण करते हैं चाहे वह किसी भी परिस्थिति में हो इससे हमें यह जानने को मिलता है कि विश्वामित्र प्रसंग मे राम का एक 15 वर्षीय बालक से धर्मवीर बनने तक का यह चरण विश्वामित्र जैसे महान गुरु के मार्गदर्शन से ही पूर्ण होता है.

9.5.5 सीता-रामविवाह :

"माानस" के पुनर्पाठ में हम देख्रते हैं कि जिस तुलसी ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम को निख्रारने में अपनी सारी रचनात्मकता झोंक डाली, उस राम और सीता के भीतर तक दूसरे के लिए पलनेवाले प्रेम को लेकर मर्यादित तुलसी का रूप बेहद लड़ख्रड़ाया हुआ है. यह बात कम से कम बालकांड के संदर्भ में तो कहीं जा सकती है. बालकांड का तक दृश्य है जहां पुष्प - वाटिका में राम पहली बार सीता को देख्रते हैं. तुलसी के मर्यादा पुरुषोत्तम राम के कंठ पहली बार इसी दृश्य में सीता को लेकर फूटे हैं राम ने लक्ष्मण से कहा,

तात जनकतनया यह सोई. धनुजगय जेहि कारन होई ॥
पूजन गोरी सखी लै आई. करत प्रकासु फिरत फुलवाई ॥
जासू बिलोंकि अलौकिक शोभा. सहज पुनीत मोर मनु छोभा ॥
सो सबु कारन जान विधाता. फरकहि शुभद अंग सुन भाता
कर सहज सुभाऊ. मनु कुपंथ पगु धरई न काऊ ॥
मोह अतिसय प्रतीति मन केरी ।
जेहि सपनेहूं परनारी न हैरी ॥

हे तात ! यह वही जनक की कन्या है, जिसके लिए धनुष यज्ञ हो रहा है सखियां इसे गौरी पूजन के लिए ले आई हैं. यह फुलवारी में प्रकाश करती हुई फिर रही है. जिसकी अलौकिक सुंदरता देखकर स्वभाव से ही पवित्र मेरा मन क्षुब्ध हो गया है वह सब कारण (अथवा उसका सब कारण) तो विधाता जाने किंतु हे भाई ! सुनो मेरे मंगलदायक (दाहिने) अंग फड़क रहे हैं रघुवंशियों का यह सहज (जन्मगत) स्वभाव है कि उनका मन कभी कुमार्ग पर पैर नहीं रखता मुझे तो अपने मन पर अत्यंत ही विश्वास है कि जिसने सपने में भी पराई स्त्री पर दृष्टि नहीं डाली है. आगे.. राम-जानकी विवाह के पीछे नियति पूर्वगृह, दैवीय आदेश रचना में उस तरह पुष्ट होकर नहीं उभरते हैं जैसे की सघन प्रेमानुभूति. प्रेम अपनी स्वाभाविकता में प्रेम की तरह ही अभिव्यक्त होता है. तुलसी की लाख सावधानी के बावजूद प्रेम का बगावती रूप यहां छुप नहीं पाया है, तुलसी पूरे बालकांड में मर्यादा की लाठी लेकर 'प्रेम' को लगातार घेरे जा रहे हैं जबकि उनके नायक और नायिका दोनों का प्रेम तब की मान्यताओं और रूढ़ियों (सीमित अर्थों में ही सही) के कगारे मे दरारे डाल देते हैं, यह बोध कम से कम बालकांड पर जरूर लागू होता है. राम सीता की छवि निहार कर फुलवारी से लौट चुके हैं लक्ष्मण को भी कह चुके हैं कि मेरा अंग फड़क रहा है लगता है कि विधाता कुछ चाहते हैं प्रेम राम को हुआ पर तुलसी दोष दे रहे हैं विधाता को लौटकर आने के बाद अब रात हो गई ओर..

प्राची दिसि ससि सुहावा ।
सिय मुख सरिस देखि सुख पावा ॥
बहरि बिचारू कीनह मन चाही ।
सिय बदन सब हिमकर नाही ॥

(उधर) पूर्व दिशा में सुंदर चंद्रमा उदय हुआ राम ने उसे सीता के मुख के सामान देखकर सुख पाया फिर मन से विचार किया कि यह चंद्रमा सीता के मुख के समान नहीं.

धनुष भंग भी यहां एक अभिव्यक्ति ही है जो प्रेम को दुर्भाग्य होने (असफल होने) से बचाने का सर्वोत्तम प्रयास है. उसे पुरुषार्थ से नहीं प्रेमार्थ से जोड़कर देखने की जरूरत है बस तुलसी इसे पुरुषार्थ की सीमा में ले आते हैं फिर भी प्रेम की तीव्र अनुभूति में राम सामान्य प्रेमी की तरह विचलित नहीं होते, बल्कि विचलित होते होते रह जाते हैं. राम को मर्यादित करने की तुलसी की साधना यहां सफल हो जाती है पर सीता तुलसी के नियंत्रण से कई बार बाहर चली जाती है. अतः कई प्रसंगों के बाद सीता-राम विवाह धनुष तोड़ते ही हो जाता है. तुलसी बालकांड के अंत में यह भी कहते हैं -

कबिकुल जीवनु पावन जानी. राम सीय जसु मंगल ख्रानी ॥
तेहि ते में कछु कहां बख्रानी. करत पुनीत हेतु निज बानी ॥

श्री सीताराम जी के यश कों कविकुल के जीवन को पवित्र करने वाला और मंगलो की खान जानकार इससे मैंने अपनी वाणी को पवित्र करने के लित कुछ (थोड़ा- सा) बख्रानकर कहा है.

9.6 सार बिंदु

- तुलसीदास ने वेद, पुराण, रामायण आदि स्रोतों से सामग्री लेकर सरल अवधी भाषा में रामकथा को लिखा जिससे आम जनता इसे सरलता से पढ़ सके .
- बालकांड रामचरितमानस का प्रथम और महत्त्वपूर्ण भाग है, जिसमें राम के जन्म से लेकर सीता-राम के विवाह तक की सभी प्रमुख घटनाएँ वर्णित हैं.
- राम जन्म प्रसंग में दशरथ के पुत्र प्राप्ति यज्ञ कराने से राम का अवतार होता है, जो संसार मे कल्याण और धर्म की स्थापना के लिए है.
- विश्वामित्र प्रसंग में विश्वामित्र राम को अपने साथ ले जाते हैं, जहाँ राम राक्षसों को मारकर धर्म की रक्षा करते हैं और गुरु का महत्त्व भी समझ में आता है.
- अहिल्या उद्धार प्रसंग राम की करुणा और ईश्वरत्व को स्थापित करता है राम अपने स्पर्श से किसी का भी उद्धार कर सकते हैं, यानी वे बहुत दयालु हैं उनके स्पर्श मात्र से पापों से मुक्ति मिल जाती है.
- राम और सीता का प्रथम मिलन एवं विवाह प्रसंग प्रेम और मर्यादा के संतुलन को दर्शाता है, जहाँ प्रेम है परसंस्कारों और सामाजिक मर्यादाओं में बंधा हुआ.
- पूरे बालकांड में धर्म, आदर्श जीवन, गुरु महिमा, प्रेम, भक्ति और मर्यादा जैसे मूल्यों का सुंदर समन्वय दिखाई देता है.

9.7 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

1. बोध प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. रामचरितमानस के बालकांड की विषय-वस्तु का विस्तार से वर्णन कीजिए.
2. तुलसीदास का साहित्यिक परिचय दीजिए.

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. बालकांड में किन-किन मुख्य घटनाओं का वर्णन है?
2. तुलसीदास ने अपनी भाषा को 'ग्राम्य' क्यों कहा?
3. अहिल्या उद्धार प्रसंग का क्या महत्त्व है?
4. राम-सीता के प्रथम मिलन का वर्णन किस प्रसंग में मिलता है?

टिप्पणी लिखिए

1. स्वान्तः सुखाय की भावना
2. सीता राम विवाह प्रसंग

2. वस्तुनिष्ठ प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. **सही विकल्प चुनकर लिखिए,**

(1) 'स्वान्तः सुखाय' का अर्थ है -

(A) समाज के लिए लिखना

(B) स्वयं के सुख के लिए लिखना

(C) राजा के लिए लिखना

(D) धन कमाने के लिए लिखना

(2) रामचरितमानस के रचयिता कौन हैं?

(A) वाल्मीकि

(B) केशवदास

(C) तुलसीदास

(D) सूरदास

(3) बालकांड में मुख्यतः क्या वर्णित है?

(A) राम का वनवास

(B) राम का युद्ध

(C) राम का जन्म से विवाह तक का जीवन

(D) रामराज्य

(4) अहिल्या उद्धार किसके द्वारा हुआ?

(A) लक्ष्मण

(B) विश्वामित्र

(C) राम

(D) भरत

(5) राम ने सीता को पहली बार कहाँ देखा?

(A) अयोध्या

(B) वन में

(C) पुष्प-वाटिका में

(D) सभा में

2. **सही के सामने सही और गलत के सामने गलत का निशान लगाइए.**

1. तुलसीदास ने अपनी रचना में सरल लोकभाषा (अवधी) का प्रयोग किया.
2. बालकांड में राम के बनवास और बुद्ध का वर्णन मुख्य रूप से किया गया है.
3. राम और सीता का प्रेम मर्यादित और आदर्श रूप में प्रस्तुत किया गया है.

9.8 सहायक पाठ्य सामग्री

बालकांड रामचरितमानस

रामचरित मानस- तीन सौ छियालीसवा पुनः मुद्रण, गीताप्रेस, गोरखपुर संवत 2080

बालकांड-मानस

हितोपदेशचोखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, संपादक - नारायण राम आचार्य

इकाई 10 मीरां के पद

रूपरेखा

10.1 उद्देश्य

10.2 प्रस्तावना

10.3 मीरां का जीवन-परिचय

10.4 भक्तिकाल में मीरां का स्थान

10.5 मीरां की भक्ति भावना

10.5.1 कृष्ण-भक्ति

10..5.2 दास्य एवं माधुर्य भाव

10.5.3 विरह-भावना

10.6 मीरां के पदों का काव्यगत वैशिष्ट्य

10.6.1 भाव-पक्ष

10.6.2 कला-पक्ष

10.7 मीरां के पदों के प्रमुख विषय

10.7.1 प्रेम तथा भक्ति का समन्वय

10.7.2 वैराग्य

10.7.3 सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विरोध

10.7.4 आत्मसमर्पण

10.8 मीरां के चयनित पदः पाठ एवं व्याख्या

10.9 सारबिंदु

10.10 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

10.11 उपयोगी पाठ्यसामग्री

10.1 उद्देश्य

विद्यार्थी मित्रो ! आप आदि एवं मध्यकालीन कविता के अंतर्गत मीरां के पदों पर आधारित इकाई पढ़ने जा रहे है. प्रस्तुत इकाई का प्रमुख उद्देश्य आपको भक्तिकाल की महान कवयित्री मीरां के जीवन एवं काव्य से सम्यक् रूप से परिचित कराना है. इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

- मीरां के जीवन-संघर्ष, वैराग्य और आध्यात्मिक चेतना का मूल्यांकन कर सकेंगे.
- मीरां की कृष्ण-भक्ति के स्वरूप, भावात्मक गहराई और आत्मसमर्पण के भाव को जान सकेंगे.
- मीरां के पदों के भाव-पक्ष और कला-पक्ष से अवगत होंगे.
- मीरां के काव्य में निहित स्त्री-चेतना, सामाजिक विरोध और मानवीय मूल्यों को समझ सकेंगे.
- मीरां की भक्ति भावना को विस्तार से समझ सकेंगे.
- मीरां के काव्य के प्रमुख विषय के बारे में जान पाएंगे.
- मीरां के चयनित पदों का पाठ एवं व्याख्या देखेंगे.

10.2 प्रस्तावना

साहित्यिक रूप से भारतीय संस्कृति तथा आध्यात्मिक चेतना के स्वर्णिम युग की यदि बात करें तो निश्चित रूप से हिंदी साहित्य के भक्ति काल को माना जाएगा. इस काल के संत कवियों ने ईश्वर भक्ति को अपने जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य मानकर धर्म, वर्ग, जाति, लिंग-भेद सबसे ऊपर उठकर मानवता का संदेश दिया. इसी काल में एक असाधारण आध्यात्मिक व्यक्तित्व के रूप में मीरां का उदय होता है. मीरां का प्रादुर्भाव कोई साधारण घटना नहीं था. जिस समय साहित्य पर पुरुष वर्ग का वर्चस्व माना जाता था और स्त्री-लेखन लगभग नगण्य था, उसी समय मीरां का नाम हिंदी साहित्य में गूंज उठा. यह गूंज क्षणिक नहीं रही, बल्कि इतनी प्रभावशाली सिद्ध हुई कि आज भी हिंदी साहित्य के इतिहास में उनकी स्वर-प्रतिध्वनि स्पष्ट रूप से सुनाई देती है.

मीरां का काव्य आत्म-संघर्ष सामाजिक विद्रोह और व्यक्तिगत अनुभूति का काव्य है. उनके पदों में एक ओर जहां कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम है तो दूसरी ओर स्त्री की अस्मिता, आत्मसम्मान और स्वतंत्रता की गूंज भी सुनाई देती है. एक तरह से कहा जाए तो मीरां की भक्ति हृदय से उपजी सहज साधना है और यही साधना उनको भक्ति काल के अन्य संत कवियों से अलग करती हैं. अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण मीराबाई को हिंदी साहित्य की प्रथम प्रतिष्ठित कवयित्री होने का गौरव प्राप्त है.

10.3 मीरां का जीवन-परिचय

मीरां का जन्म राजस्थान के कुड़की नामक छोटे से गाँव के प्रतिष्ठित राठौड़ वंश में हुआ था. जो तत्कालीन मेड़ता राज्य की सीमा में स्थित था. उनकी जन्म तिथि संवत 1561, श्रावण सुदी 1, शुक्रवार मानी गई है. उनके पिता रतनसिंह राठौड़ मेड़ता क्षेत्र के सामंत थे और उनका जीवन क्षत्रिय परंपराओं, पराक्रम तथा वंशीय प्रतिष्ठा से जुड़ा हुआ था. ऐसे वैभवपूर्ण परिवेश में पली-बढ़ी मीरां का स्वभाव प्रारंभ से ही सांसारिक चकाचौंध से हटकर ईश्वर-चिंतन और आत्मिक साधना की ओर उन्मुख्र दिख्राई देता है. मीरां के बचपन से जुड़ी कई जनश्रुतियाँ उनके सहज भक्त स्वभाव को उजागर करती हैं. ऐसा माना जाता है कि अल्पायु में ही उन्होंने श्रीकृष्ण की प्रतिमा को अपने जीवन का आधार बना लिया था और उन्हें ही अपना वास्तविक स्वामी स्वीकार कर लिया था. सामान्य बाल-रुचियों, आडंबरपूर्ण वस्त्रों और राजसी मनोरंजन की अपेक्षा उन्हें भजन-गान, साधुओं की संगति तथा प्रभु-स्मरण में विशेष तृप्ति मिलती थी. समय के साथ उनकी यह आस्था और अधिक गहन तथा स्थिर होती चली गई.

कुल-परंपरा और सामाजिक रीति के अनुसार मीरां का विवाह मेवाड़ के युवराज भोजराज के साथ संपन्न हुआ. विवाहोपरांत वे मेवाड़ के राजपरिवार का अंग बनीं, किंतु उनका वैवाहिक जीवन दीर्घकाल तक नहीं चल सका. भोजराज के निधन ने उनके जीवन को गहरे शोक और अनिश्चितता से भर दिया. वैधव्य की स्थिति में उनसे यह अपेक्षा की गई कि वे राजमहल की मर्यादाओं और समाज द्वारा निर्धारित आचरण का पालन करें, परंतु उनका अंतर्मन इन सीमाओं में बंधने को तैयार नहीं हुआ. पति के देहांत के बाद मीरां का जीवन अनेक कठिनाइयों से घिर गया. राजपरिवार के सदस्य और समाज की रूढ़ मानसिकता उनकी स्वतंत्र भक्ति-धारा को सहज रूप में स्वीकार नहीं कर सकी. उन्हें मानसिक पीड़ा, सामाजिक उपेक्षा और विरोध का सामना करना पड़ा. उनकी साधना और ईश्वर-प्रेम को कुल-परंपरा के प्रतिकूल ठहराया गया तथा कई अवसरों पर उन्हें अपमान का भी अनुभव करना पड़ा. इन सब परिस्थितियों के बावजूद मीरां की आस्था और कृष्ण-प्रेम अडिग बना रहा.

अंतत : मीरां ने राजसी सुख-सुविधाओं, सामाजिक मान-प्रतिष्ठा और सांसारिक बंधनों से स्वयं को अलग कर लिया. वे संतों और साधकों के सान्निध्य में रहने लगीं तथा अपने जीवन को पूर्णत: श्रीकृष्ण की आराधना के लिए समर्पित कर दिया. भक्ति-गीतों की रचना, कीर्तन और निरंतर ईश्वर-स्मरण ही उनके जीवन की पहचान बन गए. मीरां का व्यक्तित्व त्याग, वैराग्य, आंतरिक शक्ति और ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण का सशक्त प्रतीक बनकर उभरता है. उनका जीवन केवल निजी आस्था की कहानी नहीं, अपितु साहस, संघर्ष और आत्मिक स्वतंत्रता की प्रेरणादायक मिसाल है.

10.4 भक्तिकाल में मीरां का स्थान

हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्ति काल के समय में मीरां का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं विशिष्ट माना जाता है. इस युग की भक्ति-परंपरा को मुख्य रूप से दो प्रवाह में विभाजित किया गया है - पहला, वह परंपरा जो निराकार ईश्वर की उपासना पर केंद्रित है और दूसरा, वह धारा जिसमें साकार आराध्य के प्रति भक्ति व्यक्त होती है.

निराकार उपासना की परंपरा में कबीर, गुरु नानक और रैदास जैसे संत कवि आते हैं, जबकि साकार भक्ति राम और कृष्ण-इन दो आधारों पर विकसित हुई. इसी साकार भक्ति की कृष्ण-केंद्रित धारा में मीरां एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण और प्रतिनिधि कवयित्री के रूप में प्रतिष्ठित हैं.

कृष्ण-भक्ति की काव्य-परंपरा में नंददास, सूरदास और रसाख्यान जैसे कवियों का विशेष योगदान रहा है, किंतु मीरां इन सबके बीच अपनी अलग पहचान स्थापित करती हैं. अन्य कवियों की रचनाओं में जहाँ कृष्ण-लीलाओं, सौंदर्य और श्रृंगार-भाव की प्रधानता दिखाई देती है, वहीं मीरां की रचनाएँ नारी-मन की गहराइयों से उपजी अनुभूतियों, विरह-वेदना, आत्मिक पीड़ा और पूर्ण समर्पण की अभिव्यक्ति करती हैं. उनके पदों में प्रेमिका का भाव, साधिका की तल्लीनता और भक्त की अनन्य आस्था एक साथ दृष्टिगोचर होती है, जो उन्हें भक्तिकाल में एक विशिष्ट स्थान प्रदान करती है.

मीरां ने भक्ति को राजदरबारों, औपचारिक धार्मिक स्थलों और शास्त्रीय नियमों की सीमाओं से बाहर निकालकर सामान्य जन-जीवन से जोड़ा. उनकी साधना किसी बाह्य विधि-विधान या कर्मकांड पर आधारित नहीं है, अपितु वह सहज प्रेम, भावनात्मक जुड़ाव और आत्मसमर्पण की भावना से संचालित होती है. उनके लिए भक्ति एक जीवंत अनुभव है, जिसमें आत्मा और ईश्वर का सीधा और आत्मीय संबंध स्थापित होता है.

मीरां ने अपने जीवन और रचनाओं के माध्यम से स्त्री के लिए निर्धारित पारंपरिक बंधनों और सामाजिक अपेक्षाओं को चुनौती दी. इस प्रकार मीरां का काव्य सामाजिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है. राजवंश से जुड़ी होने के बावजूद उन्होंने सांसारिक प्रतिष्ठा और लोक-लाज की परवाह किए बिना ईश्वर-प्रेम को सर्वोच्च स्थान दिया. इस दृष्टि से मीरां का स्थान भक्तिकाल में केवल एक कवयित्री का नहीं, बल्कि एक ऐसी साधिका का है, जिसने आस्था, प्रेम और आत्मबल के सहारे भक्ति को नई दिशा और व्यापक अर्थ प्रदान किया.

इस प्रकार भक्तिकाल में मीरां न केवल कृष्ण-भक्ति परंपरा की एक प्रमु स्वर हैं, अपितु वे भक्ति को मानवीय संवेदना, नारी-अनुभूति और सामाजिक चेतना से जोड़ने वाली एक अद्वितीय संत-कवयित्री के रूप में स्थापित होती हैं.

10.5 मीरां की भक्ति भावना

10.5.1 कृष्ण के प्रति समर्पण

कृष्ण मीरां की आध्यात्मिक साधना का मूल आधार हैं. उनके संपूर्ण जीवन एवं साहित्य में कृष्ण ही केंद्रीय सत्ता के रूप में विद्यमान हैं. मीरां कृष्ण को केवल आराध्य देव के

रूप में नहीं देखतीं, अपितु उन्हें अपने अस्तित्व का आधार मानती हैं. उनके लिए कृष्ण जीवन का लक्ष्य, आश्रय और सार हैं. वे उन्हें पति, प्रिय, स्वामी तथा आत्मीय साथी-इन सभी रूपों में स्वीकार करती हैं. मीरां के लिए किसी अन्य ईश्वर सामाजिक शक्ति या सांसारिक संबंध का कोई महत्त्व नहीं है. उनकी भक्ति पूर्णतः अनन्य और अविभाजित है. उनका समर्पण इतना गहन है कि उसमें किसी प्रकार की द्वैत भावना नहीं दिखाई देती. उनकी यह एकाग्र निष्ठा उनके भक्ति-भाव की दृढ़ता और आत्मिक स्थिरता को स्पष्ट करती है.

10.5.2 दासत्व और माधुर्य का समन्वय

मीरां की भक्ति-भावना में दास्य और माधुर्य-दोनों प्रवृत्तियों का सुंदर संतुलन दिखाई देता है. दास्य भाव के अंतर्गत वे स्वयं को कृष्ण की सेविका मानती हैं और उनकी आज्ञा को सर्वोपरि स्वीकार करती हैं. इस भाव में विनय, श्रद्धा और समर्पण की प्रधानता है. इसके साथ ही माधुर्य भाव में मीरां कृष्ण के साथ आत्मीय और प्रेमपूर्ण संबंध स्थापित करती हैं. वे स्वयं को उनकी प्रेयसी तथा अर्धांगिनी के रूप में अनुभव करती हैं. यह भाव उनके पदों को कोमल, संवेदनशील और भावनात्मक गहराई प्रदान करता है. इन दोनों भावों का संयोजन मीरां की भक्ति को विशिष्ट और अत्यंत प्रभावशाली बनाता है.

10.5.3 विरह की अनुभूति

मीरां के काव्य में विरह की भावना अत्यंत तीव्र और करुण है. यह विरह सांसारिक प्रेम से जुड़ा हुआ नहीं, अपितु आत्मा और परम सत्ता के बीच दूरी से उत्पन्न पीड़ा है. जब उन्हें अपने आराध्य की अनुपस्थिति का अनुभव होता है, तो उनका मन व्याकुल हो उठता है. यह वेदना उन्हें तोड़ती नहीं, बल्कि उनकी भक्ति को और अधिक गहन बना देती है. इस प्रकार मीरां का विरह निराशा का नहीं, साधना का माध्यम बन जाता है. यह पीड़ा उन्हें ईश्वर के और निकट ले जाती है तथा उनके आत्मिक विकास में सहायक सिद्ध होती है. इसी कारण मीरां की विरह-भावना भक्ति की उच्चतम अवस्था का संकेत देती है.

बोध प्रश्न

1. कौन मीरां की आध्यात्मिक साधना का मूल आधार हैं?
2. भक्तिकाल में भक्ति-परंपरा को मुख्य रूप से कितने प्रवाह में विभाजित किया गया है?
3. मीरां के पिता का नाम क्या था?
4. मीरां का विवाह किस राजघराने में हुआ था?
5. मीरां के संपूर्ण जीवन एवं साहित्य में कौन केंद्रीय सत्ता के रूप में विद्यमान हैं?

10.6 मीरां के पदों की काव्यात्मक विशेषताएँ

10.6.1 भाव-पक्ष

मीरां की रचनाओं का मुख्य आधार अनुभूति है. उनका काव्य बौद्धिक चातुर्य से नहीं, बल्कि हृदय की गहराइयों से उत्पन्न हुआ है. उनके पदों में प्रेम की उष्णता, अंतर्मन की वेदना, संसार से विरक्ति, पूर्ण समर्पण की भावना तथा विरह की तीव्र अनुभूति अत्यंत स्वाभाविक ढंग से प्रकट होती है. ये भाव किसी कल्पित स्थिति की उपज नहीं हैं, बल्कि उनके स्वयं के जीवनानुभवों और साधना से निकले हुए हैं. इसी कारण मीरां के पद पाठक के हृदय को सीधे स्पर्श करते हैं और आत्मीय अनुभूति उत्पन्न करते हैं.

10.6.2 कला-पक्ष

मीरां की काव्य-शैली सहज, सरल और प्रभावपूर्ण है. उन्होंने शब्दों की सजावट या कलात्मक

प्रदर्शन को कभी प्राथमिकता नहीं दी. उनके लित काव्य का उद्देश्य भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति है. अलंकारों का प्रयोग वे स्वाभाविक रूप से करती हैं, जिससे भाव और अधिक सजीव हो उठते हैं. तुलना, प्रतीक और मानवीय भाव-चित्रण जैसे काव्य-तत्त्व उनके पदों में सहज रूप से समाहित हैं. इस प्रकार मीरां का कला-पक्ष भाव-पक्ष का सहायक बनकर उनके काव्य को सरल होते हुए भी प्रभावशाली स्वर प्रदान करता है.

10.7 मीरां के पदों के प्रमुख विषय

10.7.1 प्रेम तथा भक्ति का समन्वय

मीरां की भक्ति प्रेम से उद्‌भूत है. उनकी पद-रचनाओं का मूल स्वर प्रेम द्वारा उत्पन्न भक्ति ही है. उनका प्रेम सामान्य मानवीय भावनाओं की सीमा में नहीं बँधता, अपितु आध्यात्मिक ऊँचाइयों की ओर अग्रसर होता है. ईश्वर के प्रति उनका अनुराग साधना का रूप ग्रहण कर लेता है, जिसमें आत्मा अपने आराध्य से एकत्व स्थापित करने का प्रयास करती है. इसी कारण मीरां के पद प्रेम और भक्ति के घनिष्ठ मेल का सशक्त उदाहरण प्रस्तुत करते हैं.

10.7.2 वैराग्य

वैराग्य की भावना मीरां के पदों में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है. उन्होंने भौतिक आकर्षणों, वैभव और सामाजिक प्रतिष्ठा को क्षणिक और महत्त्वहीन माना है. उनके पदों में यह विश्वास झलकता है कि सांसारिक बंधन आत्मिक उन्नति में बाधक हैं और उनसे मुक्ति ही सच्चे आनंद का मार्ग है.

10.7.3 सामाजिक रूढ़ियों के प्रति प्रतिरोध

मीरां की रचनाएँ केवल भक्ति तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे समाज की जड़ मान्यताओं को चुनौती भी देती हैं. उन्होंने नारी पर थोपी गई परंपरागत सीमाओं और असमानताओं का विरोध किया. उनके पद स्वतंत्र चेतना, आत्मसम्मान और साहस के स्वर को मुखर करते हैं, जिससे उनका काव्य सामाजिक परिवर्तन की चेतना से भी जुड़ जाता है.

10.7.4 आत्मसमर्पण

आत्मसमर्पण की अवस्था मीरां के काव्य का चरम लक्ष्य है. उनकी साधना का अंतिम उद्देश्य स्वयं को पूरी तरह कृष्ण-चेतना में विलीन कर देना है. उनके पदों में यह भावना स्पष्ट रूप से उभरती है कि व्यक्तिगत इच्छा, अहं और सांसारिक पहचान को त्यागकर ही ईश्वर से सच्चा साक्षात्कार संभव है. इसी पूर्ण समर्पण में मीरां की भक्ति अपनी सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त करती है.

10.8 मीरां के चयनित पदः पाठ एवं व्याख्या

पद - 1

पाठ -

मने चाकर राखो जी, गिरधारी लाल ! चाकर राखो जी ।

साकर रहसूं बाग लगासूं, नित उठ दर्शन पासूं,
वृन्दावन की कुंज गलिन में, तेरी लीला गासूं ।
चाकरी में दर्शन पाऊं, सुमिरन पाऊं खरची,
भाव भगति जागीरी पाऊं, तीनों बातां सरसी.
मोर मुकुट पीतांबर सोहे, गल बैजंती माला,
वृंदावन में धेनु चरावे, मोहन मुरली वाला.

हरे-हरे नित बाग लगाऊं, विच-विच राखूं क्यारी,
सांवरिया के दर्शन पाऊं, पहर कुसुम्भी सारी.
जेगी आया जोग करण को, तप करने संन्यासी,
हरि भजन को साधु आया, वृंदावन के वासी.
मीरांके प्रभु गहर गम्भीरा, सदा बसो जी धारा,
आधी रात प्रभु दर्शन दीन्हे, प्रेम नदी के तीरा.

व्याख्या -

प्रस्तुत पद मीरां द्वारा रचित एक अत्यंत प्रसिद्ध रचना है. इस पद में मीरां अपने आराध्य श्रीकृष्ण को संबोधित करते हुए स्वयं को उनकी सेविका के रूप में स्वीकार किए जाने की प्रार्थना करती हैं. यहाँ 'चाकर' शब्द दासत्व का नहीं, अपितु प्रेमपूर्ण सेवा और आत्मिक निकटता का प्रतीक है. मीरां प्रभु से अधिकार या ऐश्वर्य नहीं माँगतीं, अपितु उनके सान्निध्य में रहकर सेवा करने का अवसर चाहती हैं.

मुखड़ा का भावार्थ :

अहंकार से रहित और पूर्ण समर्पण के साथ मीरां कृष्ण को निवेदन करती हैं- हे गिरधारी ! मुझे अपनी सेविका बनाकर रख लीजिए. उनके लिए प्रभु के निकट रहना ही जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है.

प्रथम पद का भाव :

मीरां कहती हैं कि यदि उन्हें प्रभु की सेवा का अवसर मिले, तो वे उनके लिए उपवन तैयार करेंगी. प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर उन्हें उनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त होगा. वे वृंदावन की गलियों में विचरण करते हुत श्रीकृष्ण की दिव्य लीलाओं का स्मरण और गायन करेंगी. यहाँ सेवा को आनंद और दर्शन को जीवन का परम लक्ष्य बताया गया है.

द्वितीय पद का भाव :

इस पद में मीरां सांसारिक नौकरी और आध्यात्मिक सेवा की तुलना करती हैं. वे कहती हैं कि सांसारिक सेवा में धन प्राप्त होता है, किंतु प्रभु-सेवा में उन्हें दर्शन का सुख स्मरण की पूँजी और भक्ति की जागीर मिलती है. ये तीनों उपलब्धियाँ उनके लिए किसी भी भौतिक लाभ से अधिक मूल्यवान हैं और उनके जीवन को सार्थक बनाती हैं.

तृतीय पद का भाव :

मीरां यहाँ अपने आराध्य के सौंदर्य का चित्र खींचती हैं. वे कृष्ण के रूप-वैभव का वर्णन करते हुए उनके मस्तक पर सजे मोरपंख, पीत वस्त्रों की शोभा, गले में सुशोभित बैजंती माला यानी पुष्पमाला और मुरलीधारी स्वरूप का स्मरण करती हैं. ग्वालबालों के साथ गाय चराने वाले वही मोहन उनके आराध्य हैं, जिनके रूप पर मीरां का मन मोहित है.

चतुर्थ पद का भाव :

मीरां कहती हैं कि वे प्रभु के निवास स्थान को हरियाली और पुष्पों से सुसज्जित करेंगी तथा बीच में फूलों की क्यारियाँ बनातगी. स्वयं सजी-संवरी गहरे लाल रंग (कुसुम्भी) की साड़ी में वे अपने प्रिय के दर्शन की प्रतीक्षा करेंगी. यहाँ प्रतीक्षा, श्रृंगार और सेवा- तीनों भाव तक साथ प्रकट होते हैं, जो मीरां की माधुर्य भक्ति को उजागर करते हैं.

पंचम पद का भाव:

इस पद में वृंदावन की आध्यात्मिक महिमा का वर्णन है. मीरां बताती हैं कि योगी यहाँ साधना के लिए आते हैं, तपस्वी संयम के लिए निवास करते हैं और साधु केवल ईश्वर-

स्मरण में लीन रहने हेतु यहाँ ठहरते हैं. इससे स्पष्ट होता है कि वृंदावन भक्ति और साधना का केंद्र है.

षष्ठ पद का भाव:

अंतिम पद में मीरां अपने प्रभु की गंभीरता और करुणा का स्मरण करती हैं. वे प्रार्थना करती हैं कि प्रभु सदा उनके हृदय में वास करें. वे यह भी कहती हैं कि तक बार प्रभु ने उन्हें रात्रि के समय प्रेम-रस से परिपूर्ण अवस्था में दर्शन दिऐ, जिससे उनका अंतर्मन तृप्त हो गया.

निष्कर्ष:

यह पद मीरां की अनन्य भक्ति, पूर्ण आत्मसमर्पण तथा सेवा-भाव को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है. एक राजपरिवार से संबंध रखने के उपरांत मीरां के लिए सबसे बड़ा गौरव यह है कि वे स्वयं को श्रीकृष्ण की सेविका मानती हैं. उनके लिए प्रभु-सेवा ही परम धन, सुख और जीवन की सर्वोच्च साधना है

पद - 2

पाठ-

पायो जी म्हें तो राम रतन धन पायो ।
वस्तु अमोलक दी म्हारे सतगुरू, किरपा कर अपनायो ॥
जनम जनम की पूँजी पाई, जग में सभी सवायो.
खरच न खूटै चोर न लूटै, दिन-दिन बढ़त खोवायो ।
सत की नाँव खेवटिया सतगुरू, भवसागर तर आयो ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, हरख-हरख जस पायो ॥

व्याख्या -

मीरांबाई की यह प्रसिद्ध रचना भक्ति-रस से परिपूर्ण है, जिसमें उन्होंने ईश्वर-प्रेम को संसार की सबसे महान और स्थायी संपत्ति के रूप में प्रस्तुत किया है. इस पद के माध्यम से मीरां यह स्पष्ट करती हैं कि भौतिक वैभव की तुलना में आध्यात्मिक उपलब्धि कहीं अधिक मूल्यवान होती है. प्रस्तुत पद की भावप्रधान व्याख्या इस प्रकार है-

प्रथम पद का भावार्थ :

मीरां कहती हैं कि उन्हें ईश्वर-स्वरूप राम का रत्नरूपी धन प्राप्त हो गया है. यह धन सामान्य नहीं, अपितु अत्यंत दुर्लभ और अनमोल है. यह सौभाग्य उन्हें उनके सद्गुरु की कृपा से प्राप्त हुआ है. गुरु ने करुणा दिखाकर उन्हें अपनाया और आत्मज्ञान की यह अमूल्य निधि प्रदान की.

द्वितीय पद का भावार्थ :

मीरां अनुभव करती हैं कि इस भक्ति-धन की प्राप्ति से उन्हें अनेक जन्मों की संचित साधना का फल मिल गया है. इस आध्यात्मिक पूँजी को अर्जित करने के लिए उन्होंने संसार के भोग-विलास, आकर्षण और मोह को त्याग दिया है. उनके लिए यह त्याग किसी हानि के समान नहीं, अपितु लाभ के रूप में है.

तृतीय पद का भावार्थ:

मीरां बताती हैं कि यह ईश्वर-प्रेम का धन अद्भुत गुणों से युक्त है. इसे उपयोग में लाने से यह कम नहीं होता और न ही कोई इसे छीन या चोरी सकता है. जहाँ सांसारिक संपत्ति समय के साथ घटती जाती है, वहीं यह आध्यात्मिक धन प्रतिदिन बढ़ता ही जाता

है और आत्मा को और अधिक समृद्ध करता है.

चतुर्थ पद का भावार्थ :

इस पद में मीरां संसार को एक विशाल और कठिन सागर के रूप में देखती हैं. सत्य को वे नौका के समान मानती हैं और अपने गुरु को उसका कुशल नाविका गुरु के निर्देशन और सत्य के सहारे वे इस संसाररूपी भवसागर को पार करने में सफल हो गई हैं.

पंचम पद का भावार्थ :

अंत में मीरां अपने आराध्य का स्मरण करते हुए कहती हैं कि उनके स्वामी गिरधर नागर ही हैं. वे हर्ष और उल्लास के साथ अपने प्रभु के गुणों का गान करती हैं और उनकी भक्ति में अपार आनंद का अनुभव करती हैं.

निष्कर्ष:

इस पद के माध्यम से मीरां तीन महत्त्वपूर्ण संदेश देती हैं-

पहला, गुरु की अनुकंपा के बिना आत्मिक ज्ञान की प्राप्ति संभव नहीं है.

दूसरा, सांसारिक संपत्ति नाशवान होती है, जबकि ईश्वर-नाम का धन चिरस्थायी और सुरक्षित होता है.

तीसरा, जब मनुष्य सांसारिक आसक्तियों को छोड़कर प्रभु की शरण ग्रहण करता है, तभी उसे वास्तविक शांति और परम आनंद की अनुभूति होती है.

इन पदों के माध्यम से मीरां के काव्य की एकनिष्ठ कृष्ण-भक्ति, माधुर्य एवं दास्य भाव, वैराग्य और आत्मसमर्पण, सामाजिक रुढ़ियों का विरोध तथा सरल, लोकधर्मी और गेय भाषा आदि विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं.

बोध प्रश्न

1. मीरां किस रंग की साड़ी में अपने प्रिय के दर्शन की प्रतीक्षा करेंगी?
2. किसकी अनुकंपा के बिना आत्मिक ज्ञान की प्राप्ति संभव नहीं है?
3. गिरधारी लाल के गले में कौन-सी माला सुशोभित है?
4. कौन-सा धन प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है?
5. मीरां की काव्य-शैली कैसी है?

10.9 सार बिंदु

विद्यार्थी मित्रो ! आशा है आपने पूरी इकाई पढ़कर अच्छी तरह समझ ली होगी. अब आप इकाई के प्रत्येक उपशीर्षक से उसकी आवश्यक बातें एक जगह पर लिख लीजिए, जिससे इस इकाई को सार रूप में याद रखने में आपको सुविधा होगी. हम भी यहां यही काम करने जा रहे हैं. आप अपनी सूची से इस सूची का मिलान कीजिएगा और देखिएगा की कहीं हमसे कुछ छूट तो नहीं गया है, या आपसे कुछ रह तो नहीं गया !

- मीरां के जीवन-संघर्ष, वैराग्य और आध्यात्मिक चेतना के बारे में विस्तार पूर्वक जाना.
- मीरां की कृष्ण-भक्ति के स्वरूप, भावात्मक गहराई और आत्मसमर्पण के भाव को जाना.
- मीरां के पदों के भाव-पक्ष और कला-पक्ष से अवगत हुए.
- मीरां के काव्य में निहित स्त्री-चेतना, सामाजिक विरोध और मानवीय मूल्यों को समझा.
- मीरां की भक्ति भावना एवं पद के प्रमुथ विषय के बारे में विस्तार से जाना.
- मीरां के चयनित पदों की पाठ एवं व्याख्या विस्तार से देखी.

10.10 परीक्षा उपयोगी प्रश्नावली

- **निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर विस्तार से दीजित :**

1. मीरां का जीवन परिचय देते हुए भक्ति काल में मीरां के स्थान पर चर्चा कीजिए.
2. 'मने चाकर राखो जी, गिरधारी लाल ! चाकर राखो जी' पद की विस्तृत व्याख्या दीजिए.
3. 'पायो जी म्हें तो राम रतन धन पायो.'- पद की विस्तृत व्याख्या दीजिए.

- **निम्नलिखित पर टिप्पणी लिति:**

1. मीरां के पद का भाव-पक्ष
2. मीरां की भक्ति भावना
3. मीरां के पद का कला-पक्ष
4. मीरां की कृष्ण भक्ति
5. नौरा का वास्य एवं माधुर्य भाव

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (वैकल्पिक)

(1) मीरा का जन्म _____ गाँव में हुआ था.

(A) गया (B) लमही (C) कुड़ंकी (D) चित्तौड

(2) मीरां का विवाह मेवाड़ के युवराज के साथ हुआ था _____.

(A) भोजराज (B) राणा सांगा

(C) रामा उदय सिंह (D)) बप्पा रावल

(3) कृष्षण-भक्ति की काव्य-परंपरा में इनमें से कौन नहीं आता है.

(A) मीरां (B) रसख्रान (C) सूरदास (D) कबीर

(4) निराकार उपासना की परंपरा में _____ संत कवि आते हैं.

(A) कबीर (B) तुलसीदास (C) सूरदास (D) मीरां

(5) मीरां की भक्ति _____ से उद्‌भुत.

(A) वैर (B) द्वेष (D) प्रेम (A) ईर्षा

10.11 उपयोगी पाठ्यसामग्री

(1) मीरां मुक्ति की साधिका - मीरा कान्त

(2) मीराबाई की जीवनी एवं भजन - डॉ. विक्रमसिंह राठौड़

(3) मीरा का काव्य - विश्वनाथ त्रिपाठी

इकाई 11 हिंदी काव्य का रीतिकाल युग परिचय एवं प्रवृत्तियां

रूपरेखा

11.1 उद्देश्य

11.2 प्रस्तावना

11.3 रीतिकालः युग परिचय

11.4 रीतिकाल की प्रवृत्तियां

11.5 सार बिंदु

11.6 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

11.7 संदर्भ सूची

11.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- मध्यकाल के काल विभाजन और नामकरण के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे.
- रीतिकाल के रचनाकारों से अवगत होंगे.
- रीतिकाल के समय युग एवं नाम से परिचित होंगे.
- रीतिकाल की काव्य प्रवृत्तियों का अध्ययन करेंगे.

11.2 प्रस्तावना

भारत में कविता का इतिहास बहुत पुराना है भारतीय साहित्य के सभी प्राचीन ग्रंथ काव्य में ही लिखे गए हैं जब हम हिंदी काव्य की बात करते हैं तो सबसे पहले हमारे मन में यह प्रश्न उठा है कि हिंदी कविता का प्रारंभ कब हुआ हिंदी का पहला काव्य कौन सा है. यह प्रश्न भले ही छोटे दिखाई दे रहे हैं परंतु लगभग सौ डेढ़ सौ साल से विद्वान इन प्रश्नों पर विचार कर रहे हैं परंतु सही उत्तर जिस पर सभी सहमत हो अभी तक सामने नहीं आया है.

हिंदी की कविता को हम जिस रूप में जानते हैं समझते हैं उसका प्रारंभ 13वीं सदी से समझा जाता है. इसकी विकास धारा को समय की परिधि में रखते हुए विद्वानों ने इसे आदिकाल, मध्यकाल रीतिकाल और आधुनिक काल का नाम देकर पहचानने का सफल प्रयास किया है. मध्यकाल को दो भागों में पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल और उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) के रूप में भी पहचाना जाता है. इन युगों की अपनी-अपनी निजी गतिविधियां रही है. फलतः इन युगों का अध्ययन अनिवार्य हो जाता है. हिंदी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल का स्थान भक्तिकाल और आधुनिक काल के मध्य है. 'रीति' का अर्थ है नियम या परंपरा. इस युग में काव्य-लेखन के लिए निश्चित नियम, अलंकार, रस, और नायिका-भेद आदि का विशेष ध्यान रखा गया. कवियों ने काव्य-शास्त्र के सिद्धांतों को अपनी रचनाओं में स्थान दिया. इसीलिए इस युग को रीति युग कहा गया.

11.3 रीतिकाल युग परिचय

रीतिकाल जिसे हिंदी साहित्य का उत्तर मध्यकाल भी कहा जाता है, 17वीं शताब्दी के मध्य से 19वीं शताब्दी के मध्य तक का समय है. इस काल में कविता में रीति (पद्धति)

का अनुसरण किया गया जिसमें रस अलंकार, गुण और नायिका भेद जैसे काव्यांग्यों का विवेचन किया गया. रीतिकाल को अलंकृत काल या श्रृंगार काल भी कहा जाता है. क्योंकि इस काल के साहित्य में श्रृंगार रस की प्रधानता रही है. हिंदी साहित्य में वर्ष 1650 ई से 1857 ई तक का समय रीतिकाल नाम से जाना जाता हैय यह काल समृद्धि और विलासिता का काल है. हिंदी साहित्य का प्रथम चरण श्रृंगार वीर रस जैसे अनेक रसों से समृद्ध रहा है. श्रृंगार की अधिकता इस युग के जीवन और साहित्य दोनों में स्पष्ट दिखती है. कला वासना- पूर्ति आकांक्षा, इच्छा या कामना को पूरा करने का साधन बनी और नारी उसका आधार ? कहा जाता है कि प्रेम क्रीडाओ और नायक-नायिका भेद का जो विविधतापूर्वक चित्रण इस काल की कविता में मिलता है, वह तत्कालीन परिस्थितियों को दिखाता है. रीतिकाल मुख्यतः दरबारी संस्कृति, नारी सौंदर्य वर्णन और श्रृंगार रस प्रधानता के लिए प्रसिद्ध है.

जार्ज ग्रियसन ने इसे कलाकाल कहा है जो इस काल के कवियों की विशिष्टता को पहले के कवियों से अलग दिखाता है. दूसरी और मिश्र बंधुओ ने इसे अलंकृत काल कहा है. जबकि आचार्य रामचंद्र शुक्ल इसे रीतिकाल और पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र श्रृंगार काल नाम देते हैं. लेकिन सर्व प्रचलित और सार्थक नाम रीतिकाल ही है.

रीतिकाल हिंदी साहित्य का एक महत्वपूर्ण काल है, जिसमें काव्यशास्त्र श्रृंगार रस अलंकार और दरबारी संस्कृति को बढ़ावा दिया. रस अलंकार और नायक नायिका के भेद आदि अनेक पहलुओं पर संस्कृत अलंकार परंपरा का अनुकरण किया गया. रीतिकालीन काव्य कला में हिंदी साहित्य में काम तत्व की प्रधानता हो गई. इस समय में अनेक कवि हुत केशव, सचिंतामणि, देव, बिहारी, मतिराम, भूषण, धनानंद, पद्माकर आदि इनमें से केशव, बिहारी और भूषण को इस युग का प्रतिनिधि कवि माना जा सकता है.

रीतिकाल के प्रवर्तक कवियों में केशव और चिंतामणि का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है लेकिन आमतौर से केशव को ही रीतिकाल का प्रवर्तक कवि माना गया है. रीतिकाल के अधिकांश कवि दरबारी थे.

रीतिकाल के कुछ प्रमु कवि और उनकी रचना
केशव दास - रसिक प्रिया, कवि प्रिया
चिंतामणि- कवि कुलकल्पतरु
देव-भाव विलास, काव्य रसायन
बिहारी - सतसई
मतिराम - रसराज, ललित ललाम
भूषण - शिवराज भूषण
धनानंद - सुजान हित
पद्माकर - जगतविनोद, पद्माभरण

इनमें से केशव, बिहारी, धनानंद और भूषण को इस युग का प्रतिनिधि कवि माना जा सकता है. बिहारी ने दोहों की संभावनाओं को पूर्ण रूप से विकसित कर दिया. अधिकांश कवि दरबारी कवि थे. इस युग को समृद्धि और विलासिता का काल भी कहा गया है. औरंगजेब के शासन से लेकर पहले स्वाधीनता संग्राम तक इस युग की अवधि मानी जाती है. इस काल के अधिकांश कवि राज्याश्रित थे. इस काल के कवियों में कई ऐसे आचार्य थे जिन्होंने विविध काव्यांगो के लक्षण वाले ग्रंथ भी लखे. रीतिकाल के कवि राजाओं और रईसों के आश्रय में रहते थे. उनके द्वारा लिए गया साहित्य अधिकतर श्रृंगार मूलक और कलावैचित्रय से युक्त था. एक विशिष्ट पद रचना को ही रीति कहा जाता हैं.

रीतिकाल की प्रमु विशेषताएँ

1. **श्रृंगार रस की प्रधानता :**

   रीतिकाल की सबसे प्रमुख प्रवृत्ति श्रृंगार रस रही. कवियों ने नायक-नायिका के प्रेम, उनकी मिलन-विरह की भावनाओं और सौंदर्य का अत्यंत कोमल चित्रण किया. उदाहरणः बिहारी, केशव, घनानंद आदि कवियों की कविताएँ.

2. **नारी सौंदर्य का वर्णन :**

   इस युग के कवियों ने नारी के रूप, लावण्य, अंग-प्रत्यंग, शृंगार, चंचलता और प्रेम का बहुत सूक्ष्म चित्रण किया. कभी-कभी यह वर्णन केवल शारीरिक सौंदर्य तक सीमित रह गया.

3. **काव्य-शास्त्र पर बल :**

   रीतिकाल के कवियों ने काव्य-रचना को एक शास्त्रीय विद्या के रूप में अपनाया. उन्होंने अलंकार, रस, रीति, गुण, ध्वनि आदि का पालन किया. इस कारण इसे काव्यशास्त्र-प्रधान युग कहा गया. इस दिशा में आचार्य केशवदास का नाम प्रमुख है.

4. **अलंकार-प्रेम :**

   रीतिकालीन कवियों ने भाषा को सजाने-संवारने के लिए अनेक अलंकारों का प्रयोग किया. विशेष रूप से उपमा, रूपक, अनुप्रास, यमक आदि का अत्यधिक प्रयोग हुआ. कवि बिहारी के दोहे इसका श्रेष्ठ उदाहरण हैं.

5. **दरबारी काव्य प्रवृत्ति :**

   रीतिकाल के अधिकांश कवि राजाओं और सामंतों के आश्रित थे. इसलिए उनकी रचनाएँ दरबारी जीवन, राजाओं की प्रशंसा और प्रेम-लीला के इर्द-गिर्द घूमती रहीं.

6. **भक्तिभाव का आंशिक प्रभाव :**

   यद्यपि यह युग मुख्यतः श्रृंगार प्रधान था, फिर भी कुछ कवियों जैसे - देव, आलम, भूषण आदि में भक्ति और वीर रस का भी दर्शन मिलता है

7. **वीर रस और नीति काव्य :**

   रीतिकाल में भूषण जैसे कवियों ने वीर रस का उत्कट चित्रण किया. उनके काव्य में शिवाजी और छत्रसाल जैसे वीरों की वीरता झलकती है. साथ ही, कई कवियों ने नीति, जीवन-मूल्य और लोकव्यवहार पर आधारित रचनाएँ भी कीं.

8. **भाषा और शैली :**

रीतिकाल में ब्रजभाषा को सबसे सुंदर और कोमल रूप में प्रयोग किया गया. भाषा अत्यंत मधुर, काव्यात्मक और अलंकारयुक्त रही. शैली में लालित्य, सुघड़ता और सूक्ष्मता की विशेषता दिखाई देती है. रीतिकालीन कवियों को तीन श्रेणीयों में वर्गीकृत किया गया है - रीतिबद्ध, रीतिमुक्त और रीति सिद्ध कवि.

रीतिबद्ध कवि

रीतिबद्ध कवि वह कवि होते हैं जो रीतिकाल में काव्यशास्त्र के नियमों और लक्षणों के अनुसार रचना करते हैं. वह नियमों पालन के साथ-साथ उन नियमों को उदाहरण के साथ प्रस्तुत भी करते हैं. रीतिबद्ध का अर्थ ही नियमों से बंधा हुआ या रीति का पालन करने वाला होता है. यह कवि संस्कृत की काव्य परंपरा का अनुसरण करते हुए अलंकार रस

छंद नायिका भेद आदि के शास्त्रीय नियमों का पूर्णता पालन करते हुए रचना लिखते हैं. विद्वानों ने रीति का अर्थ पद्धति बताया है जिन कवियों ने रीति ग्रंथो एवं लक्षण ग्रंथो का निर्माण किया तथा अपने ग्रंथो में बताए गए काव्य सिद्धांत के लिए काव्य लिखा.

रीतिबद्ध कवियों में केशव दास का नाम अग्रगण्य है (रामचंद्रिका, रसिकप्रिया, जहांगीर, जसचंद्रिका, कवि प्रिया) आदि उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं. रामचंद्रिका उनका सर्व अधिक प्रसिद्ध महाकाव्य है. हिंदी में सर्वप्रथम उन्होंने ही काव्य के विभिन्न अंगों का शास्त्रीय पद्धति से विवेचन किया था. उनकी कविताओं में भाषा की कठिनता और पांडित्य प्रदर्शन को देकर उन्हें कठिन काव्य का प्रेत कहकर पुकारा जाता है. इसके अतिरिक्त मतिराम (ललितललाम, रसराज, लक्षण श्रृंगार, मतिराम सतसई, फूलमंजरी, अलंकार पचसिका, देव की (रस-विलास, भवानी विलास, भाव विलास, जाति विलास, प्रेमपचीसी, प्रेमचंद्रिका) कुलपति मिश्र की (रस रहसय, नसि, द्रोणपर्व) भिखारी दास की (काव्य निर्णय, श्रृंगार निर्णय, काव्य रसायन) आदि कवि और उनकी रचना रीतिबद्ध श्रृंखला में आते है.

रीतिबद्ध काव्य की प्रमुख विशेषता

रस छंद अलंकार आदि तीन आधारों पर लक्षण ग्रंथो का निर्माण.

कवियों में कवित्व और आचार्यत्व दोनों गुण.

शास्त्र प्रधान काव्य.

श्रृंगार रस की प्रधानता.

ब्रजभाषा का प्राधान्य.

मुक्तक शैली, अलंकारों की प्रधानता.

शास्त्र ज्ञान का सहज प्रयोग भाषा में माधुर्य.

रीतिसिद्ध कवि

ऐसे कवि जिन्हें रीति शास्त्र का ज्ञान है और वह रीति परंपरा का पालन भी करते हैं परंतु रीति ग्रंथ ना लिखकर सीधे काव्य की रचना करते हैं. इन कवियों ने संस्कृत के काव्य शास्त्रों को ज्यों का त्यो न लिखकर उन्हें केवल अपनी रचनाओं का आधार बनाया है. इन कवियों ने नीति भक्ति जैसे विषयो पर भी रचनाएं कि इनमें कविवर बिहारी का सर्वप्रथम उल्लेख किया जाता है. बिहारी की बिहारी सतसई, मतिराम की मतिराम सतसई, भूपति की भूपति सतसई इसके अतिरिक्त कृष्णकवि, वृंद, बेनी, नृप शंभू, ग्वाल कवि, आदि प्रमुख है.

रीतिसिद्ध काव्य की प्रमुख विशेषताएं :

श्रृंगार रस की प्रधानता

भक्ति एवं नीति

प्रकृति वर्णन

ब्रजभाषा का माधुर्य

मुक्तक शैली

अलंकारों की प्रधानता

रीतिमुक्त कवि

ऐसे कवि जिन्होंने रीति परंपरा को नहीं माना और स्वतंत्र काव्य की रचना की. इन्होंने ना तो लक्षण ग्रंथ की रचना की नहीं रीति में बंध कर अपनी रचनातं लिखी. परंपरागत शैली से हटकर स्वच्छंद रूप से काव्य का लेखन कार्य किया. इसलिए इन कवियों की कविताएं भावना प्रधान है रीति रीतिमुक्त कवि जिन्होंने ना ही लक्षण ग्रंथ रखें और ना ही उनके नियमों

के अनुसार काव्य की रचना की अपितु वे अपनी स्वतंत्र मनोवृति के अनुसार काव्य सृजन करते थे. वह रीतिमुक्त कवि कहलाए. इस वर्ग के कवियों में धनानंद (सुजानसागर, विरहलीला, रसकेलिवल्ली और कृपाकांड) ठाकुर (ठाकुरठसक, बोधा (विरहबारिश, इश्कनामा) और आलम (आलम केलि, सुदामा चरित और माधवानल कामकंदला) आदि उल्लेखनीय है.

रीतिमुक्त काव्य की प्रमुख विशेषताएँ.

- रीतिमुक्त कवियों का प्रेम व्यथा प्रधान संयोग में भी वियोग की कसक है.
- प्रेम की पीर और विरहानुभूति रीतिमुक्त काव्यधारा की आत्मा है.
- रीतिमुक्त कवियों ने नारी सौंदर्य का चित्रण स्वस्थ मानसिकता और परिष्कृत रुचियां के साथ किया है.
- ब्रजभाषा का प्रयोग
- आत्मपरक मुक्तक शैली

  लोकोक्ति मुहावरों का प्रयोग

  कवित, सवैया, दोहा छंद आदि

  श्रृंगार रस की प्रधानता

  श्रृंगार का उदात्त रूप

  प्रेम की पीर का चित्रण

11.4 रीतिकालः की प्रवृत्तियां

लक्षण ग्रंथो का निर्माण

रीतिकाल में लक्षण ग्रंथो का निर्माण एक प्रमुख प्रवृत्ति थी जिसमें काव्य के नियमों और सिद्धांतों का वर्णन किया जाता था. काव्य के किसी एक अंग का लक्षण बताकर उदाहरण के रूप में जो कविता की गई उनको लक्षण ग्रंथ कहा गया. यहां काव्य विवेचना अधिक हुई. कवियों ने संस्कृत के लक्षण ग्रंथकर आचार्य का अनुकरण करते हुए अपनी रचनाओं को लक्षण ग्रंथो अथवा रीति ग्रंथो के रूप में प्रस्तुत किया. यद्यपि रीति निरूपण में इन कवियों को विशेष सफलता नहीं मिली. प्रायः इन्होंने संस्कृत ग्रंथो में दिए गए नियमों और तत्वों का ही हिंदी पद्य में अनुवाद किया है. इसमें मौलिकता और स्पष्टता का अभाव है.

श्रृंगार रस की प्रधानता

इस काल में श्रृंगार रस की प्रधानता रही विशेष कर वियोग श्रृंगार का व्यापक चित्रण हुआ. इस काल में नारी का विलासी चित्रण किया गया. नारी केवल पुरुष के रति भाव का आलंबन बनकर रह गई. राधा कृष्ण के प्रेम के नाम पर नारी के अंग प्रत्यंग की शोभा, हाव-भाव, क्रीड़ाएं आदि के द्वारा संयोग श्रृंगार का चित्रण किया गया. किंतु वियोग वर्णन में कवि कर्म खिलवाड़ बनकर रह गया श्रृंगार के आलंबन और उद्दीपन के बड़े ही सुंदर उदाहरण का निर्माण हुआ.

वीर और भक्ति काव्य

वीर और भक्ति काव्य लिखे गए परंतु श्रृंगार रस की तुलना में कम लिखे गए कवियों ने अपने आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा प्रशस्ति में अतिशयोक्ति पूर्ण वीरता का वर्णन किया. भूषण का वीर काव्य हिंदी साहित्य की निधि है.

पद्धीति काव्य

इस काल में नीति विषय काव्य लिखे गए जिसमें व्यवहारिक ज्ञान और नैतिकता पर

जोर दिया गया. कवि आम जनता को जीवन जीने की दिशा दिखाते रहे. नीति काव्य इस युग की एक नई देन है. इस क्षेत्र में वृन्द के नीति दोहे और गिरधर की कुंडलियाँ तथा दीनदयाल गिरि की अन्योक्तियाँ उल्लेखनीय है.

प्रकृति चित्रण

रीतिकालीन साहित्य में श्रृंगार रस का वर्णन प्रकृति के चित्रों से परिपूर्ण था. रीतिकाल में प्रकृति का चित्रण कवियों ने आलंबन और उद्दीपन दोनों रूपों में किया है. यानी इसे भावनाओं को भड़काने के लिए इस्तेमाल किया गया. यह स्वाभाविक ही था क्योंकि दरबारी कवि का जिसका आकर्षण केंद्र नारी ही था ध्यान प्रकृति के स्वतंत्र रूप की ओर जा ही कैसे सकता था. उनके काव्य में प्रकृति का बिम्बग्राही रूप नहीं मिलता. प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण भी परंपरागत है फिर भी सेनापति का प्रकृति चित्रण प्रशंसनीय है.

ब्रजभाषा का उत्कर्ष

रीतिकाल ब्रजभाषा का स्वर्ण युग था जिसमें भाषा को सजाने संवारने पर विशेष ध्यान दिया गया. भाषा में वर्णमैत्री, अनुप्रासत्ज, ध्वन्यात्मकता, शब्द संगीत आदि का पूरा निर्वाह किया गया है. भाषा की मधुरता के कारण मुसलमान कवियों का भी इस और ध्यान गया. इसमें अवधि, बुंदेलखंडी, फारसी के शब्दों को मिलाया गया और कवि ने अपने भावानुकूल बनाने के लिए इसके शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा यह शक्ति भूषण और देव में विशेष रूप से थी. कोमलकांत पदावली में देव और पद्माकर ने तुलसी को पीछे छोड़ दिया है लेकिन भाषा को अत्यधिक कोमल तथा चमत्कारिक बनाने के कारण उसमें कई दोष भी आ गए.

अलंकारिकता

रीतिकाल की एक अन्य प्रधान प्रवृत्ति अलंकारिकता है. अलंकृत भाषा और शैली का प्रयोग इस काल की तक प्रमुख विशेषता थी जिसके कारण राज दरबार का विलासी वातावरण तथा जनसाधारण की रुचि के कारण कवियों को अपनी कविता भड़कीले रंगों में रंगनी पड़ती थी. बहुत सारे कवियों ने अलंकारों के लक्षण उदाहरण दिए लेकिन बहुतों ने केवल उदाहरण ही लिखे जबकि उनके मन में लक्षण विद्यमान थे. अलंकारों का इतना अधिक प्रयोग हुई कि वह साधन न बनाकर साध्य बन गए जिससे काव्य का सौंदर्य बढ़ने की अपेक्षा कम हुई. कभी-कभी अलंकार ही अलंकार स्पष्ट होते हैं और कवि का अभिप्रेत अर्थ उसी चमत्कार में खो जाता है. यह दोष रीतिकालीन काव्यो में प्रायः दिखाई पड़ता है. केशव को इसी कारण कठिन काव्य का प्रेत कहा जाता है. मुक्तक काव्य की प्रधानता रीतिकाल में मुक्तक काव्य को अधिक महत्व दिया गया जिसमें छंद, लय और तुकबंदी का विशेष ध्यान खा गया.

काव्य रूप

रीतिकाल में मुक्त काव्य रूप को प्रधानता मिली. राजाओं की काम क्रिड़ा और कामवासना को उत्तेजित करने एवं उनकी मानसिक थकान को दूर करने के लिए जिस कविता का आश्रय लिया गया वह मुक्तक ही रही. अतः इस काल में कविता और सवैयों की प्रधानता रही. कविता का प्रयोग वीर और श्रृंगार रसों में तथा सवैयों का श्रृंगार रस में हुआ. बिहारी ने दोहा छंद के सीमित शब्दों में अधिक अर्थ व्यक्त करने की कला को विकसित किया. काव्यांगो के लक्षण प्रायः दोहों में ही लिखे जाते थे. कभी-कभी उदाहरण भी दोहों में दिए गत. वैसे भी, धैर्य तथा एक रसता के अभाव में प्रबंध काव्य का सृजन असम्भव था. फिर भी कुछ अच्छे प्रबंध काव्य लिखे गए जैसे गुरु गोविंदसिंह चंडी - चरित्र पद्माकर का हिम्मत बहादुर वीरुदावली, लाल कवि का छात्र प्रकाश आदि.

निष्कर्ष :

रीतिकाल हिंदी साहित्य का एक काव्य सौंदर्य से ओत-प्रोत युग है. इसमें भक्ति की आत्मा की जगह श्रृंगार का सौंदर्य प्रमुख रहा. इस युग ने भाषा, अलंकार, रस और शैली की दृष्टि से हिंदी काव्य को अत्यंत समृद्ध बनाया. भले ही रीतिकाल को अल्पगंभीर कहा गया हो, परंतु इसने हिंदी काव्य को कलात्मक ऊँचाई और सौंदर्य का अनुपम रूप प्रदान किया.

11.5 सार बिंदु

- हिंदी साहित्य के उत्तर मध्यकाल को रीतिकाल के नाम से जाना जाता है.
- रीतिकाल को कलाकाल, श्रृंगार काल, अलंकृत काल, आदि नामों से पहचाना जाता है.
- रीतिकाल में रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध, रीतिमुक्त काव्यधारा देखी गई है.
- रीतिबद्ध कवियों में केशवदास का नाम अग्रगण्य है.

11.6 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. रीतिकाल की विशेषताएं बताइए.
2. रीतिकाल का नामकरण रीति शब्द से क्यों हुआ? सविस्तार समझाइए.
3. रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए.

टिप्पणी लिखिए

1. रीतिबद्ध कवि एवं रीतिमुक्त कवि.
2. रीतिकाल की काव्य धाराएं.

लघुत्तरीय प्रश्न

1. रीतिकाल को श्रृंगार काल क्यों कहा जाता है?
2. रीतिकाल में दरबारी काव्य क्यों फला-फूला?
3. रीतिकाल का विभाजन किन-किन भागों में किया गया है?
4. रीतिकाल के प्रमुख कवि कौन कौन है?

सही विकल्प का चयन किजिए

1. रीतिकालीन कवि अधिकतर किसके आश्रित थे?

   (A) साधु-संत (B) राजा महाराजा (C) किसान (D) व्यापारी

2. रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्ति कौन-सी नहीं है?

   (A) श्रृंगार रस (B) नारी सौंदर्य वर्णन

   (C) सामाजिक यथार्थवाद (D) अलंकार प्रेम

3. कविप्रिया नामक ग्रंथ के रचयिता कौन है?

(A) देव (B) केशवदास (C) आलम (D) बिहारीलाल

4. रीतिकाल का समय माना जाता है.

(A) 1350 से 1650 ई. (B) 1600 से 1850 ई0

(C) 1850 से 1950 ई. (D) 1650 से 1857 ई0

11.7 संदर्भ सूची

- हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ रामचंद्र शुक्ल
- हिंदी साहित्य युग और प्रवृतियां - शिवकुमार शर्मा

इकाई 12 'रामचंद्रिका' केशवदास

रूपरेखा

12.1 उद्देश्य

12.2 प्रस्तावना

12.3 केशवदास का परिचय एवं योगदान

12.4 रामचंद्रिका संक्षिप्त परिचय

12.5 रामचंद्रिका व्याख्या-भाग

- 12.5.1 गणेश वंदना
- 12.5.2 सरस्वती वंदना
- 12.5.3 राम चंदना

12.6 रामचंद्रिका की समीक्षा

- 12.6.1 रामचंद्रिका का महाकाव्यत्व
- 12.6.2 पात्र-योजना
- 12.6.3 संवाद योजना
- 12.6.4 भाषा, शिल्प एवं शैली
- 12.6.5 देशकाल
- 12.6.6 उद्देश्य
- 12.6.7 निष्कर्ष

12.7 सार विन्दु

12.8 परीक्षा-उपयोगी प्रश्नावली

12.9 उपयोगी अध्ययन सामग्री

12.1 उद्देश्य

केशवदास द्वारा रचित 'रामचंद्रिका' हिंदी काव्य-परंपरा में रीति-युग की एक महत्वपूर्ण कृति है. इस इकाई के अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य विद्यार्थियों को केशवदास के काव्य-व्यक्तित्व, उनकी काव्य-दृष्टि तथा रामचंद्रिका के साहित्यिक, सांस्कृतिक और सौंदर्यात्मक महत्त्व से परिचित कराना है. इसके माध्यम से विद्यार्थियों में रीति-कालीन काव्य-प्रवृत्तियों-अलंकार, रस, नायिका-भेद, शब्द-वैभव और शास्त्रीयता की सम्यक् समझ विकसित करना भी एक प्रमुख लक्ष्य है. 'तमस' उपन्यास में पात्रों के माध्यम से कथावस्तु के विकास को समझना.

- विद्यार्थियों को केशवदास के जीवन, काव्य-व्यक्तित्व तथा हिंदी साहित्य में उनके योगदान से परिचित कराना.
- रामचंद्रिका के रचना-प्रसंग, कथावस्तु और काव्य-स्वरूप का स्पष्ट परिचय देना.
- रामचंद्रिका के चयनित व्याख्या-भागों के माध्यम से काव्य-रस, अलंकार और भाव-व्यंजना की समझ विकसित करना.
- रामचंद्रिका के महाकाव्यत्व, पात्र-योजना और संवाद-योजना का समीक्षात्मक अध्ययन करना.
- कृति की भाषा, शिल्प, शैली तथा देश-काल की विशेषताओं को ख्रांकित करना.
- रामचंद्रिका के रचनात्मक उद्देश्य और काव्य-दृष्टि को स्पष्ट करना.

- समग्र समीक्षा, प्रमुख विशेषताओं और सार-बिंदुओं के माध्यम से विद्यार्थियों को परीक्षा-उपयोगी दृष्टि प्रदान करना.

12.2 प्रस्तावना

रीति-कालीन हिंदी साहित्य में केशवदास का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है. वे न केवल एक आचार्य कवि थे, बल्कि काव्य-शास्त्र और काव्य-रचना में निपुण थे. उनकी रचनाओं में भाव, अलंकार, छंद, शिल्प और दरबारी वातावरण का संतुलित मिश्रण दिखाई देता है. केशवदास ने कविता को केवल भाव प्रकट करने का माध्यम नहीं माना, बल्कि उसे एक सुसंस्कृत कला के रूप में प्रस्तुत किया. उनकी प्रमुख कृति **रामचंद्रिका** 1601 ई. के आसपास रची गई, जो रामकथा पर आधारित एक प्रबंधात्मक महाकाव्य है.

रामचंद्रिका में केशवदास ने राम के जीवन की संपूर्ण कथा नहीं कही, बल्कि इसके मुख्य प्रसंगों का चयन कर उन्हें क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया. कृति कुल 39 प्रकाशों में विभाजित है. आरंभ के 26 प्रकाशों में रामजन्म से लेकर राज्याभिषेक एक की कथा आती है. 27वें से 32वें प्रकाश एक रामराज्य और शासन का वर्णन है, जबकि अंतिम प्रकाशों में सीता-निर्वासन की कथा शामिल है. इस प्रकार परंपरागत कथा को केशवदास ने अपनी काव्य-शैली और दृष्टिकोण के अनुरूप प्रस्तुत किया.

इकाई की संरचना विद्यार्थियों के लिए सरल और आलोचनात्मक अध्ययन को ध्यान में रखकर बनाई गई है. प्रारंभ में केशवदास का परिचय एवं योगदान दिया गया है, जिसमें उनके जीवन, साहित्यिक व्यक्तित्व और हिंदी साहित्य में योगदान स्पष्ट किया गया है. इसके बाद रामचंद्रिका का संक्षिप्त परिचय, रचना-भूमि, कथावस्तु और प्रकाश-विभाजन का विवरण प्रस्तुत किया गया है. व्याख्या-भाग में चयनित अंशों की सरल व्याख्या के माध्यम से कविता के भाव, रस और अलंकार को समझना आसान है.

रामचंद्रिका की समीक्षा में महाकाव्यत्व, पात्र-योजना और संवाद-योजना पर विशेष ध्यान दिया गया है. पात्र-योजना में राम, सीता, लक्ष्मण, भरत, हनुमान और रावण के चरित्र की गहनता स्पष्ट होती है. संवाद-योजना में केशवदास की विशेषता संवादों की तीव्रता, सजीवता और नाटकीयता में देखने को मिलती है, जैसे रावण-अंगद और राम-परशुराम संवाद. भाषा, शिल्प और शैली के अंतर्गत ब्रजभाषा की मधुरता, अलंकारों की अधिकता और छंदों की विविधता पर चर्चा की गई है. देश-काल में पौराणिक वातावरण और रीति-युगीन दरबारी जीवन की झलक दिखाई देती है.

अंत में उद्देश्य और निष्कर्ष के माध्यम से रामचंद्रिका के भावार्थ और साहित्यिक महत्व को स्पष्ट किया गया है. प्रमुख विशेषताओं, सार-बिंदु और परीक्षा-उपयोगी प्रश्नावली के माध्यम से विद्यार्थियों को परीक्षा तैयारी में सहायता प्रदान की गई है. यह इकाई केशवदास के काव्य-व्यक्तित्व, रीति-कालीन काव्य-प्रवृत्तियों और हिंदी महाकाव्य परंपरा को सरल, व्यवस्थित और गहन रूप से समझने का अवसर प्रदान करती है.

12.3 केशवदास का परिचय एवं योगदान

हिंदी साहित्य के रीतिकाल में केशव या केशवदास का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है. वे रीतिकाल की प्रसिद्ध कवि-यत्रि के प्रमुख स्तंभ माने जाते हैं. उनका जन्म अनुमानतः 1555 विक्रमी में जिझौतिया ब्राह्मण कुल में हुआ था. उनके पिता का नाम काशीराम अथवा काशीनाथ बताया जाता है. केशवदास का जीवन मुख्य रूप से ओरछा राज्य से जुड़ा रहा, जहाँ उनके परिवार को राजदरबार में विशेष सम्मान प्राप्त था.

केशवदास ओरछा नरेश महाराज रामसिंह के भाई इन्द्रजीत सिंह के दरबारी कवि, मंत्री और गुरु थे. इन्द्रजीत सिंह उन्हें अत्यंत आदर देते थे और अपना गुरु मानते थे. उनकी विद्वत्ता और सेवा से प्रसन्न होकर उन्हें इक्कीस गाँवों का दान दिया गया था. इससे उनके सामाजिक सम्मान और प्रतिष्ठा का अनुमान लगाया जा सकता है. वे आत्मसम्मान के साथ विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे, किंतु अवसर आने पर उन्होंने दरबारी जीवन का त्याग भी किया.

केशवदास संस्कृत के महान विद्वान थे. उनके परिवार और कुल में संस्कृत भाषा का व्यापक प्रचलन था. कहा जाता है कि उनके यहाँ नौकर-चाकर भी संस्कृत बोलते थे. इसी कारण उन्हें आरंभ में हिंदी में कविता करना कुछ कम सम्मानजनक प्रतीत होता था. इस भाव को उन्होंने अपने प्रसिद्ध दोहे में व्यक्त किया है

"भाषा बोल न जानहीं, जिनके कुल के दास.
तीन भाषा कविता करी, जड़मति केशवदास."

यह दोहा उनके संस्कृत-प्रेम और आत्मालोचना दोनों को प्रकट करता है.

केशवदास स्वभाव से भावुक और रसिक व्यक्ति थे. उनके जीवन से जुड़े अनेक प्रसंग उनकी संवेदनशीलता और हास्य-बोध को दर्शाते हैं. वृद्धावस्था में जब कुछ स्त्रियों ने उन्हें 'बाबा' कहकर संबोधित किया, तो उन्होंने व्यंग्यपूर्ण दोहे के माध्यम से अपनी मनोभावना व्यक्त की. यह प्रसंग उनके व्यक्तित्व की मानवीयता को उजागर करता है.

संवत 1608 के लगभग मुघल सम्राट जहाँगीर ने ओरछा का शासन वीर सिंह देव को सौंपा. इस समय केशवदास कुछ समय तक वीर सिंह के दरबार में रहे, किंतु बाद में उन्होंने दरबारी जीवन त्याग दिया और गंगा तट पर जाकर रहने लगे. वहीं उन्होंने अपना शेष जीवन व्यतीत किया और 1618 ईस्वी में उनका देहावसान हो गया.

केशवदास का साहित्यिक योगदान अत्यंत व्यापक और बहुआयामी है. उन्होंने हिंदी साहित्य को न केवल उत्कृष्ट काव्य-कृतियाँ दीं, बल्कि काव्य-शास्त्र का व्यवस्थित ज्ञान भी प्रदान किया. उनकी प्रमुख और प्रामाणिक रचनाएँ नौ मानी जाती हैं - रसिकप्रिया, कविप्रिया, नखशिख, छंदमाला, रामचंद्रिका, वीरसिंहदेव चरित, रतनबावनी, विज्ञानगीता और जहाँगीर जसचंद्रिका.

रसिकप्रिया उनकी सबसे प्रौढ़ और प्रसिद्ध काव्यशास्त्रीय रचना है. इसमें रस, वृत्ति और काव्य-दोषों के लक्षण उदाहरण सहित दिए गए हैं. यह ग्रंथ संस्कृत के नाट्यशास्त्र, कामसूत्र और शृंगारतिलक जैसे ग्रंथों से प्रभावित है. कविप्रिया काव्य-शिक्षा से संबंधित ग्रंथ है, जिसे उन्होंने अपनी शिष्या प्रवीणराय के लिए लिखा था.

रामचंद्रिका केशवदास का सर्वाधिक प्रसिद्ध महाकाव्य है, जिसमें रामकथा को रीति-युगीन काव्य-शैली में प्रस्तुत किया गया है. इसके अतिरिक्त वीरसिंहदेव चरित, रतनबावनी और जहाँगीर जसचंद्रिका में उन्होंने अपने आश्रयदाताओं का यशोगान किया है. विज्ञानगीता एक अन्यापदेशिक काव्य है, जिसमें जीवन और ज्ञान से जुड़े विचार प्रस्तुत किए गए हैं.

इस प्रकार केशवदास का योगदान हिंदी साहित्य में अत्यंत महत्वपूर्ण है. उन्होंने रीतिकाल को सुदृढ़ वैचारिक आधार प्रदान किया, काव्य-शास्त्र को हिंदी में प्रतिष्ठित किया और हिंदी काव्य को शास्त्रीय गरिमा प्रदान की. इसलिए केशवदास को रीतिकाल का प्रमुख आचार्य कवि माना जाता है.

12.4 रामचंद्रिका : संक्षिप्त परिचय

रामचंद्रिका केशवदास द्वारा रचित एक परंपरागत महाकाव्य है, जिसकी रचना लगभग 1601 ईस्वी में मानी जाती है. यह कृति रामकथा पर आधारित है, किंतु सम्पूर्ण कथा विस्तार

से नहीं बल्कि प्रमुख और महत्वपूर्ण प्रसंगों को चुनकर प्रस्तुत किया गया है. प्रत्येक प्रसंग को विभिन्न छंदों में क्रमबद्ध रूप से बांधा गया है, जिससे यह छंदबद्ध प्रबंधकाव्य बन गया है. इस कृति में केशवदास की काव्य-कुशलता, शास्त्रीय ज्ञान और रीति-युगीन दरबारी चेतना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है. केशवदास ने रामकथा को परंपरागत रूप से स्वीकार करते हुए उसे अपने समय की सामाजिक, सांस्कृतिक और दरबारी परिस्थितियों के अनुसार नया रूप दिया. रीति-युग का वैभव, अलंकार-प्रधान शिल्प और दरबारी जीवन की झलक इस काव्य में विशेष रूप से देखने को मिलती है. राम को केवल भक्तिपूर्ण आदर्श नायक ही नहीं, बल्कि एक आदर्श और वीर राजा के रूप में भी प्रस्तुत किया गया है. रामचंद्रिका कुल 39 प्रकाशों में विभाजित है. आरंभ के 26 प्रकाशों में रामजन्म, बाललीला, विवाह, वनगमन और युद्ध जैसे प्रमुख प्रसंग सम्मिलित हैं. 27 से 32वें प्रकाश में राजा राम के शासन, नीति और रामराज्य का चित्रण है, जिसमें आदर्श शासन और राजवैभव का विशेष उल्लेख है. अंतिम प्रकाशों में सीता-निर्वासन की कथा दी गई है. केशवदास ने प्रसंगों का चयन और क्रम अपनी दृष्टि और भावानुसार किया है. कथानक योजना में कुछ प्रसंग अत्यंत प्रभावशाली हैं, जबकि कुछ अपेक्षाकृत कमजोर प्रतीत होते हैं. केशवदास ने वाल्मीकि रामायण, भागवत पुराण, हनुमानाटक और प्रसन्नराघव जैसे ग्रंथों से पर्याप्त सामग्री ग्रहण की है. इसका प्रभाव संवादों की नाटकीयता और उक्तिवैचित्र्य में स्पष्ट दिखाई देता है.

रामचंद्रिका की सबसे बड़ी विशेषता इसकी संवाद-योजना है. संवाद तीव्र, सजीव और नाटकीय हैं, जैसे रावण-अंगद संवाद, राम-परशुराम संवाद और सीता-रावण संवाद. छंद-योजना की दृष्टि से यह कृति बहुछंद-विधान के सफल प्रयोग के कारण शास्त्रीय दृष्टि से समृद्ध है.

जीवन-दृष्टि के स्तर पर यह काव्य न केवल भक्ति-काव्य है, न ही केवल संघर्ष-कथा. इसमें भक्ति और राजवैभव दोनों पर बल दिया गया है. आलोचकों ने कथानक प्रवाह और मार्मिक प्रसंगों के अभाव को सीमाएँ बताया है, पर संवाद-नाटकीयता और काव्य-कौशल के कारण रामचंद्रिका हिंदी साहित्य की महत्वपूर्ण कृति मानी जाती है.

12.5 रामचंद्रिका : व्याख्या-भाग

यहाँ संदर्भ, प्रसंग के साथ निम्नलिखित रामचंद्रिका के पदों की व्याख्या की जायेगी, साथ ही उसके सौन्दर्य पक्ष को भी प्रस्तुत किया जायेगा.

12.5.1 : गणेश वंदना

बालक मृणालनि ज्यों तोरि डारै सब काल,
कठिन कराल त्यों अकाल दीह (दीर्घ) दुख को.
विपति हरत इठि पद्मिनी के पात सम,
पंक ज्यों पताल पेलि पठवै कलुख को.
दूरि कै कलंक अंक भवशीश शशि सम,
रखत हैं केशौदास के वपुख को.
साँकरे की साँकरन सममुख होत तौरै,
दशमुख मुख जोव गजमुख मुख को..1

संदर्भ : प्रस्तुत पद्यांश केशवदास द्वारा रचित महाकाव्य **'रामचंद्रिका'** की आरंभिक **गणेश वंदना** से उद्धत है. भारतीय काव्य-परंपरा में किसी भी मंगलकारी ग्रंथ का आरंभ देव-वंदना से किया जाता है. गणेश को विघ्नहर्ता, बुद्धिदाता और मंगलकर्ता माना गया है. इसी परंपरा का निर्वाह करते हुए केशवदास ने अपने महाकाव्य के आरंभ में भगवान गणेश की स्तुति की है. इस पद्य में कवि ने गणेश की शक्ति, करुणा और संकट-नाशक स्वरूप का काव्यात्मक

चित्रण किया है.

प्रसंग : 'रामचंद्रिका' की रचना आरंभ करते समय कवि केशवदास अपने काव्य-पथ को निर्विघ्न बनाने के लिए गणेश का स्मरण करते हैं. कवि मानते हैं कि कोई भी बड़ा कार्य देवकृपा के बिना सफल नहीं हो सकता. इसलिए वे गणेश से प्रार्थना करते हैं कि वे जीवन के कठिन दुख्रो, विपत्तियों और कलंक से रक्षा करें. यह वंदना कवि की आत्मनिवेदन और श्रद्धा-भावना को प्रकट करती है.

व्याख्या : कवि कहता है कि जैसे कोई बालक सहज ही कोमल मृणाल (कमल की डंठल) को तोड़ देता है, वैसे ही भगवान गणेश अत्यंत कठिन और भयानक दुख्रों को सरलता से नष्ट कर देते हैं. वे अकाल और दीर्घकालीन दु:ख्रों को भी समाप्त करने में समर्थ हैं. यहाँ गणेश की शक्ति और सहज करुणा दोनों का संकेत मिलता है.

आगे कवि कहता है कि गणेश भक्तो की विपत्तियों को उसी प्रकार दूर कर देते हैं जैसे कमल का पत्ता कीचड़ में रहते हुए भी निर्मल रहता है. वे पाप रूपी कीचड़ को पाताल में भेज देते हैं और भक्त को पवित्र बनाए रख्रते हैं. इस पंक्ति में गणेश को पाप-नाशक और रक्षक के रूप में दिख्राया गया है.

इसके बाद कवि गणेश की तुलना चंद्रमा से करता है. जैसे चंद्रमा अपने कलंक के बावजूद उज्ज्वल रहता है, वैसे ही गणेश अपने भक्तों के जीवन से कलंक को दूर कर उनके यश और प्रतिष्ठा की रक्षा करते हैं. कवि यहाँ अपने लिए भी मंगल की कामना करता है और गणेश से अपने शरीर तथा यश की रक्षा की प्रार्थना करता है.

अंतिम पंक्तियों में कवि कहता है कि जब जीवन में संकटों की संकरी श्रृंख्रलाएँ सामने आ जाती हैं, तब गजमुख्र गणेश अपने विशाल मुख्र और अपार शक्ति से उन संकटों को तोड़ देते हैं. यहाँ गणेश की सर्वशक्तिमान और विघ्नहर्ता छवि स्पष्ट होती है.

काव्यगत विशेषताएँ :

1. **छंद** : गणेशवंदना पद्य मनहरण छंद में रचित है, जो लयात्मक और मधुर होने के कारण वंदना के भाव को प्रभावशाली बनाता है.
2. **अलंकार** : उपमा अलंकार का सुंदर प्रयोग हुआ है, जैसे बालक-मृणाल, कमल-पत्ता-कीचड़, चंद्रमा-कलंक, जो भाव को स्पष्ट करते हैं.
3. **भाषा** : भाषा ब्रजभाषा प्रधान साहित्यिक हिंदी है, सरल शब्द चयन और सहज प्रवाह के साथ.
4. **शैली** : शैली अलंकारिक एवं रीति-युगीन है, जिसमें काव्य-सज्जा और शिल्प पर अधिक ध्यान दिया गया है.
5. **भाव पक्ष** : भक्ति-भाव के साथ आत्मनिवेदन की भावना है; गणेश को जीवन के रक्षक और मंगलकर्ता के रूप में प्रस्तुत किया गया है.

यह गणेशवंदना केशवदास की काव्य-कुशलता और छंद-ज्ञान का उत्कृष्ट उदाहरण है और 'रामचंद्रिका' के लिए मंगलमय और प्रभावशाली भूमिका तैयार करती है.

12.5.2 : सरस्वती वंदना

बानी जगरानी की उदारता बानी जाय,
ऐसी मति कहौ घौं उदार कौन की भयी.
देवता, प्रसिद्ध, सिद्ध गडषिराज तपबृद्ध,
कहि कहि हरि सब, कहि न केहूँ लयी.

भावी, भूत, वर्तमान जगत बखानत है,
कशोदास केहूँ न बखानी काहू पै गयी.
वर्णे पति चारि मुख, पूत वर्णे पाँच मुख,
ख्राती वर्णे षट मुख, तदपि नयी नयी..2

संदर्भ : प्रस्तुत पद्यांश केशवदास द्वारा रचित महाकाव्य **'रामचंद्रिका'** की **सरस्वती वंदना** से उद्धृत है. भारतीय काव्य-परंपरा में ग्रंथारंभ के समय पहले गणेश वंदना और उसके पश्चात् सरस्वती वंदना करने की परंपरा रही है. सरस्वती को विद्या, वाणी और बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी माना जाता है. केशवदास, जो स्वयं संस्कृत काव्यशास्त्र के प्रकांड विद्वान और रीतिकाल के प्रमुख आचार्य कवि हैं, अपने काव्य में वाणी की दिव्यता और असीमता को स्वीकार करते हुए सरस्वती की महिमा का गान करते हैं.

प्रसंग : 'रामचंद्रिका' की रचना आरंभ करते समय कवि यह अनुभव करता है कि रामकथा जैसे विशाल, गहन और पवित्र विषय का वर्णन सामान्य मानवीय बुद्धि और वाणी के बल पर संभव नहीं है. इसलिए वह सरस्वती देवी का स्मरण करता है और उनकी उदारता, असीम शक्ति और अनंत सृजनशीलता को स्वीकार करता है. कवि यह भी स्पष्ट करता है कि संसार में आज एक कोई भी देवता, ऋषि या महापुरुष सरस्वती की पूर्ण महिमा का वर्णन नहीं कर सका है.

व्याख्या : कवि कहता है कि सरस्वती की वाणी अत्यंत उदार और विशाल है. उनकी उदारता का पूरा वर्णन करना संभव नहीं है. कवि प्रश्न करता है कि ऐसी उदार बुद्धि भला किसकी हो सकती है ? अर्थात् सरस्वती की कृपा से ही मनुष्य में ज्ञान, विवेक और काव्य-प्रतिभा का विकास होता है.

आगे कवि कहता है कि देवता, प्रसिद्ध सिद्ध पुरुष और तपस्या से वृद्ध ऋषिराज सभी बार-बार सरस्वती की महिमा का वर्णन करते रहे हैं, किंतु कोई भी उनकी संपूर्ण महिमा को कह नहीं सका. यहाँ कवि सरस्वती की असीमता और अनिर्वचनीयता को प्रकट करता है. इसके बाद कवि यह स्पष्ट करता है कि सरस्वती की वाणी भूत, वर्तमान और भविष्य-तीनों कालों के सम्पूर्ण जगत का वर्णन करने में सक्षम है. अर्थात् समस्त ज्ञान, इतिहास, दर्शन और भविष्य-दृष्टि सरस्वती की कृपा से ही संभव है. फिर भी केशवदास स्वीकार करते हैं कि वे स्वयं भी सरस्वती की महिमा को पूर्ण रूप से व्यक्त नहीं कर सकते.

अंतिम पंक्तियों में कवि अत्यंत सुंदर कल्पना प्रस्तुत करता है. वह कहता है कि सरस्वती के पति ब्रह्मा के चार मुख हैं, उनके पुत्र (कार्तिकेय) के पाँच मुख हैं और उनके नाती (षडानन/स्कंद) के छह मुख हैं, फिर भी सरस्वती की वाणी प्रतिदिन नई-नई ही प्रतीत होती है. अर्थात् चाहे जितने मुख और जितनी वाणी क्यों न हों, सरस्वती की रचनात्मक शक्ति अनंत है और कभी समाप्त नहीं होती.

काव्यगत विशेषताएँ :

1. **छंद** : यह पद्य रीतिकालीन मनहरण छंद में रचित है, जिसमें लय, गति और माधुर्य स्तुति-भाव को प्रभावशाली बनाते हैं.
2. **भाषा** : भाषा ब्रजभाषा-प्रधान साहित्यिक हिंदी है, जो सरल होते हुए भी शास्त्रीय गरिमा से युक्त है.
3. **अलंकार** : अतिशयोक्ति द्वारा सरस्वती की अनंत महिमा, अनुप्रास से नाद-सौंदर्य तथा रूपक-संकेतात्मकता से वाणी की व्यापकता व्यक्त हुई है.
4. **शैली** : कवि की शैली अलंकारिक, शास्त्रीय और विशुद्ध रीतिकालीन है, जिसमें काव्य-

चमत्कार प्रमुख है.

5. **भाव पक्ष** : भक्ति, विनय और आत्मस्वीकृति का भाव विद्यमान है.

6. **दार्शनिक दृष्टि** : सरस्वती को ज्ञान-चेतना और सृजनात्मक शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है.

यह सरस्वती वंदना केशवदास की विद्वत्ता, विनम्रता और काव्य-चेतना का उत्कृष्ट उदाहरण है. इसमें सरस्वती को अनंत ज्ञान और वाणी की देवी के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिनकी महिमा का पूर्ण वर्णन संभव नहीं है.

12.5.3 राम वंदना

पूरण पुराण अरु पुरुष पुराण परि-
पूरण बतावैं न बतावैं और उक्ति की.
दरसन देत, जिन्हें दरसन समुझै न,
'नेति नेति' कहै वेद छाँड़ि आन युक्ति को.
जानि यह केशोदास अनुदिन राम राम
रटत रहत न डरत पुनरुक्ति को.
रूप देहि अणिमाहि, गुण देहि गरिमाहि,
भक्ति देहि महिमाहि, नाम देहि मुक्ति को.3

संदर्भ : प्रस्तुत पद्यांश केशवदास द्वारा रचित महाकाव्य **'रामचंद्रिका'** की आरंभिक भागों में शामिल राम वंदना से लिया गया है. भारतीय काव्य-परंपरा में ग्रंथ की आरंभिक वंदनाओं में पहले गणेश वंदना, फिर सरस्वती वंदना और उसके बाद राम वंदना करना सामान्य प्रथा रही है. राम वंदना में कवि भगवान राम की महिमा, गुण, रूप और भक्तिपूर्ण दृष्टिकोण को व्यक्त करता है. केशवदास ने राम को केवल धर्म, शक्ति और वीरता के प्रतीक नहीं बल्कि भक्ति, ज्ञान और मोक्ष प्रदाता भी बताया है. यह वंदना इस बात को रेखांकित करती है कि भगवान राम की महिमा अत्यंत व्यापक और अप्रतिम है. कवि केशवदास इसे अपने महाकाव्य के लिए एक **मंगलकारी आरंभ** के रूप में प्रस्तुत करते हैं.

प्रसंग : 'रामचंद्रिका' की रचना आरंभ करते समय कवि अनुभव करता है कि रामकथा का वर्णन केवल मानवीय बुद्धि और क्षमता से नहीं किया जा सकता. इस कारण वह राम का स्मरण करता है और उनकी महिमा का वर्णन करता है. यह वंदना कवि की श्रद्धा, भक्ति और आत्मसमर्पण का प्रतिफल है. कवि यह भी स्पष्ट करता है कि भले ही पुराण और वेद राम की महिमा का वर्णन करते हैं, फिर भी उनकी सच्ची महिमा को पूरी तरह व्यक्त नहीं कर सकते. केवल राम का ध्यान और निरंतर स्मरण ही उनके रहस्यमय और दिव्य स्वरूप को अनुभव करने का मार्ग है.

व्याख्या : कवि कहता है कि भले ही पुराण-पूरण और पुरुषपुराण- राम की महिमा का वर्णन करें, वे पूर्ण रूप से उसे व्यक्त नहीं कर सकते. वे केवल दृष्टांत या रूपक दे सकते हैं, परंतु जो उसकी वास्तविक महिमा को समझ सके, वह बहुत कम हैं. कवि आगे कहता है कि राम का दर्शन केवल उन्हीं को प्राप्त होता है, जिनके हृदय में समर्पण और श्रद्धा होती है. ज्ञान और तर्क द्वारा उसे पकड़ना असंभव है. यहाँ 'नेति-नेति' (वेदांत सूत्र) का उल्लेख हुआ है, जिसका अर्थ है कि वह जिसकी कोई निश्चित व्याख्या नहीं की जा सकती और जो अनंत है.

केशवदास आत्मनिवेदन करते हुए कहते हैं कि वे निरंतर राम का स्मरण करते रहते हैं, अर्थात् राम नाम का जाप, राम भक्ति और राम स्मरण उनका जीवन मार्ग है. कवि

अपने द्वारा की जाने वाली यह अनुदिन राम-रटाई (राम का निरंतर स्मरण) को भक्ति का प्रमुख साधन मानते हैं.

अंतिम पंक्तियों में कवि भगवान से चार प्रकार की कृपा का निवेदन करता है-

1. **रूप देहि अणिमाहि –** दिव्य रूप और आकर्षण का आशीर्वाद.
2. **गुण देहि गरिमाहि –** गुण, प्रतिष्ठा और महिमा.
3. **भक्ति देहि महिमाहि –** भक्ति और ईश्वर के प्रति लगाव.
4. **नाम देहि मुखवक्ति को –** राम के नाम द्वारा मोक्ष की प्राप्ति.

यह प्रार्थना दर्शाती है कि राम केवल धर्म और राजकीय आदर्श नहीं, बल्कि मोक्षदाता और जीवन के अंतिम उद्देश्य का स्रोत भी हैं.

काव्यगत विशेषताएँ :

1. **छंद :** पद्य मनहरण छंद में रचित, लयात्मक, मधुर और प्रवाहपूर्ण, जो वंदना के भाव को प्रभावशाली बनाता है.
2. **भाषा :** सरल, प्रवाहपूर्ण और शास्त्रीय शैली, ब्रजभाषा और हिंदी का सुंदर मिश्रण.
3. **अलंकार :** अनुप्रास ('देहि देहि'), उपमा (राम का दिव्य रूप), अतिशयोक्ति (महिमा-अनंतता) का प्रभावपूर्ण प्रयोग.
4. **शैली :** रीतिकालीन, अलंकारिक और शास्त्रीय, भक्ति भाव के साथ काव्यशिल्प और तर्कसंगत दृष्टि.
5. **भाव पक्ष :** भक्ति, श्रद्धा और आत्मसमर्पण; कवि राम से सहायता, ज्ञान और मोक्ष की प्रार्थना करता है.
6. **दार्शनिक दृष्टि :** राम आदर्श पुरुष, धर्मपालक, वीर और मोक्षदाता के रूप में प्रस्तुत; भक्ति और ज्ञान का समन्वय.

यह वंदना केशवदास की काव्य-प्रतिभा, भक्ति और शास्त्रीय दृष्टि का उत्कृष्ट उदाहरण है, जो 'रामचंद्रिका' के लिए मंगलकारी आरंभ प्रदान करती है.

निम्नलिखित पदों की संदर्भ सहित व्याख्या करें -

- बालक मृणालनि ज्यों _____ गजमुख मुख को.
- बानी जगरानी की उदारता _____ तदपि नयी नयी.
- पूरण पुराण अरु_____ नाम देहि मुखवक्ति को.

12.6 रामचंद्रिका की समीक्षा

केशवदास की **'रामचंद्रिका'** हिंदी काव्य परंपरा का प्रमुख रीति-युगीन महाकाव्य है. इस समीक्षा का उद्देश्य इसके **महाकाव्यत्व, पात्र-योजना, संवाद-योजना, भाषा, शिल्प और शैली** का विश्लेषण करना है.

12.6.1 रामचंद्रिका का महाकाव्यत्व

केशवदास की 'रामचंद्रिका' हिंदी काव्य परंपरा का एक प्रमुख महाकाव्य है, जिसे उन्होंने रीति-युगीन दरबारी परिवेश और काव्यशास्त्रीय दृष्टि के अनुसार लिखा. यह ग्रंथ रामकथा पर आधारित है, परंतु इसे केवल अनुकरण नहीं माना जा सकता. इसके निर्माण में वाल्मीकि रामायण, हनुमन्नाटक और प्रसन्नराघव जैसे पूर्ववर्ती ग्रंथों का प्रभाव स्पष्ट है. तुलसीदास से

भी प्रेरणा मिली, किंतु केशवदास ने इन स्रोतों का अनुकूलन कर अपनी मौलिक काव्य-प्रतिभा का प्रदर्शन किया.

'रामचंद्रिका' 36 प्रकाशों में विभाजित है. प्रारंभिक 26 प्रकाशों में राम के जन्म और बाल्यकाल के प्रसंग हैं. 27वें से 32वें प्रकाश एक रामराज्य और शासन का चित्रण है, और 33वें प्रकाश से अंतिम प्रकाश एक सीता का वनवास और निर्वासन प्रस्तुत हैं. इस प्रकार कथानक संक्षिप्त, व्यवस्थित और नाटकीय दृष्टि से सशक्त है.

महाकाव्यत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि केशवदास ने परंपरागत कथा का मूल रूप विकृत किए बिना उसे अपनी दृष्टि और भावों के अनुरूप नया रूप दिया. उन्होंने कुछ प्रसंगों को छोड़ दिया, कुछ को संक्षेप में रखा और कुछ को विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया, जिससे कथा का नाटकीय और संवादात्मक प्रभाव बढ़ा. इसका उद्देश्य केवल रामकथा का वर्णन नहीं, बल्कि राम के राजसी वैभव, ऐश्वर्य और आदर्श जीवन का चित्रण था.

केशवदास की छंद योजना और बहुछंद प्रयोग ने महाकाव्य को विशिष्ट बनाया. उन्होंने कथा में नाटकीयता बनाए रखने के लिए संवाद शैली को प्रमुखता दी. इस शैली में पात्रों के संवादों में भाव, रस और जीवंतता दिखाई देती है. कथा के क्रम और प्रकाशों का विभाजन इसे समग्र रूप से सुसंगत और प्रबन्धात्मक बनाता है.

कुछ आलोचकों ने कथाक्रम, अनुपात और गति में असम्बद्धता का उल्लेख किया है, किंतु यह केवल सतही दृष्टि से प्रतीत होती है. वास्तव में, केशवदास ने परंपरागत रामकथा का सार संरक्षित रखते हुए, उसे अपने समय की सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियों के अनुरूप प्रस्तुत किया. इस दृष्टि से 'रामचंद्रिका' का महाकाव्यत्व न केवल काव्यशास्त्रीय और नाटकीय गुणों में है, बल्कि मौलिकता, रचनात्मक स्वतंत्रता और युगीन सौंदर्य में भी दृष्टिगोचर होता है.

अतः 'रामचंद्रिका' हिंदी साहित्य में महाकाव्य की मानक विद्याओं का उत्कृष्ट उदाहरण है. इसमें संवाद योजना, छंद प्रयोग, पात्र-निर्माण और कथा-विन्यास के माध्यम से केशवदास की काव्य-कौशल और सृजनात्मक प्रतिभा स्पष्ट रूप से प्रदर्शित होती है. यह ग्रंथ रीति-कालीन साहित्य और रामकथा परंपरा का अनुपम संगम प्रस्तुत करता है और हिंदी महाकाव्य के अध्ययन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है.

12.6.2 पात्र-योजना

'रामचन्द्रिका' में पात्र-योजना कवि के शास्त्रीय अनुशासन और मौलिक सृजनशीलता का स्पष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है. इस महाकाव्य के नायक राम, धीरोदत, वीर और ऐश्वर्य-सम्पन्न नायक हैं. इनके अतिरिक्त अन्य पात्र दो प्रकार के हैं - मद्धृत्ति (मुख्य, उत्कर्षशील) और अन्वृत्ति (सहायक, निमित्त मात्र). कथानक और घटनाओं के साथ पात्रों का सम्बन्ध उनकी कार्यवाहक भूमिका और कला पात्रता के आधार पर विकसित होता है.

महाकाव्य में सभी पात्र पारंपरिक हैं और उनकी घटनाएँ पूर्व-परिचित हैं. अतः केवल वही पात्र कथा में वास्तविक चरित्र विकास दिखाते हैं जो घटनाओं के मुखरख्य कर्ता होते हैं और कथा को फलप्रद दिशा में ले जाते हैं. अन्य सहायक पात्र केवल प्रसंगानुसार उल्लेखित हैं और उनकी घटनाओं में प्रमुख भूमिका नहीं है.

रामचन्द्रिका में मद्धृत्ति पात्रों का उत्कर्ष और अन्वृत्ति पात्रों का अपेक्षाकृत अपकर्ष दिखाया गया है. नायक राम का चित्रण वीर, पराक्रमी और आदर्श राजा के रूप में किया गया है. तुलसीदास ने रामकथा का गायन शुद्ध भक्ति-भावना से प्रेरित होकर किया था, इसलिए उनकी रामायण में राम का रूप आदर्श और मर्यादित है. केशव ने हालांकि तुलसी से प्रेरणा ली,

लेकिन उन्होंने केवल भक्त न होकर, वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण और अन्य संस्कृत ग्रंथों का आधार लेकर पात्रों को अधिक मानवीय और यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया.

केशव के पात्रों में मानव-सुलभ दुर्बलताएँ स्पष्ट दिखाई देती हैं. उदाहरणस्वरूप दशरथ का कैकेयी के दबाव में राम का राजतिलक रोकना, कौशल्या और सुमित्रा में सौपत्नी-द्वेष, राम का क्रोध तथा वैभव का उपभोग- इन सभी से पात्रों की मानवीय प्रवृत्ति उजागर होती है. तुलसीदास की रामायण में पात्रों का चरित्र आदर्श और पूर्व-निर्धारित होता है, जबकि रामचन्द्रिका में घटनाओं के संदर्भ में पात्रों की प्रतिक्रियाएँ और स्वभाव स्वाभाविक रूप से विकसित होते हैं.

सीता का चित्रण भी तुलसी से भिन्न है. वह राम की पत्नी है, न कि लक्ष्मी या दासी, और पति-पत्नी के स्वाभाविक प्रेम और भावनाओं के अनुरूप उसका चरित्र विकसित किया गया है. राम द्वारा लोकोपबाद के कारण त्यागे जाने पर सीता का स्वाभिमान जाग्रत होना मानवीय रूप में प्रस्तुत किया गया है.

भरत और विभीषण का चरित्र भी तुलसीदास की रामायण से भिन्न है. भरत अपेक्षाकृत क्रोधी और उदासीन हैं, विभीषण अपने स्वार्थ और राजनीतिक दृष्टिकोण से प्रेरित है. इन पात्रों के यथार्थवादी व्यवहार से कथा में मनुष्य-सुलभ संघर्ष और संबंधों की गहनता स्पष्ट होती है.

इस प्रकार, केशव ने 'रामचन्द्रिका' के सभी पात्रों को यथासम्भव मानवीय रूप में चित्रित किया है. उन्होंने किसी आदर्श या दैवी रूप के लिए पात्रों को नहीं बदला. पात्र सामान्य मानव की तरह क्रोध, दुःख प्रेम और आनंद व्यक्त करते हैं. पात्रों के आपसी संबंध सहज और यथार्थपरक हैं, जिससे कथा का प्रवाह प्राकृतिक और मानवीय बनता है. तुलसीदास की तुलना में रामचन्द्रिका के पात्र अधिक जीवनसुलभ, मानवीय और घटनाओं के अनुरूप विकसित हैं.

12.6.3 संवाद योजना

'रामचंद्रिका' केशवदास द्वारा रचित दूसरा महाकाव्य है, जिसे संवाद शैली में लिखा गया है. इस महाकाव्य की विशिष्टता उसकी संवाद योजना में निहित है. केशवदास ने संवादों को न केवल कथा के प्रवाह को गतिशील बनाने के साधन के रूप में प्रयोग किया है, बल्कि पात्रों की मनोभावना, संघर्ष और चरित्र विकास को भी संवादों के माध्यम से प्रकट किया है. यही कारण है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस महाकाव्य में संवाद शैली की सफलता को अत्यधिक सराहा है. उन्होंने उल्लेख किया है कि रावण-अंगद संवाद तुलसीदास के संवादों की तुलना में कहीं अधिक उपयुक्त और प्रभावशाली है.

संवाद योजना की विशेषता इसका तीव्र, चुस्त और घटनाओं के अनुसार उपयुक्त होना है. केशवदास ने संवादों में न केवल पात्रों की भावनाओं को सजीव किया, बल्कि घटनाओं के कारण और परिणामों को भी स्पष्ट किया. उदाहरणस्वरूप एक ही पंक्ति में चार संवादों को समायोजित करना संवादों की तीव्रता और चुस्ती का प्रमाण है:

"मातु कहाँ नृपतात ? गए सुश्लोकहि. क्यों? सुत शोक लये."

इसमें स्पष्ट है कि संवाद केवल कथानक को आगे नहीं बढ़ाते, बल्कि पात्रों की मानसिक स्थितियों और आपसी भावनात्मक प्रतिक्रिया को भी प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करते हैं.

महाकाव्य में अनेक महत्वपूर्ण संवाद हैं, जो पात्रों के चरित्र और कथा के विकास के लिए केंद्रीय भूमिका निभाते हैं. इनमें दशरथ-विश्वामित्र संवाद, सुमति-विमति संवाद, रावण-बाणासुर संवाद, जनक-विश्वामित्र संवाद, परशुराम-वामदेव संवाद, परशुराम-राम संवाद, कैकेयी-

भरत संवाद, शूर्पणा-लक्ष्मण संवाद, राम-जानकी संवाद, राम-लक्ष्मण संवाद, रावण-अंगद संवाद, सीता-रावण संवाद, सीता-हनुमान संवाद, रावण-हनुमान संवाद और लव-कुश-हनुमान संवाद प्रमुख हैं. ये संवाद केवल घटनाओं की प्रस्तुति नहीं करते, बल्कि पात्रों की गहन भावनाओं, उनके स्वभाव और दैहिक-सामाजिक संबंधों को भी उद्‌धाटित करते हैं.

संवाद योजना के माध्यम से केशवदास ने पात्रों को मानवीय रूप में प्रस्तुत किया है. संवादों में पात्र अपने स्वभाव, उत्साह, क्रोध, प्रेम और अन्य भावनाओं के अनुसार प्रतिक्रिया करते हैं, जिससे पाठक को पात्रों के वास्तविक व्यक्तित्व का अनुभव होता है. उदाहरण के लिए, रावण-अंगद संवाद में रावण की क्रूरता और अंगद की साहसिक दृढ़ता स्पष्ट होती है. इसी प्रकार, राम-सीता संवाद में प्रेम, समर्पण और मानसिक संघर्ष की झलक मिलती है.

इसके अतिरिक्त, संवाद योजना कथा की गति और रचनात्मकता दोनों को सुनिश्चित करती है. संवाद केवल कथानक को आगे नहीं बढ़ाते, बल्कि पात्रों की विचारधारा और नीति-नियम, राज-कुशल और सामाजिक दृष्टिकोण भी प्रकट करते हैं. केशवदास की संवाद शैली में तीव्रता, चुस्ती और भावनात्मक गहराई का समन्वय दृष्टिगोचर है, जो इसे अन्य प्राचीन और मध्यकालीन काव्यों की तुलना में अद्वितीय बनाता है.

अतः 'रामचंद्रिका' की संवाद योजना न केवल साहित्यिक सुंदरता के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि यह महाकाव्य के पात्रों, कथानक और भावाभिव्यक्ति के लिए आधारशिला भी है. इस संवाद शैली ने कथा को मानवीय, भावपूर्ण और जीवंत रूप दिया है, जो इसे रीतिकालीन काव्य साहित्य में विशेष स्थान दिलाती है.

12.6.4 भाषा, शिल्प एवं शैली

केशवदास के युग की काव्य-प्रवृत्ति चमत्कारवादी थी, जो उनके काव्य-शिल्प और भाषा में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है. उस समय का जीवन और कला दोनों ही वैभव, भव्यता और अलंकार-प्रधान प्रवृत्ति के थे. 'रामचन्द्रिका' में केशव ने इसी युगीन कला-भावना और जीवन-प्रवृत्ति को अपनी भाषा, शैली और शिल्प में उतारा है. उनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ, भाव-प्रधान और लक्षणबद्ध है, जिसमें अलंकार, वक्रोक्ति, उक्ति-वैचित्र्य, बहुज्ञयता और शब्द-चमत्कार प्रमुख विशेषताएँ हैं.

केशव राज्याश्रित कवि थे और उनका जीवन दरबार, राज-परिसर और उच्च वर्ग की संस्कृति से प्रभावित था. इसी परिवेश में उनके अनुभव और भावों का विकास हुआ. उनके कविताओं की भाषा, शब्द-चयन और शिल्प शैली उनके पाठक वर्ग-दरबारी, शिक्षित और कलाप्रेमी समाज की रुचि-अभिरुचि के अनुरूप है. रामचन्द्रिका में राम का चित्रण भी इसी दृष्टि से किया गया है. राम का राजा रूप, वैभव और पराक्रम, उनके अभिजात्य व्यक्तित्व का प्रतीक है और इस प्रकार की गरिमामय अभिव्यक्ति के लिए संस्कृतनिष्ठ भाषा और लक्षणबद्ध शैली अत्यंत उपयुक्त और स्वाभाविक है.

केशव की भाषा-शैली सहज नहीं, बल्कि विशिष्ट और भव्य है. उन्होंने कथा में उन प्रसंगों को महत्व दिया है जो राम के राजा रूप, वीरता और वैभव को प्रदर्शित करते हैं. महाकाव्य की शैली में तत्कालीन जीवन मूल्यों-वैभव प्रदर्शन, चमत्कार, वाक्पटुता, वक्रोक्ति और अलंकार- का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है. पात्रों के संवाद और वक्रोक्तियाँ भी इसी भव्य शैली को दर्शाती हैं. राम, उनके सहचर और विरोधी सभी पात्र अपनी भाषा, व्यवहार और शैली में यथार्थ और मानवीय रहते हुए भी भव्यता का आभास देते हैं.

रसों की दृष्टि से 'रामचन्द्रिका' में सभी रसों का यथाप्रसंग चित्रण है. प्रमुख रूप से वीर और श्रृंगार रस पर विशेष बल दिया गया है. वीर रस राम के व्यक्तित्व - शक्ति,

वीरता और राजसी गौरव - का मुख्य आधार है, जबकि श्रृंगार रस राजा और पत्नी के स्वाभाविक वैभव और भोग-विलास को अभिव्यक्त करता है. श्रृंगार रस में प्रेम का आलंबन अधिकतर विलास और शारीरिक सौंदर्य के माध्यम से हुआ है, न कि केवल भावनात्मक प्रेम के. उदाहरण के रूप में मन्दोदरी के स्वच्छ वक्षोज का वर्णन स्पष्ट है.

अतः 'रामचन्द्रिका' की भाषा और शैली युगीन, भव्य, अलंकारपूर्ण और शिल्पनिष्ठ है. पात्रों का व्यवहार, संवाद और भाव-प्रदर्शन सभी इसी शैली के अनुरूप हैं. शान्त रस कहीं प्रमुख रूप में नहीं है, किंतु कथा और भावानुरूप वह हर प्रसंग में अनुस्यूत है. वीर और श्रृंगार रस मुख्य हैं, अन्य रस उपयुक्त स्थलों पर प्रवेश करते हैं. केशव ने अपने शिल्प और भाषा के माध्यम से न केवल राम के राजा रूप का प्रभावी चित्रण किया, बल्कि तत्कालीन दरबारी और कलाप्रेमी समाज की रुचियों के अनुरूप काव्य को सजीव और प्रभावशाली बनाया.

12.6.5 देश-काल

महाकाव्य में देश-काल का चित्रण कथा के विस्तार, पात्रों की भावभूमि और जीवन की समग्रता को व्यक्त करने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है. 'रामचन्द्रिका' में भी केशवदास ने देश-काल और वातावरण का विस्तृत, सजीव और वैभवपूर्ण चित्रण किया है. महाकाव्य में समुद्र, पर्वत, अहर्निश, चन्द्रमा, सूरज, उद्यान, जलक्रीड़ा आदि का वर्णन न केवल पृष्ठभूमि के लिए किया गया है, बल्कि यह पात्रों के भाव, कथा की घटनाओं और कथा-प्रवाह को भी पुष्ट करता है.

देश-काल का चित्रण महाकाव्य की जीवनगतता का आधार है. मानव जीवन के अनुभव, उसका इतिवृत्त और सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश प्रकृति, स्थल और परिस्थितियों से गहराई से प्रभावित होते हैं. यदि कथा को समग्र रूप से प्रस्तुत करना है, तो उन स्थलों और वातावरण का वर्णन करना स्वाभाविक और आवश्यक हो जाता है. 'रामचन्द्रिका' में भी केशवदास ने राम के जीवन और उनके वैभवशाली राजा रूप के अनुरूप देश-काल की रचना की है. यहाँ प्रकृति, उद्यान और वातावरण को केवल वास्तविकता के आधार पर नहीं, बल्कि वैभव और भव्यता की दृष्टि से चित्रित किया गया है.

महाकाव्य में देश-काल और वातावरण का चित्रण पात्रों की भावनाओं और चरित्र के अनुरूप होता है. राम के राजा और देव रूप के अनुरूप, उनके आस-पास का वातावरण भी वैभवशाली, आकर्षक और विशेष रूप से सुसज्जित है. उदाहरणस्वरूप, वन में पाए जाने वाले विशिष्ट और असाधारण वृक्ष, जो सामान्यतः उस प्रदेश में नहीं होते, उनके वैभव और राजसी ठाट-बाट को दर्शाते हैं. यह केवल कल्पना का परिणाम नहीं है, बल्कि युगीन वैभव और कला-प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व भी है.

केशवदास ने देश-काल में ऐसी विशेषताएँ जोड़ी हैं जो पाठक को तत्कालीन युग की भव्यता और राजा राम के वैभव का सजीव अनुभव कराती हैं. उनका उद्देश्य केवल प्राकृतिक चित्रण नहीं, बल्कि राम के विशिष्ट रूप, उनके कृतित्व, पराक्रम और राजसी वैभव को प्रदर्शित करना था. इसी दृष्टि से उनके वन, उद्यान और जल-स्थल काल्पनिक, किंतु यथार्थवादी प्रतीत होते हैं. यह महाकाव्य की कथा और पात्रों की गरिमा को और प्रभावशाली बनाता है.

देश-काल का चित्रण 'रामचन्द्रिका' में महाकाव्य के जीवनग्रहण, वैभवशाली युगीन समाज और राजा राम के आदर्श तथा विशिष्ट व्यक्तित्व की पृष्ठभूमि के रूप में कार्य करता है. यह चित्रण पाठक को घटनाओं और पात्रों के भावों के साथ जोड़ता है तथा कथा को जीवंत बनाता है. महाकाव्य की समग्रता में देश-काल और वातावरण का यह प्रतिनिधित्व अनिवार्य है क्योंकि यह पात्रों के चरित्र, कथा की घटनाओं और जीवन की संपूर्णता के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि प्रदान करता है.

अतः 'रामचन्द्रिका' में देश-काल और वातावरण का चित्रण महाकाव्य की आवश्यक विशेषता है. यह केवल कथ्य का आधार नहीं है, बल्कि युगीन जीवन, राजसी वैभव और राम के आदर्श रूप को दर्शाने का माध्यम भी है. केशवदास ने अपने युग, पाठक वर्ग और महाकाव्य की भव्य शैली के अनुरूप देश-काल का ऐसा चित्रण किया है जो रामचन्द्रिका के जीवनगत और कलात्मक महत्व को पूर्णता प्रदान करता है.

12.6.6 उद्देश्य

महाकाव्य की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता इसका उद्देश्य है. विद्वानों के मतानुसार, इसका उद्देश्य जीवन को महान संदेश देने वाला और उदात्त बनाने वाला होना चाहिए. इसी आधार पर कथावस्तु की ऐतिहासिकता और पात्रों की प्रतिष्ठा का निर्धारण किया जाता है. इतिहास में महान चरित्रों की महानता पर संदेह नहीं किया जा सकता, और उन्हें जनता के लिए आदर्श रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है.

दण्डी और रुद्रट के अनुसार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति महाकाव्य में अनिवार्य है, जबकि आचार्य विश्वनाथ ने कम से कम एक लक्ष्य की अनिवार्यता पर बल दिया. केशवदास ने इस सिद्धांत का पालन करते हुए 'रामचन्द्रिका' का धार्मिक और सामाजिक उद्देश्य स्थापित किया. उन्होंने रामकथा का आधार जनता की भक्ति-भावना और धर्म-प्रतिष्ठा को बनाया. राम का स्वरूप जनता में अवतार और धर्म की स्थापना के रूप में प्रतिष्ठित था. उनका जीवन और कृतित्व आदर्श प्रस्तुत करता है.

'रामचन्द्रिका' का उद्देश्य केवल भक्ति का प्रचार नहीं है, बल्कि जनता को नैतिक, सामाजिक और राजनीतिक आदर्श प्रदान करना भी है. केशव ने राम के राजा और वैभवशाली रूप का चित्रण किया, जो तत्कालीन सामंती और दरबारी परिस्थितियों के अनुरूप था. उनके युग में शासन भ्रष्ट और अस्थिर था, और जनता के मन में असंतोष व्याप्त था. ऐसे समय में राम का आदर्श राजा रूप लोकमंगल और समाज सुधार का प्रतीक बनता है.

महाकाव्य में राम-राज्य का विस्तृत वर्णन यही संदेश देता है कि धर्म, नीति और कर्मठता का पालन समाज और राज्य में शांति और न्याय स्थापित करता है. तुलसीदास भक्ति प्रधान दृष्टि से राम का चित्रण करते हैं, जबकि केशव ने उच्च वर्ग-राजा, सामंत और शिक्षित वर्ग के लिए तर्क और बुद्धि के माध्यम से सुधार का प्रयास किया.

राम की महिमा का गायन, उनके आदर्श चरित्र और न्यायप्रिय शासन का वर्णन 'रामचन्द्रिका' के उद्देश्य का सार है. यह महाकाव्य पाठक को भक्ति, नीति और सामाजिक उत्तरदायित्व की शिक्षा देता है. धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से यह लोक-मंगलकारी काव्य है.

अतः 'रामचन्द्रिका' का उद्देश्य तीन स्तरों पर स्पष्ट है - धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक. यह जीवन को उदात्त बनाने, आदर्श स्थापित करने और युगीन समाज में सुधारात्मक चेतना जगाने का कार्य करता है. तुलसीदास की भक्ति प्रधान शैली के विपरीत, केशव ने तर्क और व्यावहारिक दृष्टि से लोकमंगल को अपना लक्ष्य बनाया, जो इसे युगीन समाज और पाठक वर्ग के लिए प्रभावशाली बनाता है.

12.6.7 निष्कर्ष

'रामचन्द्रिका' को कथा, कथा-विन्यास, पात्र-योजना, शैली, देश-काल और उद्देश्य के आधार पर विश्लेषित करने पर स्पष्ट होता है कि यह महाकाव्य न केवल सफल है, बल्कि अपने युग और साहित्यिक संदर्भ में अत्यंत सुसंगठित एवं प्रभावशाली भी है. महाकाव्य के विभिन्न लक्षणों के दृष्टिगत आचार्यों द्वारा निर्धारित मानकों पर 'रामचन्द्रिका' पूरी तरह रा उतरता है. इसे केवल तुलसीदास की तुलना में देखकर आंका जाना अनुचित है, क्योंकि दोनों

कवियों का युग, दृष्टि और साहित्यिक वातावरण अलग था.

केशवदास में प्रबन्ध-काव्य रचना की पूर्ण योग्यता विद्यमान थी. उन्हें तत्कालीन युग के यथार्थ, जीवन की मूल प्रवृत्तियाँ, सामाजिक-राजनीतिक प्रश्न और जीवन के सूक्ष्म स्पन्दनों की गहन समझ थी. साथ ही उनके पास इसे युग-प्रवृत्ति और दरबारी जीवन के अनुरूप शैली में अभिव्यक्त करने की अद्‌भत क्षमता भी थी. अतः यह कहना कि केशव 'हृदयहीन' या 'अनुभूतिहीन' थे, यथार्थ के विरुद्ध है.

महाकाव्य का शिल्प प्रबन्धात्मक होता है, जिसके दो प्रमुख लक्षण हैं - महाकायता और महाकाव्यता. महाकायता का आशय है जीवन का व्यापक और सुसंगठित प्रस्तुतीकरण, जबकि महाकाव्यता युगीन जीवन का चित्रण और उदात्त दिशा प्रदर्शित करती है. 'रामचन्द्रिका' में इन दोनों लक्षणों का संतुलित मिश्रण दिखाई देता है. कथा-प्रसंग की गति सुव्यवस्थित, पात्रों की भूमिका सुसंगत और घटनाओं का प्रवाह यथार्थ एवं युगीन आवश्यकताओं के अनुरूप है.

केशव ने रामकथा को आधार बनाया, किंतु न तो उन्होंने उसे अन्धानुकरण किया और न विकृत. उन्होंने पात्रों का मानवीय रूप, संवादों की नाटकीयता, देश-काल और वातावरण का वैभवपूर्ण चित्रण तथा अलंकारप्रधान शैली के माध्यम से महाकाव्य की गरिमा और उदात्तता को पुष्ट किया.

इस प्रकार, 'रामचन्द्रिका' रीति-युग की साहित्यिक प्रवृत्ति, युगबोध, जीवनगत यथार्थ और कला-सौंदर्य का उत्कृष्ट मिश्रण है. केशवदास ने रामकथा को युग, जीवन और समाज की वास्तविकताओं के सन्दर्भ में प्रस्तुत कर इसे अद्वितीय महाकाव्यात्मक सफलता दिलाई. यह न केवल शास्त्रीय मानकों पर ख उतरता है, बल्कि अपने युग की सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों के अनुरूप नवीनता और उदात्तता का आदर्श भी प्रस्तुत करता है.

12.7 सारबिंदु

- **संवाद योजना** : संवाद सजीव, भावपूर्ण और नाटकीय हैं, जैसे 'रावण-अंगद' और 'परशुराम-राम-लक्ष्मण' संवाद.
- **छंद-वैविध्य** : विभिन्न छंदों का प्रयोग किया गया, भावानुकूल चयन से भाषा में चमत्कार आता है.
- **भाषा पर अधिकार** : ब्रजभाषा, बुंदेली और संस्कृत के शब्दों का सहज और प्रभावशाली मिश्रण.
- **'चमत्कारपूर्ण वर्णन** : सीता स्वयंवर और राम-रावण युद्ध जैसे प्रसंगों में कवि की प्रतिभा स्पष्ट है.
- **राजसी वैभव का चित्रण** : राम के राजा रूप का गौरवपूर्ण और वैभवशाली रूप प्रस्तुत किया गया.
- **युगीन जीवन का प्रतिबिंब:** तत्कालीन दरबारी और सामाजिक जीवन की प्रवृत्तियों का प्रभाव स्पष्ट है.
- **पांडित्य प्रदर्शन** : कवि का झुकाव पांडित्य और अलंकार दिखाने की ओर अधिक है, जिससे कभी-कभी भाव और रस दबते हैं.

12.8 परीक्षा-उपयोगी प्रश्नावली

विस्तृत प्रश्न

- 'रामचंद्रिका' में महाकाव्यत्व की विशेषताएँ और शास्त्रीय लक्षण स्पष्ट कीजिए.

- पात्र-योजना और पात्रों के मानवीय चित्रण पर टिप्पणी दीजीए.
- भाषा, शैली और छंद-वैविध्य का महत्त्व 'रामचंद्रिका' में स्पष्ट कीजीए.

निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखें

- केशवदास का जीवन-परिचय
- केशवदास का साहित्यिक योगदान
- 'रामचंद्रिका' रामचंद्रिका की वंदना-परंपरा
- रामचंद्रिका के महाकाव्यत्व
- रामचंद्रिका में पात्र-योजना
- रामचंद्रिका : संवाद-योजना
- रामचंद्रिका : भाषा-शैली,
- रामचंद्रिका : देशकाल
- रामचंद्रिका : उद्देश्य

लघुप्रश्न

- गणेशवंदना, सरस्वती वंदना और राम वंदना का महत्त्व बताइए.
- रामचंद्रिका में संवाद योजना का महत्व क्या है?
- नाटकीयता का उदाहरण दीजीए.
- भाषा पर केशव का अधिकार कैसे दिखता है?
- महाकाव्य में देश-काल का चित्रण क्यों आवश्यक है?
- केशवदास के उद्देश्य को स्पष्ट दीजीए.

MCQ प्रश्न

1. रामचंद्रिका के लेखक कौन हैं?

   (A) तुलसीदास (B) केशवदास (C) वाल्मीकि (D) मीराबाई

   उत्तरः **(B) केशवदास**

2. रामचंद्रिका किस शैली में लिखा गया है?

   (A) गद्य (B) संवाद शैली (C) गीत (D) पद्य

   उत्तरः **(B) संवाद शैली**

3. रामचंद्रिका में प्रमुख रस कौन-से हैं?

   (A) करुण और हास्य (B) वीर और श्रृंगार

   (C) भयानक और अद्‌भुत (D) शान्त और वीर

   उत्तरः **(B) वीर और श्रृंगार**

4. केशवदास ने रामचंद्रिका में किस प्रकार की भाषा प्रयोग की है?

   (A) केवल संस्कृत (B) केवल ब्रजभाषा

   (C) ब्रज, बुंदेली और संस्कृत का मिश्रण (D) हिंदी सामान्य

   उत्तरः **(C) ब्रज, बुंदेली और संस्कृत का मिश्रण**

5. रामचंद्रिका में प्रमुख छंदों का उपयोग क्यों किया गया है?

(A) पाठकों को भ्रमित करने के लिए

(B) भावानुकूल अभिव्यक्ति और काव्य सौंदर्य के लिए

(C) केवल संस्कृत शब्दों को दिखाने के लिए

(D) कथा का प्रवाह रोकने के लिए

उत्तरः (**B**) **भावानुकूल अभिव्यक्ति और काव्य सौंदर्य के लिए**

6. रामचंद्रिका में केशवदास ने पात्रों को किस रूप में चित्रित किया है?

(A) दैवीय और मर्यादाहीन (B) यथार्थ और मानवीय

(C) केवल आदर्श (D) काल्पनिक और अप्रासंगिक

उत्तरः (B) **यथार्थ और मानवीय**

7. रामचंद्रिका में देश-काल और वातावरण का चित्रण किस उद्देश्य से किया गया है?

(A) कथा को लम्बा करने के लिए

(B) पात्रों और उनके भावों की पृष्ठभूमि बनाने के लिए

(C) केवल प्राकृतिक दृश्य दिखाने के लिए

(D) पाठकों को भ्रमित करने के लिए

उत्तरः (B) **पात्रों और उनके भावों की पृष्ठभूमि बनाने के लिए**

12.9 उपयोगी अध्ययन सामग्री

1. संक्षिप्त रामचंद्रिका, रचनाकार केशवदास, साहित्य सरोवर, आगरा
2. केशव और रामचंद्रिका : पुनर्मूल्यांकन, लेखक- डॉ. रामगोपाल सिंह चौहान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
3. हिंदी साहित्य का इतिहास, लेखक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
4. https://kavitakosh.org/kk/%E0%A4%B0%E0%A4%BE%E0%A4%AE%E0%A4%9A%E0%A4%82%E0%A4%A6% E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A4%BF%E0%A4%95%E0%A4%BE%E0%A4%95%E0%A5%87%E0%A4%B6%E0%A4%B5%E0%A4%A6%E0%A4%BE%E0%A4%B8
5. https://ebooks.inflibnet.ac.in/engp11/chapter/keshavadasa/
6. https://www.hindwi.org/ebooks/keshav-aur-ramchandrika-punarmoolyankan-ramgopal-singh-chauhan-ebooks?gad_source=1&gad_campaignid=11063232657&gbraid=0AAAADlifVQpKKvemt3bXP8pcQZiO8hAS&gclid= CjwKCAiAjc7KBhBvEiwAE2BDOYQocnxL7FFyJy1u7WeZGszcy2onNyk6lli4sf9YTxy isel-1iulrhoCQ-4QAvD_BwE
7. https://en.wikipedia.org/wiki Keshavdas#:~:text=Keshavdas%20Mishra%20(1555%E2%80%9316 17), Riti%20Kaal%20of%20Hindi%20literature.
8. https://ebooks.inflibnet.ac.in/engp11/chapter/keshavadasa/

इकाई 13 रीतिसिद्ध कवि : बिहारी की सतसई

रूपरेखा

13.1. उद्देश्य

13.2. प्रस्तावना

13.3. रीतिसिद्ध कविता

13.4. कवि बिहारी : परिचय और काव्य-सौष्ठव

13.5. सतसई परंपरा और बिहारी सतसई

13.6. बिहारी सतसई : महत्वपूर्ण दोहों की व्याख्या

13.7. सार-बिंदु

13.8. परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

13.9. उपयोगी अध्ययन सामग्री

13.1 उद्देश्य

इस इकाई में रीतिसिद्ध कवि बिहारी की रचना 'बिहारी सतसई' के महत्त्व और उसके काव्य-सौन्दर्य के बारे में जानकारी दी गई है. इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- बिहारी के जीवन का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर पायेंगे.
- बिहारी की एकमात्र रचना बिहारी सतसई के बारे में जान पायेंगे.
- बिहारी के दोहों के साथ-साथ उसकी व्याख्या से परिचित हो पायेंगे.
- सतसई परंपरा में 'बिहारी सतसई' के महत्व का प्रतिपादन कर सकेंगे.
- बिहारी के काव्य में व्यक्त प्रेम, सौंदर्य और श्रृंगार के स्वरुप को स्पष्ट कर सकेंगे.
- बिहारी की कविता के काव्य-शिल्प, भाषा, अलंकार और छंद से परिचित हो सकेंगे.

13.2 प्रस्तावना

बिहारी रीतिकाल के प्रमुख और विशिष्ट कवि हैं. उन्हें 'रीतिसिद्ध कवि' कहा गया है, क्योंकि वे रीति की परंपराओं को केवल मानते नहीं, बल्कि उन्हें अपने ढंग से अपनाकर नई पहचान देते हैं. उनके काव्य में दरबारी वातावरण, भक्ति की भावना, प्रेम और सौंदर्य की गहराई; इन सबका सुंदर मेल मिलता है. उन्होंने श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों रूपों को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया है. नायिका भेद, अलंकार, नीति और प्रेम जैसे विषयों पर लिखते हुए भी उनकी कविता मौलिकता से भरी है. बिहारी के छोटे-छोटे दोहों में शब्दों और अर्थों की गहराई, चित्रात्मकता और कलात्मक सौंदर्य देखने लायक है. उनके काव्य में सामंती समाज का यथार्थ भी झलकता है, जहाँ राधा-कृष्ण भक्ति के नहीं, बल्कि प्रेम के प्रतीक बन जाते हैं. बिहारी की कविता में बाहरी श्रृंगार के साथ प्रेम की सच्ची भावना भी है, जो उन्हें रीतिकाल का सबसे विशिष्ट और प्रतिभाशाली कवि बनाती है. उनकी रचना 'बिहारी सतसई' हिंदी साहित्य में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है. यह ब्रज भाषा में रचित मुक्तक काव्य है. यह दोहा छंद में लिखी गई हैं. इसमें नीति, भक्ति और श्रृंगार से सम्बन्धित दोहे मिलते हैं जो बिहारी के ज्ञान और अनुभव को दर्शाते हैं.

13.2 रीतिसिद्ध कविता

हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्यकाल अर्थात् रीतिकाल के अंतर्गत रीतिबद्ध कलाकारों के दो वर्ग थे - एक तो वे; जिन्होंने केवल लक्ष्य ग्रंथों का ही निर्माण किया. दूसरे वे जिन्होंने काव्यांग विवेचन या नायिका भेद आधारित ही कविता की. लेकिन इन दो वर्गों के अतिरिक्त एक तीसरा वर्ग भी इस काल में रहा है जिससे सम्बद्ध कवियों ने रीतिकाव्य की परिपाटी में आस्था तो रखी, पर लक्षण ग्रंथों की रचना नहीं की. इन्होंने अपनी काव्य प्रतिभा का परिचय स्वतंत्र ग्रंथों के प्रणेता के रूप में दिया. इस वर्ग के कवि अपने कवि गौरव में अभिलाषा रखते थे और कवित्व के लोभ में चमत्कारपूर्ण उक्तियों की रचना करने में लीन थे. ये कवि कविता को लक्षण विशेष के साँचे में बाँधने की चिन्ता नहीं करते थे. स्वानुभूति के आधार पर मौलिक काव्य रचना करना ही इनका उद्देश्य था. स्वतंत्र उद्भावनाओं के लिए इन कवियों के पास समय अधिक था, जिससे इन कवियों में वैयक्तिकता का उभार अधिक हो सका. भावाभिव्यक्ति के लिए इन्होंने अलंकारमयी शैली का सहारा लिया, कवियों का यही वर्ग रीतिसिद्ध काव्यधारा के नाम से जाना जाता है.

रीतिसिद्ध कवि; जिन्होंने न कोई लक्षण ग्रन्थ लिखा, न ही उसका पालन किया, किन्तु रीति को पृष्ठभूमि में रखते हुए काव्य लिखे हैं. इन कवियों ने संस्कृत के काव्यशास्त्रों को ज्यों का त्यों न लिखा बल्कि उन्हें केवल अपनी रचनाओं का आधार बनाया है. इन कवियों ने नीति, भक्ति जैसे विषयों पर भी रचनाएँ कीं. इस धारा के प्रमुख कवियों में बिहारी सर्वाधिक प्रख्यात हैं.

बिहारी की एकमात्र रचना 'बिहारी सतसई' है. यह मुक्तक काव्य है, इसमें 719 दोहे संकलित हैं. कवि ने श्रृंगार रस, वीर रस, शांत रस, भक्ति भाव, प्रकृति वर्णन, नायिका भेद, नीति-वचन विषयक दोहों की रचना की है.

इनके अतिरिक्त रीतिसिद्ध कवियों में कविवर वृंद, कवि बेनी, कृष्ण कवि, नृप शंभू, ग्वाल कवि, कवि रामसहाय, कवि हठी, कवि पजनेस आदि कवि प्रमुख हैं.

13.4 कवि बिहारी : परिचय और काव्य-सौष्ठव

बिहारी रीतिकाल के सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय कवि हैं. उन्हें रीतिकाल के प्रतिनिधि कवियों में से एक माना जाता है. उन्होंने काव्यांग निरूपण नहीं किया है, किंतु उनकी रचना में काव्य रीति रची-बसी है. केशवदास को बिहारी का गुरु माना जाता है. बिहारी की एकमात्र रचना 'सतसई' (सप्तशती) है, जो उनके यश का आधार है. बिहारी राजा जयसिंह के आश्रित थे.

किसी भी कवि या रचनाकार की रचना पर उसके समय और परिवेश का गहरा प्रभाव पड़ता है. समाज, संस्कृति, राजनीति और अर्थव्यवस्था - इन सबके मेल से ही कवि का व्यक्तित्व और उसकी दृष्टि बनती है. बिहारी का जीवनकाल मुगल सम्राट अकबर के उत्तरकाल से लेकर औरंगजेब के आरंभिक शासन तक फैला हुआ था. उन्होंने जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब- इन तीनों के शासन काल की नीतियाँ और जीवन शैली को नज़दीक से देखा. विशेष रूप से शाहजहाँ का युग स्थापत्य, चित्रकला और कला के वैभव का काल था. उस समय उच्च वर्ग विलासिता में डूबा था, जबकि सामान्य जनता और उच्च वर्ग के बीच गहरी खाई थी. कलाकारों और कवियों को दरबारों में आश्रय तो मिला, लेकिन स्वतंत्र अभिव्यक्ति की गुंजाइश कम थी. दरबारों में रत्न, आभूषण और मनोरंजन का प्रचलन बहुत अधिक था. अवध, दिल्ली, बुंदेलखंड और राजस्थान के दरबारों की यह विलासिता उस समय की कविताओं में स्पष्ट झलकती है.

रीतिकाल में अधिकतर कवि सामंती वैभव की प्रशंसा करते हैं, परंतु बिहारी जैसे विरले कवि उस यथार्थ से टकराते हैं और अपने समय की विसंगतियों पर तीखे व्यंग्य करते हैं. जब जयपुर के राजा जयसिंह अपनी प्रजा की उपेक्षा कर निजी सुखों में डूब गए, तब बिहारी ने उन्हें चेतावनी देते हुए यह प्रसिद्ध दोहा लिखा -

"नहिं परागु नहिं मधुर मधु, नहिं बिकासु इहिं काल.
अली, कली ही सौं बध्यौं, आगे कौन हवाल."

इसी प्रकार, जब राजा जयसिंह ने मुगलों के दबाव में उनके विरोधियों के प्रति कठोर व्यवहार किया, तो बिहारी ने दुख और विरोध प्रकट करते हुए लिखा-

"स्वारथु, सुकृतु न श्रम वृथा, देखि बिहंग बिचारि.
बाक पराएँ पानि परि, तू पच्छीनु न मारि.."

बिहारी का समय भक्ति की आध्यात्मिकता से हटकर भौतिकता की ओर बढ़ रहा था. उनके काव्य में राधा-कृष्ण का प्रेम ईश्वरीय न होकर मानवीय और सांसारिक रूप में प्रकट होता है. रीतिकाल की कविता में जहाँ श्रृंगार में भक्ति और भक्ति में श्रृंगार का अद्‌भुत संगम है, वहीं बिहारी की रचनाओं में यह भाव और अधिक सजीव और मानवीय बन जाता है. बिहारी का कवि-व्यक्तित्व सामंती समाज में रहते हुए भी उसकी आलोचना करता है. उन्होंने जीवन के गहरे अनुभवों और लोक-नागर दोनों की सूक्ष्म समझ के आधार पर अपने समय की सामाजिक और राजनीतिक संकीर्णताओं पर तीखे व्यंग्य किए.

उनकी अमर कृति 'बिहारी सतसई' में लगभग 719 दोहे और सवैये संग्रहीत हैं. यह मुक्तक परंपरा की उत्कृष्ट रचना है. इसकी प्रसिद्धि को दर्शाने वाला यह दोहा आज भी कहा जाता है-

"सत्तसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर,
देखन में छोटे लगें, घाव करें गंभीर."

'बिहारी सतसई' को उसकी गहराई और सूक्ष्मता के कारण 'गागर में सागर' कहा गया है. इसमें नायक-नायिका भेद, अलंकार, प्रेम, सौंदर्य, भक्ति और नीति की सुंदर झलक मिलती है. जैसे भक्तिकाल में 'रामचरितमानस' का आदर है, वैसे ही रीतिकाल में 'बिहारी सतसई' को कवियों, आलोचकों और इतिहासकारों ने अत्यंत प्रशंसा दी है. इस ग्रंथ पर अनेक टीकाएँ लिखी गई- पहली टीका 1662 ई. में कृष्णलाल जी ने लिखी. बाद में सुरति मिश्र की 'अमर चंद्रिका', हरिचरणदास की 'हरिप्रकाश', लल्लूलाल की 'लाल चंद्रिका' जैसी प्रसिद्ध टीकाएँ आई. आधुनिक काल में लाला भगवानदीन की 'बिहारी बोधिनी', पं. जगन्नाथदास रत्नाकर की 'बिहारी रत्नाकर' और पद्मसिंह शर्मा की 'संजीवनी भाष्य' ने इस कृति की महत्ता को और बढ़ाया. हिंदी के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं में भी 'बिहारी सतसई' पर टीकाएँ और भाष्य लिखे गए, जो इसकी स्थायी लोकप्रियता और साहित्यिक महत्ता का प्रमाण हैं.

13.5 सतसई परंपरा और बिहारी सतसई

'सतसई' शब्द संस्कृत के 'सप्तशती शब्द का अपभ्रंश है. साहित्य में मार्कन्डेय पुराण में दर्ज 'दुर्गासप्तशती' सप्तशती श्रृंखला की आरंभिक रचना है किन्तु यह रचना धार्मिक है. हिंदी की सतसई परंपरा ने; जिन रचनाओं से प्रभाव ग्रहण किया उसमें प्रथम कृति राजा हाल कृत 'गाथा सप्तशती' है. 700 गाथाओं की यह रचना प्राकृत भाषा में है. इस रचना में प्रेम और श्रृंगार का मनोहारी चित्रण है. संस्कृत के सतसई ग्रंथों में अनेक ग्रंथ 'शतक ग्रंथ' हैं, जो सतसई परंपरा में ही गिने जाते हैं. सतसई साहित्य में 'गाथा सप्तशती' के बाद

भर्तृहरि का 'श्रृंगार शतक', 'वैराग्य शतक' और 'नीति शतक' का नाम शुमार किया जाता है.

इन कृतियों में श्रृंगार के ऐहिक वर्णन के साथ नीति-कथन का आकर्षक वर्णन किया गया है. इसी परंपरा में कवि अमरुक के 'अमरुक शतक' का नाम लिया जाता है. 'अमरुक शतक' में श्रृंगार का लालित्यपूर्ण चित्रण है. हिंदी की सतसई परंपरा पर 'अमरुक शतक' का सर्वाधिक प्रभाव है. हिंदी में सतसई परंपरा को दो श्रेणियों में बाँटा गया है. एक श्रेणी 'सूक्ति सतसई' की है जिसमें लोक और नीति की अधिकता है. इसी श्रेणी की रचनाओं में 'तुलसी सतसई', 'रहीम सतसई' और 'वृंद सतसई' शामिल है. दूसरी श्रेणी की सतसई परंपरा को 'श्रृंगार सतसई' कहा गया, इस परंपरा में 'बिहारी सतसई' और 'मतिराम सतसई' जैसी रचनाएँ हैं.

हिंदी की सतसई की परंपरा में 'बिहारी सतसई' सर्वोत्कृष्ट रचना है. 'बिहारी सतसई' में श्रृंगार, प्रेम, नीति, भक्ति, ज्योतिष और सौंदर्य की सुंदर-प्रौढ अभिव्यक्ति है. भाषा की समाहार शक्ति की यह अद्‌भुत कृति है. दोहा जैसे लघु छंद में बिहारी ने लोक और शास्त्र, प्रेम और सौंदर्य, भक्ति और नीति का विरल संयोग किया है. भाव-सघनता और वचन-वक्रता का सुंदर काव्य है - 'बिहारी सतसई'. नायक-नायिका का हाव-भाव, प्रेम, सौंदर्य और श्रृंगार को भाषा की चित्रात्मकता में जैसा 'बिहारी सतसई' में पेश किया गया, वैसा उत्तर मध्यकाल के अन्य कवियों में दुर्लभ है. निम्नलिखित दोहे में ही इस बात की प्रामाणिकता है, जिसमें नायक-नायिका के द्वारा नेत्रों की भाषा का सुंदर प्रयोग है-

"कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात.
भरे भौन मैं करत है, नैननु हीं सब बात."

'बिहारी सतसई' मुक्तक परंपरा की भी सर्वोत्कृष्ट कृति है. 'बिहारी सतसई' अपनी समाहार शक्ति के कारण दोहे जैसे छोटे छंद में जीवन की, संवेदना की, प्रेम की, भक्ति की, श्रृंगार की, अलंकार की, रस की अद्‌भुत छटाएँ धारण की हुई है. आधुनिक काल में सतसई परंपरा में जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' कृत 'उद्धव शतक' और वियोगी हरि का 'वीर सतसई' शामिल है, लेकिन इन रचनाओं में बिहारी सतसई जैसी विविधता और गहराई नहीं है.

13.6 बिहारी सतसई : महत्त्वपूर्ण दोहों की व्याख्या

बिहारी की रचना 'बिहारी सतसई' से उद्‌भुत कुछ महत्त्वपूर्ण दोहे और उनकी व्याख्या यहाँ दी गई है, जो बिहारी की सर्जनात्मकता और उनके काव्य के सौन्दर्य, सूक्ष्मता, समाहार शक्ति इत्यादि की परिचायक है-

1. मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोय.
जा तन की झाँई परे, स्याम हरित दुति होय.

शब्दार्थ :

भव = संसार, झाँई = परछाई, आभा, झलक, ध्यान

प्रसंग :

प्रस्तुत दोहा बिहारी जी ने अपनी सतसई की निर्विघ्न समाप्ति की कामना से मंगलाचरण के रूप में लिखा था. राधा जी से वे सांसारिक बाधा को दूर करने की प्रार्थना करते हैं. प्रस्तुत दोहे में कवि ने 'झाँई', 'स्यामु', तथा 'हरित-दुति' आदि शब्दों के तीन-तीन अर्थ रखकर एक ही वाक्य के तीन अलग- अलग भाव निकाले हैं, जो इस प्रकार हैं-

व्याख्या :

1. जिसके तन की आभा पड़ने से श्याम वर्ण वाले श्री कृष्ण हरे रंग की कान्ति वाले हो जाते हैं, वही राधा नागरी, मेरी भव या सांसारिक बाधा हरो.
2. जिसके तन की झाई अर्थात् झलक आँखों में पड़ने से श्री कृष्ण प्रसन्न हो जाते हैं वही राधा नागरी, मेरी भव बाधा हरो.
3. जिसके तन का अर्थात् रूप का ध्यान पड़ने से काले रंग (अर्थात पाप, कलुष सब) हरित द्युति अर्थात् धुल जाते हैं वही राधा नागरी, मेरी भव बाधा हरो.

विशेष:

1. सतसई का मंगलाचरण दोहा
2. श्लेष अलंकार

2. **या अनुरागी चित्त की, गति समुझे नहिं कोइ.**
ज्यौं-ज्यों बूड़े स्याम रंग, त्यौं-त्यौं उज्जल होइ.

शब्दार्थ :

अनुरागी = प्रेमी, गति = चाल, स्याम = श्री कृष्ण, काला रंग, उज्जल निर्मल, पवित्र, श्वेत

प्रसंग :

अपने आराध्य देव श्रीकृष्ण की भक्ति की महिमा का गान करते हुत कवि कहते हैं कि-

व्याख्या :

ईश्वर के प्रति अनुराग रखने वाले भक्त के मन को कभी कोई समझ नहीं पाता है. क्योंकि वह जैसे-जैसे श्याम रंग में अर्थात् श्रीकृष्ण के रंग में डूबता जाता है वैसे-वैसे वह उज्ज्वल अर्थात निर्मल होता जाता है. अर्थात् हम जैसे-जैसे भक्ति में एकाग्रता स्थापित करते हैं वैसे-वैसे हमारे मन पर भक्ति का प्रभाव बढता जाता है. हम उतने ही मन से शुद्ध होते जायेंगे. कृष्ण भक्ति का प्रभाव ही कुछ निराला है.

विशेष :

1. भक्ति की महिमा का गान
2. विरोधाभास अलंकार

3. कोऊ कोरिक संग्रहौं, कोऊ लाख हजार.
मो सम्पति जदुपति सदा, बिपति-बिदारनहार..

शब्दार्थ :

कोरिक = करोड़ के अनुमान, संग्रहौ बटोरो, जोड़ो, लाख हजार = दस करोड़

प्रसंग :

संसार के लौकिक धन से अधिक मूल्यवान ईश्वर का भक्ति रूपी अलौकिक धन है. कवि बिहारी यही बात प्रस्तुत दोहे के माध्यम से कहते हैं कि-

व्याख्या :

चाहे कोई करोड़ों का संग्रह करे या कोई दस करोड़ का धन संग्रह करे; मेरे लिए वह कुछ नहीं है. मेरी सम्पत्ति तो यदुपति श्री कृष्ण हैं जो सारे दुखों का नाश करने वाले हैं. अतः ईश्वर भक्ति ही हमारी सच्ची सम्पत्ति होनी चाहिए. कवि का स्पष्ट मानना है कि एकत्रित किया गया लौकिक धन एक दिन नष्ट हो जाएगा किन्तु आध्यात्मिक धन जन्म-जन्मान्तर साथ निभाता है. यहाँ भक्ति भावना पर कवि ने अधिक बल देते हुए समाज को लौकिक जीवन की समृद्धि के बदले आध्यात्मिक दिशा से समृद्ध होने का सन्देश दिया है.

4. कनक कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय.
इह खाए बौराए जग, उह पाए बौराए.

शब्दार्थ :

मादकता = उन्मत्त करने की शक्ति, अधिकाय = बढ़ जाता है

प्रसंग :

बिहारी लोगों को सतर्क करते हुए तथा समाज की वास्तविकता को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि-

व्याख्या :

सोने में धतूरे से भी सौ गुनी अधिक मादकता है. धतूरे को तो खाने के बाद व्यक्ति पागल हो जाता है लेकिन सोने को तो प्राप्त करते ही मनुष्य पागल हो जाता है. ऐसी मान्यता है कि धनिक बनने पर बहुत अभिमानी बन जाते है. ऐसे लोगों पर धन का पागलपन चढ़ जाता है. धतुरा खाना अयोग्य है किन्तु कवि अपना आक्रोश व्यक्त करता हुआ कहता है कि ऐसे लोग समाज के कुछ काम न आकर केवल अपने धन के नशे में ही डूबे रहते हैं.

विशेष :

1. यमक अलंकार
2. काव्यलिंग अलंकार

5. जप माला छापैं तिलक, सरै न एकौ कामु.
मन काँचै नाचै वृथा, साँचै राँचै रामु ..

शब्दार्थ :

जपमाला = जपने की माला, छापैं = विभिन्न धार्मिक चिन्ह, मन काँचे कच्चे = मन वाला, राँचै = तप्त मुद्रा

प्रसंग :

कवि बिहारी ने समाज के झूठे कर्मकांडों पर निशाना साधते हुए कहा है कि-

व्याख्या :

केवल जप, माला, तिलक आदि से ईश्वर प्राप्त नहीं होते. हमारा मन जब तक व्यर्थ के कर्मकाण्डों में भटकता रहेगा तब तक ईश्वर हमसे दूर है. सच्चे मन से ईश्वर की शरण में जाने पर उसकी प्राप्ति संभव है. समाज में ईश्वर भक्ति एक दिखावा बन

गया है. समाज में पाखंडियों का बोलबाला हो गया है, बिहारी ऐसे लोगों पर व्यंग्य करते हुए ईश्वर प्राप्ति का सही मार्ग दिखाते हैं.

विशेष :

1. बनावटी भक्ति पर निशाना साधा गया है.

6. नर की अरु नल-नीर की, गति एकै करि जोइ.
जेतौ नीचौ हवै चलै, तेतौ ऊँचौ होइ.

प्रसंग :

इस दोहे में कवि मनुष्य की विनय विवेक भावना से परिचित कराते हुए कहते हैं-

व्याख्या :

यहाँ नल और मनुष्य की एक ही तरह की व्यवस्था करके बताया है कि जिस प्रकार नल को नीचे की तरफ करते हैं तो उसका पानी ऊपर की और उठता है ठीक वैसे ही मनुष्य का स्वभाव जितना विनम्र होगा वह उतना ही ऊँचा उठता है या श्रेष्ठ होता है. कवि कहता है कि हमें मनुष्य जन्म मिला है तो हमें अपने जीवन में सद्‌गुणों का ही विकास करना चाहिए. दुर्गुणों से भरा मनुष्य किसी का भी आदर प्राप्त नहीं कर सकता. समाज में बड़ा होना जन्म से नहीं किन्तु सगुणों एवं सत्कर्मों से माना जाता है. यह नीतिपरक दोहा हमें नम्रता के मूल्य का सन्देश देता है.

7. बढ़त-बढ़त सम्पति-सलिलु, मन-सरोजु बढ़ि जाइ.
घटत-घटत फिरि न घटै, बरु समूल कुम्हिलाइ ..

शब्दार्थ :

सलिल = जल, सरोज = कमल

प्रसंग :

इस दोहे में कवि धन और मन के संदर्भ में मनुष्य के उचित विवेक की आवश्यकता से परिचित कराते हुए कहते हैं-

व्याख्या :

जिस प्रकार धन-रूपी जल के बढ़ने से मन-रूपी कमल विकसित होता जाता है. परन्तु जैसे-जैसे धन-रूपी जल घटता जाता है, वैसे-वैसे मन-रूपी कमल घटने की बजाय जड़ से ही मुरझा जाता है. ठीक उसी प्रकार गरीब व्यक्ति के पास धन की वृद्धि होने पर वह उदारजीवी हो जाता है परन्तु धन के घटने पर भी वह वैसा ही बना रहता है. परिस्थिति के अनुसार स्वयं के स्वभाव में परिवर्तन न लाने के कारण उसका समूल नाश ही सम्भव है.

8. जौ चाहत चटक न घटै, मैलो होई न मित्त.
रज राजसु न छुवाई, तौ नेह-चीकनौ चित्त.

प्रसंग :

प्रस्तुत दोहे के माध्यम से बिहारी मन की शुद्धता की ओर संकेत देते हुए कहते हैं कि-

व्याख्या :

जिस प्रकार किसी वस्तु पर चिकनाई लगी हो तो उस पर धूल के कण शीघ्र ही जमा हो जाते हैं और उसकी चमक को नष्ट कर देते हैं ठीक उसी प्रकार शुद्ध मन या गुणों वाले व्यक्ति को अहंकार, क्रोध जैसे रजो गुण मैला कर देते हैं. अतः मनुष्य को क्रोध, अंहकार आदि से स्वयं को दूर रखना चाहिए.

9. घरु-घरु डोलत दीन है, जनु-जनु जाचतु जाइ.
दियें लोभ-चसमा चखनु, लघु पुनि बड़ौ लखाई.

प्रसंग :

जहाँ लोभवृति का विरोध करते हुए कवि कहते हैं कि-

व्याख्या :

यदि कोई लोभी व्यक्ति है तो उसे अपनी लोभवृति के कारण समाज के अच्छे-बुरे लोगों की पहचान नहीं होती. वह व्यक्ति योग्य और अयोग्य व्यक्ति के बीच भेद नहीं कर सकता. उसे अयोग्य भी योग्य ही नजर आता है. अपने लोभ के कारण वह दर-दर भटकता रहता है. अधिक लोभ-वृत्ति के कारण हम अपना विवेक भूल जाते है. कवि का आशय है कि लोभी लोगों को सत-असत के बीच की भिन्नता का बोध नहीं होता. वे केवल अपने लोभ में ही अंधे होते हैं. जो समाज के लिए हानिकारक होते हैं.

10. तौ लगु या मन-सदन मैं, हरि आवै कीन्हि बाट.
विकट जटे जौं लगु निपट, खुटै न कपट-कपाट.

प्रसंग :

कपटी भक्तो के लिए कवि ने कहा है कि यदि ईश्वर को अपने हृदय में बसाना हो, तो कपट को त्याग दो.

व्याख्या :

जिस प्रकार हमारे घर का द्वार बंद होने पर कोई प्रवेश नहीं कर सकता वैसे ही हमारे मन का द्वार बंद होने पर ईश्वर का प्रवेश नहीं हो सकता. संसार में कई तरह के लोग देखे जाते हैं. कोई सरल इन्सान है तो कोई दुर्गुणों से भरा है. कवि का यहाँ संकेत है कि यदि मन रूपी मन्दिर में कोई छल-कपट या बुराईयाँ है तो हम ईश्वर की साधना नहीं कर पाएंगे. जीवन को सुखी बनाने के लिए हमें हमारे जीवन की बुराईयों को दूर करना होगा.

13.7 सार-बिंदु

- रीतिसिद्ध कवियों ने रीतिकाव्य की परिपाटी में आस्था तो रखी, पर लक्षण ग्रंथों की रचना नहीं की.
- रीतिसिद्ध कवियों ने नीति, भक्ति जैसे विषयों पर भी रचनाएँ कीं. इस धारा के प्रमुख कवियों में बिहारी सर्वाधिक प्रख्यात हैं.
- रीतिसिद्ध कवियों में बिहारी के अतिरिक्त कविवर वृंद, कवि बेनी, कृष्ण कवि, नृप शंभू, ग्वाल कवि, कवि रामसहाय, कवि हठी, कवि पजनेस आदि कवि प्रमुख हैं.
- बिहारी की एकमात्र रचना 'बिहारी सतसई' है. यह मुक्त काव्य है, इसमें 719 दोहे संकलित हैं.

- बिहारी जयपुर के राजा जयसिंह के आश्रित कवि थे. उन्होंने जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब - इन तीनों के शासन-काल की नीतियाँ और जीवन शैली को नज़दीक से देखा.
- 'बिहारी सतसई' को उसकी गहराई और सूक्ष्मता के कारण 'गागर में सागर' कहा गया है. इसमें नायक-नायिका भेद, अलंकार, प्रेम, सौंदर्य, भक्ति और नीति की सुंदर झलक मिलती है.
- सतसई साहित्य में 'गाथा सप्तशती' के बाद भर्तृहरि का 'श्रृंगार शतक', 'वैराग्य शतक' और 'नीति शतक' का नाम शुमार किया जाता है. हिंदी की सतसई की परपरा में 'बिहारी सतसई' सर्वोत्कृष्ट रचना है.
- 'बिहारी सतसई' भाषा की समाहार शक्ति की अद्‌भुत कृति है. दोहा जैसे लघु छंद में बिहारी ने लोक और शास्त्र, प्रेम और सौंदर्य, भक्ति और नीति का विरल संयोग किया है.
- भाव-सघनता और वचन-वक्रता का सुंदर काव्य है - 'बिहारी सतसई'. नायक-नायिका का हाव-भाव, प्रेम, सौंदर्य और श्रृंगार को भाषा की चित्रात्मकता में जैसा 'बिहारी सतसई' में पेश किया गया, वैसा उत्तर मध्यकाल के अन्य कवियों में दुर्लभ है.

13.8 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

(अ) निबंधात्मक प्रश्न :

1. रीतिसिद्ध कविता क्या है? रीतिसिद्ध कवियों का परिचय देते हुए बिहारी के काव्य का मूल्यांकन कीजिए.
2. रीतिकाल की राजनैएिक और साहित्यिक परिस्थितियों तथा उनके प्रभावों की चर्चा कीजिए.
3. बिहारी के काव्य को 'भक्ति, नीति एवं शृंगार की त्रिवेणी' क्यों कहा जाता है? स्पष्ट कीजिए.
4. रीतिसिद्ध कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों पर सविस्तार प्रकाश डालिए.
5. हिन्दी सतसई परंपरा का परिचय दीजीए एवं सतसई परंपरा में 'बिहारी सतसई' का महत्व बताइए.

(ब) टिप्पणीपरक प्रश्न :

1. रीतिसिद्ध कविता के प्रमुख कवि और उनका कृतित्व
2. रीतिकाल की काव्य-भाषा
3. बिहारी के काव्य की भाषा एवं शिल्प
4. सतसई परंपरा के ग्रंथों का परिचय
5. बिहारी के काव्य में लोक-नीति का पक्ष

(स) वैकल्पिक प्रश्न :

1. रीतिकाल की कितनी काव्य-धाराएँ हैं?

   (A) एक (B) दो (C) तीन (D) चार

2. रीतिसिद्ध काव्यधारा के प्रमुख कवि कौन हैं?

(A) केशवदास (B) बिहारी (C) चिंतामणि (D) मतिराम

3. 'बिहारी सतसई' में कितने दोहे माने गए हैं?

(A) 700 (B) 719 (C) 720 (D) 729

4. कवि बिहारी किस राजा के आश्रित कचि थे?

(A) राजा जयसिंह (B) राजा मानसिंह

(C) राजा छत्रसाल (D) राजा इंद्रजीत सिंह

5. 'बिहारी सतसई' किस प्रकार का काव्य है?

(A) प्रबंध काव्य (B) मुक्तक काव्य

(C) चंपू काल्य (D) खंडकाव्य

6. बिहारी को मूलतः कैसा कवि माना जाता है?

(A) श्रृंगारी कवि (B) भक्त कवि

(C) 'अ' और 'ब' दोनों (D) इनमें से कोई नहीं

13.9 उपयोगी अध्ययन सामग्री

1. बिहारी का नया मूल्यांकन, डॉ. बच्चन सिंह
2. रीतिकाल, डॉ. नगेन्द्र
3. रीतिकाव्य की भूमिका, डॉ. रामस्वरुप चतुर्वेदी
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आ. रामचन्द्र शुक्ल
5. बिहारी का काव्य, हरिमोहन मालवीय
6. बिहारी रात्नाकर, सं. जगन्नाथ दास रत्नाकर
7. बिहारी की वाग्विभूति, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
8. बिहारी सार्धसती, डॉ. ओम्प्रकारा

इकाई 14 रीतिमुक्त काव्य - घनानंद के कवित्त

रूपरेखा

14.1. उद्देश्य

14.2. प्रस्तावना

14.3. रीतिमुक्त काव्य का स्वरूप

14.4. रीतिमुक्त काव्य में घनानंद का स्थान

14.5. घनानंद के कवित्तों में श्रृंगार

14.6. घनानंद के कवित्तों में वेदना का स्वर

14.7. घनानंद के कवित्तों में प्रेमानुभूति

14.8. घनानंद के कवितों में भक्ति भावना

14.9. घनानंद के कवितों का काव्य सौष्ठव

14.10. सारबिंदु

14.11. परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

- विस्तृत उत्तर बाले प्रश्न
- टिप्पणी
- वस्तुनिष्ठ प्रश्न

14.12. उपयोगी अध्ययन सामग्री

- पुस्तकों के नाम
- वेबसाइट संदर्भ

14.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई 'रीतिमुक्त कवि - घनानंद के कवित्त' रीतिकालीन हिंदी साहित्य के 'प्रेम की पीर' माने जाने वाले कवि घनानंद के कवित्तों को समर्पित है. इसके अंतर्गत रीतिमुक्त काव्य की अवधारणा, घनानंद के कवि रूप तथा उनके काव्य की विशेषताओं का परिचय सन्निहित है. इस इकाई के अध्ययन उपरांत छात्र निम्नलिखि तथ्यों से अवगत हो पाएंगे -

- रीति काव्य की रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध तथा रीतिमुक्त प्रवृत्तियों में भेद समझ पाएंगे.
- रीतिमुक्त काव्य की प्रवृत्तियों, कवियों तथा तत्कालीन साहित्यिक परिस्थितियों से अवगत हो पाएंगे.
- रीतिमुक्त काव्य के प्रमुख हस्ताक्षर कवि घनानंद के काव्य तथा व्यक्तित्त्व से अवगत हो पाएंगे.
- रीतिमुक्त काव्य की आलोचनात्मक व्याख्या कर पाएंगे.
- घनानंद के कवित्तों द्वारा तत्कालीन देशकाल, वातावरण तथा परिस्थितियों से अवगत हो पाएंगे.
- घनानंद के कवित्तों के माध्यम से तत्कालीन भाषा तथा साहित्यिक मानदंडों से अवगत हो पाएंगे.

- घनानंद के कवित्तों में निहित भक्ति, वेदना तथा प्रेम आदि तत्त्वों से अवगत हो पाएंगे.
- घनानंद के कला-शिल्प के माध्यम से काव्य-सौंदर्य को समझ पाएंगे.

14.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के इतिहास में रीतिकालीन काव्य की कालावधि संवत् 1700 से 1900 तक मानी जाती है. इस कालखंड को राजनीतिक-सामाजिक दृष्टि से अत्यधिक उतार-चढ़ाव भरा समय माना गया है. नादिरशाह का दिल्ली पर आक्रमण इसी कालावधि (1739 ई.) में हुआ था. दिल्ली दरबार ने अनेक मुगल शासकों के सिर से ताज सजते और उतरते देखे थे. इन्हीं मुगल शासकों में मुहम्मद शाह रंगीला हुए, जिनके दरबार में घनानंद कवि विद्यमान थे. इनका प्रेम राजदरबार की नर्तकी सुजान से हुआ, जिसमें ये विफल रहे. फलतः इनके काव्य में इसकी पीड़ा भी उजागर हुई. और इस कारण इन्हें 'प्रेम की पीर' का कवि भी कहा गया. शासक के कोपभाजन के कारण ये दरबार से निकाल दिए गए. इसके पश्चात ये संसार से विरक्त होकर वृंदावन चले गए. तथा नादिरशाह के आक्रमण के समय उसके सिपाहियों द्वारा मथुरा में मार दिए गए. जनश्रुतियों के अनुसार नादिरशाह के सिपाहियों द्वारा धन माँगने पर 'जर-जर-जर' चिल्लाने के प्रतिवाद स्वरूप घनानंद ने 'रज-रज-रज' कहते हुए तीन मुट्ठी धूल उनके ऊपर फेंक दी. जिससे क्रोधित होकर सिपाहियों द्वारा घनानंद का हाथ काट दिया गया. उस समय घनानंद ने एक कवित्त कहकर अपने कवि-कर्म का निर्वहन किया. उन्होंने लिखा -

'अधर लगे हैं आनि करि कै पयान प्रान,
चाहत चलन ये संदेसो लै सुजान को.'

यद्यपि कुछ विद्वानों का यह मानना है कि घनानंद ने यह कवित्त मरते समय न लिखकर अपने जीवनकाल में पहले ही स्वयं को मृत तुल्य मानकर लिखा था. तदुपरान्त देखे तो घनानंद का जीवन कष्टप्रद, संघर्षपूर्ण किन्तु उनकी दृढ़ संकल्पता से परिपूर्ण व्यतीत हुआ. उन्होंने अनेक रचनाएँ कीं. जिनमें घनानंद कवित्त, आनंदघन के कवित्त, सुजानहित, सुजानहित प्रबंध, वियोग बेली, इश्कलता, आनंदघन जू की पदावली तथा प्रीति पावस आदि प्रमुख रचनाएँ हैं.

घनानंद ने अपने जीवन की विकट परिस्थितियों में जीवन्तता का परिचय देखते हुए रीतिकालीन काव्यबद्धता से भिन्न लेखन किया तथा प्रेम, भक्ति व शृंगार के स्वच्छंद व मुक्त कवि के रूप में ख्यातिलब्ध हुए. इनकी अपनी निधि साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में 'प्रेम की पीर' के कवि रूप में ज्ञात है. ये ब्रजभाषा के अद्‌भुत कवि दृष्टिगोचर हैं. इनकी भाषा-शैली, कवि-कर्म तथा काव्य-कौशल का स्वच्छंद-मुक्त विवेचन प्रस्तुत इकाई-14 में रीतिमुक्त काव्य के संदर्भ में विशेष रूप से किया गया है.

14.3 रीतिमुक्त काव्य का स्वरूप

हिंदी साहित्य का इतिहास आदिकाल (संवत् 1050-1375), भक्तिकाल (संवत् 1375-1700), रीतिकाल (संवत् 1700-1900) तथा आधुनिक काल (संवत् 1900 से अब एक) के रूप में विभक्त है. इस संदर्भ में रीतिकाल का उल्लेख करें तो इस काल में रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध तथा रीतिमुक्त काव्यधारा का वर्णन मिलता है.

रीतिबद्ध कवियों में देव, पद्माकर, मतिराम तथा भूषण आदि प्रमुख कवियों का वर्णन मिलता है. जिन्होंने अपने काव्य में नायिका के स्वरूप, उसके नखशिख वर्णन, अलंकार, शृंगार तथा काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों का प्रधान रूप से विवेचन किया है. वहीं रीतिसिद्ध कवियों में बिहारीलाल, सेनापति, रसनिधि, गिरधर कविराय तथा वृंद आदि का नाम आता है, जिन्होंने

नीतिपरक दोहा-कवित्तों की रचना की. इसी परिदृश्य में रीतिमुक्त काव्यधारा का भी वर्णन मिलता है जो रीतिकालीन हिंदी साहित्य के तीन आधार स्तंभों में प्रमुख स्थान रखती है. रीतिमुक्त काव्य से तात्पर्य है रीति-परंपरा के विभिन्न मापदंडों व शास्त्रीय विधानों से मुक्त काव्य. रीतिकाल में मुख्य रूप से दरबारी कवियों द्वारा आश्रयदाता राजा की प्रशस्ति, आमोद-प्रमोद, विलासिता, कामुकता की पूर्ति तथा नायिका-भेद का वर्णन किया गया है. रीतिबद्ध व रीतिसिद्ध कवियों की तुलना में रीतिमुक्त कवि राजा के दरबार में न रहकर स्वच्छंद काव्य की रचना करते दृष्टिगोचर हैं. उदाहरणार्थ घनानंद, आलम, ठाकुर तथा बोधा कवियों को देखा जा सकता है. बोधा ने 'विरहवारीश' तथा 'इश्कनामा' कृतियाँ लिखी हैं, जिनमें 'विरहवारीश' प्रबंध काव्य माधवानल-कामकंदला की प्रेमकथा पर आधारित रचना है. वहीं 'इश्कनामा' प्रेम पर आधारित मुक्तक संग्रह है. इसी प्रकार आलम कवि ने 'आलमकेलि' की रचना की, जिसमें उन्होंने अपने और शेख रंगरेजिन की प्रेमानुभूति का काव्यपरक वर्णन किया है. इस क्रम में घनानंद प्रमुख रीतिमुक्त कवि हैं. जिन्होंने 'सुजानचरित' काव्य की रचना की. जिसमें उन्होंने मुगल शासक मुहम्मद शाह रंगीला के दरबार में रहते हुए, सुजान नामक राजनर्तकी के प्रति अपने गहरे प्रेम की अभिव्यक्ति की है. यद्यपि प्रेम में असफलता, मुगल शासक के कोपभाजन तथा दरबार से निकाले जाने पर घनानंद में विरक्ति भाव उत्पन्न हुआ और वे वृंदावन चले गए. इसी दौरान नादिरशाह के दिल्ली आक्रमण में लूटेरे सिपाहियों द्वारा मथुरा-वृंदावन पर लूटपाट मचाने के मध्य घनानंद के विरोध के कारण उनकी हत्या कर दी गई. फलतः घनानंद आजीवन प्रेम की पीड़ा तदुपरांत विरक्ति के भाव से अनुप्राणित रहे. इसी कारण इनके काव्य में रीतिमुक्त काव्य का भाव विद्यमान है. वस्तुतः वे श्रृंगार, भक्ति भाव तथा प्रेमानुभूति की मौलिक उद्‌भावना के आधार पर प्रमुख रीतिमुक्त कवि दृष्टिगोचर होते हैं.

रीतिकाल में रीतिमुक्त कवियों की प्रवृत्ति तथा प्रकृति सरल-सहज रचनाकारों की है. इनके काव्य में रीतिकालीन साहित्यिक परंपरा का लोप है. इनमें प्रेमानुभूति, भावावेग की तीव्रता है. इनके काव्य में बौद्धिकता, विलासिता, सांसारिकता तथा नीतिपरकता लुप्तप्राय है. यद्यपि आत्माभिव्यक्ति, लौकिक प्रेमव्यथा, विरह-वेदना तथा मानवीय करुणा-संवेदना का वर्णन रीतिमुक्त कवियों की रचनाओं में वर्णित है. घनानंद तथा आलम कवि इस परिप्रेक्ष्य में प्रमुख रीतिमुक्त कवियों में हैं. जिनकी कवित्त रचनाओं में सुजानहित तथा आलमकेलि मुख्य रूप से दर्शनीय है.

रीतिमुक्त कवियों के काव्य की भाषा भी सरल-सहज है. मुख्य रूप से जनमानस की ब्रजभाषा में ही रीतिमुक्त कवियों की रचनाएं मिलती हैं. यह अवश्य है कि मुगलकालीन दरबार में समय व्यतीत करने के कारण फारसी शैली और शब्दों का प्रयोग इनकी रचनाओं में हुआ है. किन्तु इसके उपरांत भी इनके कवित्तों की मार्मिकता, प्रेमानुभूति तथा वेदना का प्रभावी स्वर रीतिमुक्त काव्य में स्पष्ट रूप से मिलता है.

14.4 रीतिमुक्त काव्य में घनानंद का स्थान

रीतिकालीन हिंदी साहित्य के प्रतिष्ठित कवियों में घनानंद का स्थान अग्रणी है. वे रीतिमुक्त काव्य के ऐसे सशक्त रचनाकार हैं, जिनकी रचनाओं में प्रेम की गहरी भावनाएँ, विरह-वेदना और मानवीय भावनाओं का अत्यंत मार्मिक चित्रण मिलता है. रीतिकालीन हिंदी साहित्य की रीतिमुक्त काव्य परंपरा के कवि घनानंद भक्ति, श्रृंगार तथा प्रेमानुभूति की त्रिवेणी के अनुपम कवि हैं. उनके कवित्तों में राधा-कृष्ण का शृंगारपरक वर्णन संयोग व वियोग दोनों रूपों में मिलता है, जो अन्य रीतिमुक्त कवियों की तुलना में अधिक प्रभावी है. घनानंद की यह उपलब्धि उनके जीवन के अनुभवों, काव्य-कौशल तथा समकालीन कवियों- आलम, बोधा और ठाकुर आदि के समकक्ष प्रतीत होती है. इनके काव्य की पद्धति जितनी प्रभावी

लक्षित हुई है, उसका निमित्त इनके सामाजिक संस्कार तथा मानसिक क्रिया-कलापों का व्यापार है. घनानंद की प्रमुख विशेषता आत्माभिव्यक्ति है. उनकी काव्य शैली में एक प्रकार की वैयक्तिकता का भाव है. यह भी कहा जा सकता है कि उनका काव्य स्वयं की अनुभूति का परिणाम है. इसी कारण उनके कवित्तों में उनकी प्रेम की पीड़ा का सजीव और स्पष्ट चित्रण दिखाई देता है, इनमें उनकी प्रेयसी का सुजान नाम मिलता है. यद्यपि वे खुले तौर पर इसका उल्लेख नहीं करते हैं, किंतु इन्होंने अपने कवित्तों में नायिका का अत्यंत मार्मिक तथा आत्मीय चित्रण किया है. यह उनके जीवन की व्यथा-अनुभूतियों का सजीव चित्रण है. एक उदाहरण देखें-

"जासों प्रीति ताहि निठुराई सों सों निपट नेह,
कैसे करि जिय की जरनि सो जताइये.
महा निरदई दई कैंसें कैं जिबाऊँ जीव,
वेदना की बढ़वारि कहाँ लौं दुराइये.
दुःख को बाखाने करिबे कौं रसना कैं होति,
गेपै कहूँ वाको मुख देन न पाइये."

इसी प्रकार इन्होंने अपने विरक्त भाव को अत्यन्त मार्मिक रूप में राधा-कृष्ण के प्रसंगों द्वारा व्यक्त किया है. जहाँ वे लिखते हैं-

"ऐरी रूप अगाधे राधे, राधे राधे राधे राधे.
तेर मिलिबे को ब्रज मोहन, बहुत जतन हैं साधे..
उनके निसिदिन लगी रहै जक तू न धरति पल आधे.
आनंद घन पिय चातक चौंपनि हाँ राधे हाँ राधे.."

घनानंद ने यहाँ पर कृष्ण व राधा के नायक-नायिका रूपी दृश्य के माध्यम से राधा के प्रति कृष्ण के अगाध प्रेम को दर्शाया है, जहाँ कृष्ण ब्रज में राधा से मिलने के लिए प्रतिदिन अनेक प्रयत्न करते हुत दिखाई देते हैं. घनानंद चातक पक्षी के मेघ वर्षा से प्यास बुझाने के प्रसंग तथा कृष्ण द्वारा राधा से मिलन की अभिलाषा को समकक्ष ठहराते हैं. जो कि घनानंद द्वारा विशिष्ट उक्ति, काव्य में चमत्कार उत्पन्न करने के कारण दर्शनीय है. यह अवधारणा घनानंद को लोकजीवन के वर्ण्य-विषयों से भी जोड़ती है. अतः स्पष्ट है कि घनानंद का कवि हृदय, सौकुमार्य है. वे जीवन के कवि हैं. इसलिए उनके काव्य में जीवन के विविध पक्षों और उसके अनुभवों का वर्णन मिलता है. ये किसी दरबारी कवि के रूप में अपने आश्रयी राजा की विलासिता, कामुकता तथा मिथ्या प्रशंसा में अपनी देयता सिद्ध नहीं करते हैं बल्कि जीवन में मोह, विरक्ति, प्रेम, उसकी वेदना और आजीवन भक्ति मार्ग पर चलते हुए प्राण को त्यागने की विभिन्न अनुभूतियों को बड़ी सहजता से प्रकट करने वाले जीवट किस्म के रचनाकार हैं. साहित्य में इस प्रकार की जीवटता, साहस तथा विसंगतियों से संघर्ष करने की हिम्मत, अन्यत्र किसी कवि में दिखाई नहीं पड़ती है. इनकी भाषा शैली का मर्म तथा उसकी जीवंतता इनकी प्रसिद्धि का प्रमुख कारण है. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ब्रजभाषा के महान कवियों में घनानंद को विशेष रूप से स्वीकृति प्रदान करते हैं. घनानंद के हृदयगत कवित्त विकास को दें तो उन्होंने भारतीय दर्शन, परम्परा, तथा त्योहारों आदि का चित्रण बड़े ही सधे और सटीक रूप में किया है. वे नायिका के दर्शन के रूप-चित्रण को होली के त्यौहार में गुलाल से भरे बदन और साँसों से उठती कपूर की सुगंध के माध्यम से करते हैं. घनानंद लिखते हैं कि मेरी जान से प्यारी सुजान के अंग में यह फाग का राग व गुलाल की सुगंध बस गई है-

"दसन-बसन ओलो भरिये रहै गुलाल,
हँसनि-लसनि त्यौं कपूर सरस्यौ कटै.
साँसनि सुगंध सोंधे कोरिक समोच धटे,
अंग-अंग रूप रंग रस बरस्यो कटै.
जान प्यारी तो तन आनंद घन-हित नित,
अमित सुहाग-राग फाग दरस्यौ कटै."

अतः यहाँ पर घनानंद ने होली में गुलाल और फाग-राग के माध्यम से नायिका का उन्मत चित्रण कर अपने काव्य-सौष्ठव कला का परिचय दिया है. घनानंद के काव्य सौष्ठव का अप्रतिम रूप उनकी भाषा-शैली में देखा जा सकता है. उदाहरण द्रष्टव्य है-

'फागुन महीना को कही ना परै बातैं दिन-
रातैं जैसे बीतत सुने तें डफ- घोर कों.'
अथवा
'सुखीन समाज साज सजे तित सेवैं सदा
जित नित नए हित-फंदनि गसत हौ.
दुख-तम-पुंजनि पठाय दै चकोरनि पै.
सुधाधर जान प्यारे भलें ही लमत हौ.'

यद्यपि घनानंद होली का रंगात्मक-श्रृंगारपरक वर्णन करते हैं सकिंतु रीतिसिद्ध और रीतिबद्ध कवियों की तरह कोई मापदंड तय नहीं करते हैं. वे केवल विषय-वस्तुगत परिप्रेक्ष्य में होली के त्यौहार को प्रस्तुत करते हैं. तथा इसका स्वच्छ और श्रृंगारपरक वर्णन राधा-कृष्ण के संदर्भ में करते हैं. शिल्प-कौशल, अलंकार, शब्द-चयन, प्रतीक, बिम्ब तथा रस आदि काव्यशास्त्रीय विधानों पर भले ही आलोचकों का ध्यान घनानंद के संदर्भ में न गया हो और इन्हें रीतिमुक्त परंपरा का कवि मानकर आलोचकों ने इनकी काव्य-कला पर दृष्टिपात न किया हो. किन्तु यह परम् सत्य है कि इनकी रचनाओं में शिल्प-सौंदर्य की वही महत्ता-गरिमा दर्शनीय है, जो रीतिबद्ध व रीतिसिद्ध कवियों मतिराम, भूषण, केशव, पद्माकर और बिहारीलाल आदि कवियों की रचनाओं में दृष्टिगोचर है.

वस्तुतः घनानंद का स्थान रीतिमुक्त काव्य परंपरा में आधार स्तम्भ कवि की है. घनानंद की मुक्त चेष्टा रीतिकालीन साहित्य परंपरा में एक जागरण के समान प्रतीत होती है. घनानंद अपने समकक्ष कवियों की तुलना में असाधारण व्यक्तित्व दिखाई पड़ते हैं. जो दरबारी परंपरा के विरोधी, विरही प्रेमी, जीवन के मर्म को समझने वाले साधक, विरक्त भाव से परिपूर्ण भक्त तथा लोकजीवन के चित्रण को रंग देने वाले कवि रूप में दर्शनीय हैं. इनकी रचनाओं का मर्म, इनकी रचनाधर्मिता, प्रेमपरकता, कला-कौशल तथा आत्माभिव्यक्ति का सुंदर रूप इनके कवित्तों में प्रकट होता है. घनानंद का कवि-व्यक्तित्व सरल, सहज और गंभीर प्रकृति का था. इनके कवित्तों में फ़ारसी शैली के साथ-साथ देशज भाषा के शब्दों का भी प्रयोग मिलता है. जिनमें ब्रजभाषा के अतिरिक्त बुंदेली तथा अरबी-फारसी के शब्दों का भी प्रयोग मिलता है. वहीं साहित्यिक कोटि में जन सामान्य का लोक कवि कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी. घनानंद न लक्षणा शब्द-शक्ति तथा रस, अलंकारों, प्रतीकों और बिम्बों आदि के द्वारा जो कवित्तों में उत्कृष्टता प्रकट की है, वह रीतिकालीन दौर में उनके काव्य-सौष्ठव को गौरवान्वित करता है. अंततः घनानंद का रीतिकालीन काव्य परंपरा में स्थान मात्र रीतिमुक्त कवि के रूप में न होकर, एक सचेत, जागरूक तथा जीवन के विविध अनुभवों को अभिव्यक्त करने वाले कवि के रूप में उल्लेखनीय है.

14.5 घनानंद के कवित्तों में शृंगार

रीतिकालीन हिंदी साहित्य में श्रृंगार रस का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है. घनानंद इस रस के श्रेष्ठ कवियों में गिने जाते हैं. उनके कवित्तों में श्रृंगार का अत्यंत मार्मिक, स्वाभाविक और हृदयस्पर्शी चित्रण मिलता है. घनानंद के यहाँ श्रृंगार केवल बाहरी सौंदर्य या अलंकारिक वर्णन तक सीमित नहीं है बल्कि उसमें गहरी आत्मीयता और व्यक्तिगत अनुभूति का समावेश है. उन्होंने प्रेम के दोनों पक्षों संयोग और वियोग का अत्यंत हृदयस्पर्शी चित्रण किया है, किंतु उनके काव्य में संयोग की तुलना में वियोग शृंगार की प्रधानता दिखाई देती है. इसका कारण इनके जीवन में प्रेम की वेदना का तीव्र वेग है. जिसकी पीड़ा इनके जीवन में भी देखी जा सकती है. इनके कवित्तों में प्रिय के प्रति गहन प्रेम, विरह की पीड़ा, मिलन की लालसा और हृदय की व्यथा अत्यंत सजीव रूप में व्यक्त हुई है. इसी कारण घनानंद के कवित्तों में श्रृंगार के संयोग पक्ष की तुलना में वियोग पक्ष का प्रकटीकरण अधिक प्रभावी बन पड़ा है. घनानंद के कवित्त में संयोग शृंगार का पक्ष दें तो-

‘लाजनि लपेटी चितवनि भेद-भाच-भरी,
लसति ललिए लोल-चख्र तिरछानी मैं.
छवि को सदन गोरो बदन, रुचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानि में.
दसन-दमक फैलि हियें मोतीमाल होति,
पिय सों लड़कि प्रेम-पगी बतरानि मैं.

यहाँ घनानंद अपनी प्रेयसी के सौंदर्य का अतिरंजन वर्णन करते हैं. उसकी लज्जा, चितवन, सौंदर्य, हँसी, वाणी, होंठों की मुस्कान, नख्रशिख्र वर्णन तथा गले की मोती की माला का सुंदर श्रृंगारपरक चित्रण प्रस्तुत करते हैं. यहाँ घनानंद द्वारा नायिका के संयोग पक्ष का श्रृंगारपरक प्रेमपूर्ण वर्णन किया गया है.

इसी प्रकार आगे एक अन्य कवित्त में मानवीय संवेदनाओं, रसों की अनुभूति तथा नायिका की चपलता की दृष्टि से घनानंद लिख्रते हैं, प्रेम तरंग में डूबे नायक-नायिका रसानुभूति से आतुर हैं, यदि वे आतुर न होते वे सयानेपन अर्थात समझदारी से न चूकते. यानी प्रेम की गहराई में न उतरते तो नायक-नायिका अधीर न होते. उन्होंने ऐसी हठ ठानी हुई है कि उनके पाँव दृढ़ नहीं हो पा रहे. उनका धैर्य टूटता जा रहा है. ऐसी छवि में घनानंद सुजान के सजे अंग से हृदय लगाए बैठे हैं-

‘आतुर है रस-आतुर होहु न
बात सचान की जात क्यौ चूके.
ऐसी अठानीन ठानत हो कित,
धीर धरौ न, परौ ढिग ढूके.
देख्रि जियौ, न छियौ घनआनंद,
कोंबरे अंग सुजान वधू के.’

यहाँ घनानंद नायिका की श्रृंगारपरक छवि का वर्णन कर उसमें डूबे प्रेमरंग का वर्णन करते हैं. यहाँ संयोग श्रृंगार का पक्ष अवश्य उभरता है किंतु प्रेम की व्याकुलता, नायिका के छवि की आकुलता से घनानंद के प्रेमरूपी विरह की अनुभूति भी प्रकट होती है. घनानंद नायिका के रूप में जिस सुजान का निरंतर संबोधन करते हैं, वह उनकी अपनी वेदना के निमित्त प्रकट होता है.

फलतः स्पष्ट होता है कि रीतिकालीन काव्य परंपरा में रति भाव और श्रृंगार रस की

व्यापक उपस्थिति रही है. पद्माकर, देव, मतिराम तथा केशवदास जैसे रीतिबद्ध कवियों ने अपने काव्यों में इसे व्यापक परिप्रेक्ष्य में चित्रण किया है. परंतु घनानंद के काव्य में श्रृंगार के दोनों रूप संयोग और वियोग का जो सजीव और मार्मिक चित्रण मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है. उनके कवित्तों में नायिका का रूप स्वच्छ, आकर्षक और भावोन्मत्त शैली में उभरता है. यद्यपि उन्होंने संयोग की अपेक्षा वियोग का अधिक प्रभावपूर्ण वर्णन किया है, जिसके कारण उनके काव्य में प्रेम-वेदना का मार्मिक स्वर उभरकर सामने आता है. इस प्रकार घनानंद रीतिमुक्त कवि के रूप में अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित करते हैं.

14.6 घनानंद के कवित्तों में वेदना का स्वर

घनानंद के कवित्तों में वेदना का स्वर अति तीव्र दर्शनीय है. वेदना मूलतः हृदय की पीड़ादायक अनुभूति है. जो संवेदनात्मक आघात के कारण प्रतिफलित होती है. साहित्य में यह घटना विरह-वियोग की दार्शनिकता द्वारा उद्घाटित होती है. अनेक कवियों ने तो अपने कवि-कर्म की पूर्णाहुति ही वेदना की अभिव्यक्ति में दे दी है. घनानंद इस परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिक कवि दृष्टिगोचर हैं. घनानंद के कवित्तों में वेदना का जो स्वर सुनाई पड़ता है वह उनकी स्वानुभूति का गंभीर स्वर है. वे जिस प्रकार अपने नायक-नायिका का संयोग-वियोग पक्ष प्रस्तुत करते हैं, वह अत्यंत मार्मिक और अनुभूतिजन्य प्रतीत होता है. वहीं विद्वानों का एक वर्ग जिसमें आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जैसे आलोचक मानते हैं कि घनानंद के कवित्तों में संयोग की तुलना में वियोग पक्ष की अभिव्यक्ति अधिक हुई है. घनानंद ने वियोग भावना का उद्धार जो अपनी लेखनी के माध्यम से प्रस्तुत किया है, वह उनकी निजी अनुभूति का परिणाम है. यद्यपि विरक्ति से अनुप्राणित होते हुए भी उनका राधा-कृष्ण का श्रृंगार चित्रण भक्ति रस की मधुर अनुभूति कराता है. जिसमें वियोग भाव का स्वानुभूतिपूर्ण पक्ष स्वतः प्रश्रय प्राप्त करता है-

'मर्म भिधै न जो लौं भरम न पावै तौ लौं.
मरमहि भेदै कैसे सुरीन धंधोड़बो..
राग ही तें राग के सरूप सौं चिन्हारि होति.
नैनहीन काननि असूझ टकटोड़बो..

X X X X X

प्रेम आगि जागें लागे झर घन आनंद को.
रोड़बो न आवै तो पै गाड़बो हू रोड़बो.'

यहाँ पर घनानंद की काव्य दृष्टि में वियोग का पक्ष अधिक मर्मस्पर्शी, पीड़ादायक तथा रागपूर्ण है. वे यह स्पष्ट करते हैं कि प्रेम में भ्रम नहीं मर्म का भेद है. मर्म का ही सुंदर व्यापार भेदा जाता है. और वाटिका में प्रेममग्न दृष्टियों का मधुर मिलन घटित होता है. यहाँ पर घनानंद वेदना स्वर के परिप्रेक्ष्य में संयोग पक्ष का प्रकटीकरण करते हैं. और इसी संदर्भ में आगे वियोग पक्ष का उद्‌गार करते हुए कहते हैं कि प्रेम संयोग भी है और वियोग भी है. दोनों ही स्थिति में घनानंद हमेशा लिप्त रहने का मंतव्य प्रकट करते हैं. दरअसल घनानंद के कवित्तों में वेदना का मुखर स्वर प्रेम की पीड़ा को प्रकट करता है. प्रेम में प्रथमतः मिलन तथा द्वितीयशः बिछड़ना विद्यमान है. यह प्रेम की बिछुड़न प्रबल वियोग को जन्म देती है. प्रेमिका को पाकर भी ना पाना एक बड़ी बिडम्बना है. जिसका वर्णन करते घनानंद लिखते हैं-

'संयोगी हूँ इश्क है, इश्क वियोगी खूब.
आनंदघन चस्मों सदा लग्यो रहे महबूब.'

अतः घनानंद के काव्य में प्रेम की वेदना संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों से उद्घाटित है. घनानंद की प्रबल वेदना का स्वर भी उनके कवित्तों में नायिका के श्रृंगार वर्णन, उसके हाव-भाव तथा श्रृंगारपरक चेष्टाओं से झलकती है. प्रेम की विरह-वेदना का जैसा मार्मिक व हृदयस्पर्शी वर्णन घनानंद करते हैं वह अन्य किसी रीतिकालीन कवि की लेखनी से उद्घाटित नहीं होता है. घनानंद अपने कवित्त में प्रेम की विरहाग्नि में जलते प्रेमी का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि मैं प्रिय की छवि को देखकर जीवित हूँ. अब सोचने मात्र से नयन जलने लगते हैं. और हृदय में पोषित वह प्राण पलता है और यह वृत्तांत महादुःख और दोष से भरा है-

'तब तौ छवि पीवत जीवत हे,
अब सोचन लोचग जात जरें.
हिय-पोष के तोष जू प्रान पले,
बितलात महा दुखः-दोष-भरे.'

यहाँ पर घनानंद ने वियोग भाव की जिस मार्मिकता से व्याख्या की है, वह रीतिकालीन कवियों के मध्य अत्यधिक प्रभावी रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होती है. जिस युग-परिवेश में नारी को वस्तुतुल्य समझा गया, वहाँ प्रेम का इतना स्वच्छ तथा निष्कलंक वेदनापूर्ण वर्णन एक विरही कवि ही कर सकता है. जिसका स्पष्ट प्रमाण उपर्युक्त कवित्त के अंश से देखा जा सकता है.

अतः स्पष्ट है कि घनानंद मूलतः जिस वेदना स्वर की अभिव्यक्ति अपने कवित्तों में करते हैं, वह किसी अन्य की नहीं वरन् उनकी अपनी स्वानुभूति है. प्रेम की यह विरह वेदना संयोग तथा वियोग दोनों भावों में घनानंद के काव्य में दिखाई पड़ती है. लोकजीवन के रंगों, राधा-कृष्ण के प्रसंगों तथा शृंगारपरक भक्ति भावपूर्ण घनानंद के पद्य उनकी प्रेम वेदना को अत्यंत निर्मल तथा मार्मिक बनाते हैं. इसी गहन विरह-वेदना, आत्मीयता और मार्मिक अभिव्यक्ति के कारण घनानंद का सम्पूर्ण काव्य प्रेम की पीड़ा का सजीव दस्तावेज बन जाता है.

14.7 घनानंद के कवित्तों में प्रेमानुभूति

घनानंद की प्रेमानुभूति रीतिकालीन अन्य कवियों की तुलना में भिन्न दिखाई पड़ती है. वे विलासी नायिका के नख-शिख वर्णन तथा परकीया-स्वकीया नारी के फेर में पड़कर अतिरंजन नहीं करते हैं. वे स्पष्ट व सरल प्रेमानुभूति को अपने कवित्तों द्वारा प्रकट करते हैं-

"अति सुधो सनेह को मारग है,
जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं.
तहाँ साँचे चलै तजि आपुनपौ,
झझकै कपटी जे निसांक नहीं.
घन आनंद प्यारे सुजान सुनो,
यहाँ एक तैं दूसरो आँक नहीं."

घनानंद के कवित्तों में उनकी प्रेमानुभूति का स्पष्ट दर्शन मिलता है. जिसके अंतर्गत वे मानते हैं कि प्रेम का अत्यंत सीधा व सरल स्वरूप होता है. वह स्नेह से परिपूर्ण है. जहाँ बांकापन या सयानापन नहीं चलता है और अपने अहंकार और स्वार्थ का त्याग करना पड़ता है, यहाँ कपट का कोई स्थान नहीं होता है. घनानंद सुजान को प्रेम-मूल्य समझाते हैं कि प्रेम में एक-दूसरे को आँका नहीं जाता बल्कि प्रेम में विलीन होना पड़ता है. त्याग, समर्पण, एकाकार होकर सहज भाव से ही प्रेम की सफल अनुभूति हो सकती है. प्रेम में आसक्त होना कोई प्रदर्शन या दिखावा नहीं है बल्कि प्रेम भाव की स्थिरता तथा मनोवृत्ति

में प्रेमी की छवि का रच-बस जाना है. आसक्ति, प्रेम में हृदय की साधना का प्रसार है. जहाँ अहंकार या कुटिलता का व्यापार नहीं बल्कि केवल मानवीय संवेदनाओं, एक-दूसरे के प्रति सहयोग तथा मूक होकर भी एक-दूसरे के सुख-दुःख को समझने की सच्ची भावना विद्यमान रहती है. घनानंद की प्रेमानुभूति में आडंबर का भाव नहीं अपितु गहन संवेदात्मक सत्य है-

"भौर तें साँझ लौ कानन-ओर,
निहारति बावरी नैकु न हारति.
साँझ ते भोर लौं तारनि ताकिबो,
तारनि सों इकतार न टारति.
जौ कहुं भावतो दीठि परै,
घनानंद आँसुनि औसर गारति."

यहाँ प्रेमानुभूति की सहज अभिव्यक्ति के परिप्रेक्ष्य में घनानंद स्पष्ट करते हैं कि नायिका सुबह से शाम तक तथा शाम से सुबह तक वन को बावली के समान निहारती रहती है. इस प्रतीक्षा के क्रम में वह एक बार भी पलकें नहीं झपकाती है. और जो कुछ उसे भाता दिखाई पड़ता है, उसके समक्ष अपने आँसुओं को गिराकर स्नेह प्रकट करती है. घनानंद यहाँ पर जिस प्रकार के वियोग भाव पक्ष को नायिका द्वारा प्रकृति के माध्यम से चित्रित करते हैं, वह अत्यंत सजीव दिखाई पड़ता है.

अतः यह स्पष्ट दिखाई देता है कि घनानंद रीतिकालीन परंपरा की विलासिता से भिन्न वातावरण में प्रेम की एक सच्ची अनुभूति तथा नायिका के रूप की सहज अभिव्यक्ति करने वाले रीतिमुक्त कवि हैं. जिनका प्रेम केवल कल्पना नहीं बल्कि वास्तविक जीवन के अनुभवों से उत्पन्न है. जहाँ प्रेमानुभूति की मार्मिकता तथा संवेदनशीलता अत्यंत प्रभावशाली रूप में दिखाई देती है.

14.8 घनानंद के कवित्तों में भक्ति भावना

भक्ति का अर्थ है सेवा भाव. यह भज् धातु से उत्पन्न शब्द है. इसमें ईश्वर के प्रति जीवों की सेवा भावना का साकार-निराकार अर्थात सगुण-निर्गुण रूप विद्यमान है. भक्ति की अवधारणा में वर्ग-विभाजन की दृष्टि से स्मरण, पूजा-अर्चना, प्रेम-अनुराग, विरक्त भाव तथा आरती वंदना आदि का दर्शन मिलता है. अतः स्पष्ट है कि ईश्वर के प्रति भक्ति की भावना अत्यंत गहन और संवेदनशील है. जिसकी कुशल अभिव्यक्ति रीतिकालीन परंपरा के रीतिमुक्त कवि घनानंद के कवित्तों में भली-भांति हुई है. घनानंद अपने जीवन में प्रेम की असफलता के कारण विरक्त भाव से राधा-कृष्ण के उपासक बनकर वृंदावन चले गये. यहीं अपने जीवन की अंतिम श्वास तक वे संसार से विरक्त होकर आराधना-भक्ति करते रहे. इस संदर्भ में रघुवर सिंह ने घनानंद को बड़ा कृष्ण भक्त माना है तथा उन्हें 'कृष्ण स्नेही' की उपाधि प्रदान की है. लाला भगवानदीन ने घनानंद को सखी सम्प्रदाय तथा आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इन्हें निम्बार्क संप्रदाय से संबद्ध माना है. घनानंद के कवित्तों में इनकी भक्ति-भावना दास्य, वात्सल्य तथा गहन श्रद्धा भाव में प्रकट हुई है. घनानंद की भक्ति भावना में अधिकतर राधा-कृष्ण के श्रृंगारपरक चित्रण विद्यमान हैं. इस संदर्भ में वृंदावन की शोभा का वर्णन दर्शनीय है-

'जमुख्रना देख्रे ही दुख्र भाजै.
इन्द्रनील मनि इन्दीवर दलहू की उपमा लाजै.
सब सुख्र रासि रसामृत-सींवा वृन्दावन में राजै.
आनंदघन ब्रजमोन पीव के अंग रंग यंग रंग साजै.'

यहाँ घनानंद यमुखना नदी के प्रकृतिपूर्ण वातावरण में वियोग शृंगार का वर्णन करते हैं. वे बताते हैं कि यमुना देखकर दुःख होता है क्योंकि राधा-कृष्ण के संयोग दर्शन से वे वंचित हैं. जिस वृंदावन में रास के रूप में रस और अमृतमय आनंद संचित है, उसी ब्रजभूमि की नीरवता से घनानंद व्यथित दिखाई देते हैं और वे अपने प्रिय को अपने ही रंग में रंजित करना चाहते हैं. घनानंद वात्सल्य भक्ति से अभिभूत होकर राधा-कृष्ण की आराधना करते हैं, यशोदा उमंग में कृष्ण की आरती उतारते हुए उन पर वारने की बात कहती हैं. वन से गायें घर आ चुकी हैं पर उनका पुत्र नहीं आया है. इस कारण कृष्ण के आने पर यशोदा अपने आँचल से उनका मुख पोछती हैं और प्रेम बरसाते हुए उनकी बलाएँ स्वयं ले लेती हैं. वात्सल्य भक्ति से पूर्ण भाव का वर्णन द्रष्टव्य है -

'जसोमति आरती उतारै उमगि आपनौ ज्यौं वारे,
चित चढ़ी रही ललन की वन तें गोचन लै घर आवनि.
अति आरति सौं बदन निहाटे.
बलाय आँचर मुख पोंछति प्रेम पुचकारीन बरसति प्यारे.'

फलतः यशोदा और कृष्ण के माता-पुत्र प्रेम के वर्णन में घनानंद जिस प्रकार की तल्लीनता प्रकट करते हैं, वह उनके भक्ति की सौ फीसदी सचेत चेतना को सिद्ध करता है. वहीं वात्सल्य भाव का ऐसा दर्शन केवल सूरदास के काव्य में ही दर्शनीय है. रीतिकालीन कवियों की परंपरा में पद्माकर, केशवदास तथा बिहारीलाल आदि कवियों ने जिस प्रकार का राधा-कृष्ण का वर्णन अपने काव्य में किया है, वह घनानंद की तुलना में कम ठहरता है. अतः यह स्पष्ट है कि रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य की तुलना में रीतिमुक्त काव्य ही भक्ति-भावना को दर्शाने में प्रासंगिक सिद्ध हुआ है. जिसके प्रतिनिधि कवि घनानंद हैं. कुछ विद्वानों ने सूफी दर्शन का प्रवाह घनानंद के भक्तिभाव पूर्ण कवित्तों में अनुभव किया है. यद्यपि प्रेम में विरक्ति भाव के प्रस्फुटन से यह अनुभव दर्शनीय है. सुजान नामक नायिका से प्रेम और उसमें प्राप्त विफलता से उनमें जो भक्ति भावना प्रकट हुई उसका विस्तार राधा-कृष्ण की प्रेम-आराधना द्वारा दिखाई पड़ता है.

अंततः स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि सुजान विशेषण का घनानंद ने अपने कवित्तों में प्रयोग कृपानिधान कृष्ण के संदर्भ में किया है. और ईश्वरीय स्तुति के लिए वे परमात्मा को स्त्री रूप में स्मरण करते हैं. जो आंशिक रूप में सूफी दर्शन की अनुभूति करता है. कठिन परिस्थितियों में घनानंद के प्रेम का उदात्त रूप स्पष्ट रूप से प्रकट होता है. जो सांसारिक विरक्ता के उपरांत भी उन्हें कृष्ण भक्त कवियों की श्रेणी में श्रेष्ठ बनाता है.

1.4.9. घनानंद के कवित्तों का काव्य सौष्ठव

काव्य सौष्ठव से अभिप्राय काव्य के शिल्प एवं सौंदर्य अर्थात् बाह्य स्वरूप तथा भाव सौंदर्य यानी आंतरिक तत्त्व से है. शिल्प पक्ष के अन्तर्गत भाषा-शैली, छंद, लय, बिम्ब, प्रतीक, काव्य गुण, अलंकार तथा रस आदि तत्त्वों का समावेश होता है. वहीं काव्य के सौंदर्य पक्ष में इसके परिवेशगत व्यवहार, विषय-वस्तुगत पृष्ठभूमि आधृत शब्दों-बोलियों की प्रभावोत्पादकता तथा पठनीय रुचिपरकता सम्मिलित होती है. जबकि काव्य के भाव पक्ष में लेखक की आंतरिक चेतना का व्यापार सन्निहित होता है. जिसके अंतर्गत कल्पना, सृजनात्मकता, प्रेम-करुणा आदि की संवेदना, बुद्धि, भाव, शैली तथा मनोवेगों की आकर्षक अभिव्यक्ति होती है. अंततः काव्य सौष्ठव काव्य रचना की सर्वांगीण विकासपूर्ण अभिव्यक्ति है. जो रचनाकार की प्रज्ञा, बुद्धि बल, अनुभवों-अनुभूतियों तथा कला-कौशल पर आधृत होती है. घनानंद इस परिप्रेक्ष्य में रीतिमुक्त कवियों में अप्रतिम हैं. जिन्होंने रीतिकालीन परंपरा से हटकर स्वच्छंद एवं मुक्त रूप में काव्य लेखन किया. काव्य के कला-पक्ष का ज्ञान प्रायः सभी कवियों के लिए अपेक्षित है किंतु

इस ज्ञान के साथ काव्यशास्त्रीय विधानों की बद्धता को चुनौती देकर घनानंद ने भक्तिभाव पूर्ण किन्तु श्रृंगारपूर्ण छंद लि हैं. घनानंद यद्यपि रीतिमुक्त कवि हैं सकतु वे काव्य सौष्ठव के प्रति सजग हैं. भावाभिव्यक्ति, अलंकार, उक्तिवैचित्र्य, छंद के साथ-साथ बुंदेली व उर्दू-फारसी के शब्दों का प्रयोग घनानंद के कवितों में सहज रूप में दर्शनीय हैं. इनके कवित्तों के लोकरंजित चित्र आम जनमानस के समक्ष सरतलम् रूप में आते हैं. घनानंद के कवित्त में इनकी सहज-सरल अभिव्यक्ति का उदाहरण देखे तो -

'अति सुगन्ध मलयज धनसार विलास,
कुसुम जल सौं छिर काच.
उसीर सरन बैठे मदन मोहन संग लै,
राधा प्रान प्यारी रति रंगनि.'
तथा
'कैसे धीरज रहै हाय हमैं,
मुखरली ध्वनि बौरावै हो.'

यहाँ पर घनानंद ने राधा-कृष्ण की श्रृंगारपरक भक्ति-भाव पूर्ण अभिव्यक्ति सरल व बोधगम्य रूप में की है. वे यह बतलाते हैं सुगंधपूर्ण पुष्प जल के छिड़काव के बीच कृष्ण व राधा का मधुरतम् प्रेमरंग दिखाई पड़ता है. ऐसे मनोहर दृश्य को देखकर भला कौन भक्त स्वयं को संभाल पाएगा और मुरली की मधुर ध्वनि सुनकर कौन अपने धैर्य को बनाए रख सकेगा ? यहाँ पर घनानंद ने उक्ति-वैचित्र्यपूर्ण, मुहावरेदार शैली, भाव पक्ष में शृंगार व भक्तिभावना तथा अलंकारों का प्रयोग किया है. इसी प्रसंग के संदर्भ में घनानंद के कवित्तों का काव्य सौष्ठव की दृष्टि से वर्ण्य-विषय का बोध करें तो घनानंद यमुना नदी के किनारे कृष्ण-राधा के रास-गान का वर्णन करते लिखते हैं -

'जमुना तीर वा नीर कुंज,
मंजु त्रिविधि पवन सुख पुंज.
परसि रोमांच होत छबीले अंगनि,
वृंदावन सम्पत्ति दम्पति हुलसत विलसत,
ऐसे अपनी भरि भरि उमंगनि.
आनंद घन अभिलाष भरे भीजे संगम,
रस सागर की अतुल तरंगनि.'

घनानंद चित्रित करते हैं कि यमुना नदी के किनारे, जल विहार व वन के तीन विधि सुखानुभूति पूर्ण पवन के झोंको और भीगे बदन व छबीले अंग से बोर, वृंदावन दम्पत्ति के उल्लासी व अतिरंजित उमंगों से पूर्ण राधा-कृष्ण की छवि आकांक्षाओं-उमंगों को भरने वाली है. घनानंद अपनी इस अभिलाषा को राधा-कृष्ण के भीगे संगम को रस सागर की अतुलनीय तरंगों के समान मानते हैं. अतः यहाँ पर घनानंद के काव्य सौष्ठव के अंतर्गत राधा-कृष्ण के संयोग पक्ष, प्रेमानुभूति, शृंगार भाव, लोकरंजित प्रकृति चित्रण आदि रूपों में उद्घाटन होता है. जिसमें घनानंद ने अपने आंतरिक उद्‌गारों एवं ब्रजभाषा की सहजता के माध्यम से राधा-कृष्ण का शृंगारपरक नायक-नायिका के रूप में अत्यंत सजीव और भावपूर्ण चित्रण प्रस्तुत किया है. जो घनानंद की कल्पनाशीलता, सृजनात्मकता, लोकजीवन के वर्ण्य-विषयों की जीवंतता तथा जनभाषा के प्रति उनकी गहरी रुचि और आत्मीयता का परिचायक है.

वस्तुतः घनानंद रीतिमुक्त धारा के एक प्रतिष्ठित कवि हैं. जिनकी कला-सौष्ठवगत अभिव्यक्ति भी महत्त्वपूर्ण है. उनके कवित्तों में बिम्ब, प्रतीक, छंद, रस, अलंकार तथा शब्द-शक्तियों का सुसंगठित और प्रभावपूर्ण प्रयोग ब्रजभाषा के माध्यम से अत्यंत आकर्षक रूप में हुआ है.

14.10. सार बिंदु

- रीतिकाल हिंदी साहित्य तीन वर्गों में विभाजित है- (1) रीतिबद्ध, (2) रीतिसिद्ध तथा (3) रीतिमुक्त. घनानंद रीतिमुक्त काव्य के प्रमुख कवि हैं.
- घनानंद के कवित्तों में राधा-कृष्ण के प्रति अगाध भक्तिपूर्ण श्रृंगार का चित्रण मिलता है. घनानंद के कवित्तों में संयोग तथा वियोग दोनों पक्ष विद्यमान हैं किंतु वियोग पक्ष अधिक प्रभावी और प्रमुख रूप से अभिव्यक्त हुआ है.
- 'सुजान' मुगलकाल में मुहम्मद शाह रंगीला के दरबार में नर्तकी थी. वहीं घनानंद भी कवि रूप में विद्यमान थे. उनका सुजान के प्रति अगाध प्रेम था किंतु उनका प्रेम असफल रहा और उनमें विरक्ति भाव उत्पन्न हुआ.
- सुजान के प्रति घनानंद का अगाध प्रेम उन्हें 'प्रेम का पीर' कवि के रूप में प्रतिष्ठित करता है. यद्यपि आजीवन सुजान में उनकी विरक्ति भावना ने उन्हें वेदना के कष्ट से पीड़ित किया. जो उनके कवित्तों द्वारा उद्घाटित है.
- घनानंद के काव्य में प्रेमानुभूति का अत्यंत स्पष्ट और गहरा दर्शन मिलता है. जो वृंदावन में प्रवास के दौरान उन्होंने अपने कवित्तों में प्रकट किया है. उन्होंने ब्रजभाषा में काव्यशास्त्रीय विधानों की चिंता किये बिना आम जनमानस को राधा-कृष्ण के रूप में नायक-नायिका के प्रेमपरक प्रसंग द्वारा उल्लिखित किया है.
- घनानंद के काव्य में बाह्यडंबर, चमत्कार या कृत्रिम भाषा का प्रयोग नहीं मिलता है. उन्होंने सामान्य जीवन, परिवेश तथा प्रकृति का सहज और प्रभावी चित्रण किया है.
- घनानंद का रीतिकालीन काव्यधारा में महत्वपूर्ण स्थान है. वे प्रेम की विरहानुभूति के विशुद्ध कवि माने जाते हैं. इनकी दृष्टि में प्रेम का मार्ग सीधा व सहज है. उसमें बुद्धि, छल-कपट या बांकापन नहीं होता है. बल्कि वहाँ हृदय की संवेदनात्मक भावों का तीव्रावेग होता है. प्रेम इन्द्रियता के अनुभव से कहीं आगे सूक्ष्म अन्तः साधना की अनुभूति तथा मनोव्यापार है.
- घनानंद में व्यक्तिकता की प्रधानता है. वे अपने कवित्तों में स्वानुभूति प्रकट करते हैं. रामधारी सिंह दिनकर इनके संदर्भ में लिखते हैं कि वे दूसरों के लिए किराए पर अश्रु वालों के बीच अपनी पीड़ा को रोकर प्रकट करने वाले कवि हैं.
- घनानंद के कवित्तों में विषय-वस्तु तथा वर्ण्य-विषय की दृष्टि से रीतिमुक्त परंपरा का सुंदर उदाहरण मिलता है. किंतु इससे कदापि यह आशय नहीं है कि घनानंद ने काव्य सौष्ठव व भाषा-शैली को लेकर लेखन कार्य नहीं किया है. इनके कवित्तों में रीतिकाव्य की परंपरा बद्धता का विरोध है तथा फारसी शैली का प्रयोग मिलता है. उर्दू फारसी के अनेक शब्दों, अलंकारों, बिम्बों, प्रतीकों तथा दृश्यात्मक भाषा का कुशल प्रयोग इनके कवित्तों में मिलता है.
- कला-कौशल की दृष्टि से घनानंद की काव्य लेखनी में मुहावरों, लोकोक्तियों, लोक जीवन के रूपकों तथा भाषा शैली में बुंदेली तथा तत्कालीन दरबारी रीति के फारसी शब्दों के प्रयोग स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं. यद्यपि घनानंद में विरक्त होने के उपरांत दरबार छोड़ कर ब्रजभूमि चले गए और वहीं नादिरशाह के सिपाहियों द्वारा इनकी हत्या हुई.
- घनानंद प्रेम की वेदनात्मक अनुभूति के कवि हैं. इनकी रचनाओं में विरह की पीड़ा तथा मानवीय संवेदनाओं का अत्यंत मार्मिक चित्रण मिलता है. ये नायिका के नखशिख कामुक रूप-सौंदर्य का अश्लील अथवा विलासी चित्रण करने वाले रीतिबद्ध कवि नहीं

हैं. बल्कि घनानंद विशुद्ध 'प्रेम के पीर' के कवि हैं.

- घनानंद के कवित्तों में भावपक्ष तथा सौंदर्य पक्ष का प्रभावी वर्णन हुआ है. किंतु घनानंद कला-सौष्ठव की दृष्टि से उतने उन्मुख नहीं हुए हैं जितने कि भाव पक्ष से. इनकी भावपरकता में वेदना, प्रेमानुभूति, भक्ति भावना तथा लोकजीवन का उन्नत दृश्य दिखाई पड़ता है.

14.11. परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

- विस्तृत उत्तर वाले प्रश्न

1. घनानंद के कवित्तों के आधार पर रीतिकालीन काव्य की विशेषताएं बताइये.
2. रीतिकालीन काव्य का स्वरुप बताते हुए घनानंद का स्थान निर्धारण कीजिए.
3. घनानंद के कवित्तों में वेदना के स्वर को स्पष्ट करते हुए इनकी प्रेमानुभूति का उल्लेख कीजिये.

टिप्पणी

1. घनानंद की विरह-वेदना पर प्रकाश डालिए.
2. घनानंद के कवित्तों में प्रेम तत्त्व का पक्ष उल्लिखित कीजिये.
3. घनानंद की भक्ति भावना को प्रकाशित कीजिये.
4. घनानंद के कवित्तों में काव्य सौन्दर्य को स्पष्ट कीजिये.
5. रीतिमुक्त कवि के रूप में घनानंद का स्थान निर्धारण कीजिये.
6. घनानंद के कवित्तों में शृंगार पक्ष को उजागर कीजिये.

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. घनानंद इनमें से किस प्रकार के कवि हैं?

   1. रीति मुक्त 2. रीति सिद्ध 3. रीति बद्ध 4. इनमें से कोई नहीं

2. घनानंद इनमें से किस मुगल शासक के दरबार में नियुक्त थे?

   1. नादिर शाह 2. मुहम्मद शाह रंगीला
   3. अहमदशाह 4. शाहजहाँ

3. प्रेम के पीर कवि रूप में कौन प्रसिद्ध हैं?

   1. पद्माकर 2. मतिराम 3. देव 4. घनानंद

4. घनानंद के काव्य में शृंगार के किस पक्ष की अतिशय अधिक अभिव्यक्ति दिखाई पड़ती है?

   1. संयोग 2. वियोग 3. दोनों 4. इनमें से कोई नहीं

5. घनानंद की प्रेमिका का क्या नाम था?

   1. अनुसुइया 2. मस्तानी 3. सुजान 4. माल बाई

6. घनानंद की भक्ति भावना में किस प्रकार के दर्शन की अनुभूति होती है?

   1. जैन दर्शन 2. शैव दर्शन 3. सूफी दर्शन 4. बौद्ध दर्शन

7. घनानंद के कवित्तों में किस त्यौहार का वर्णन मिलता है?

1. रक्षाबंधन 2. दशहरा 3. होली 4. दिवाली

8. घनानंद के कवित्तों में ब्रजभाषा के अतिरिक्त अन्य किस भाषा के शब्द दर्शनीय हैं?

1. अरबी-फ़ारसी 2. बघेली-छत्तीसगढ़ी 3. पश्तो-पख्तो 4. पंजाबी-सिन्धी

9. घनानंद के कवित्तों की भाषा क्या है?

1. अवधी 2. ब्रजभाषा 3. मैथिली 4. भोजपुरी

10. घनानंद किसके उपासक हैं?

1. राम 2. विष्णु 3. कृष्ण 4. शिव

14.11 उपयोगी अध्ययन सामग्री

- **पुस्तकों के नाम**

1. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, घनानंद-कवित्त, वाणी वितान प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण-20147
2. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (संपा.), सुजान हित सटीक, अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2000
3. मनोहर लाल गौर, घनानंद और स्वच्छंद काव्यधारा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संस्करण-14962
4. रामदेव शुक्ल, घनानंद का शृंगार काव्य, मैकमिलन कंपनी ऑफ़ इंडिया, नई दिल्ली, संस्करण-14975
5. रामदेव शुक्ल, घनानंद का काव्य, मैकमिलन कंपनी ऑफ़ इंडिया, नई दिल्ली, संस्करण-14976

वेबसाईट संदर्भ

1. https://www.hindwi.org/poets/ghananand/kavitt
2. https://leverageedu.com/blog/hi/ghananand-ka-jivan-parichay/
3. https://bharatdiscovery.org/india/%E0%A4%98%E0%A4%be%E -%A4%A8%E0%A4%A8%E-%A5%8D%E0%A4%A6#googel_vignette
4. htttps://store.hindisahity.com/ghananand-ke-kavya-ki- visheshtaen/

“Jyotirmay” Parisar,
Dr. BAOU Marg, Sarkhej-Gandhinagar Highway, Chharodi Ahmedabad - 382481
Email : hindi@baou.edu.in । Website : www.baou.edu.in

बी. ए. (ऑनर्स)

हिंदी मेजर

HNDMJ-201

आदि एवं मध्यकालीन कविता

कृपया यह प्रतिपुष्टि (Feedback) फॉर्म भरकर उपर्युक्त पते पर ‘हिंदी विभाग, स्कूल ऑफ ह्यूमैनिटीज़ एंड सोशल साइंसेज़’ के नाम अवश्य भेज दें. आपकी अमूल्य राय आपको दी जाने वाली स्वाध्याय सामग्री की गुणवत्ता बढ़ाने में सहायक होगी. यदि आप चाहें तो अपनी पहचान गुप्त रख सकते हैं, यानी नीचे ‘नाम’ और ‘एनरोलमेंट नंबर’ देना आवश्यक नहीं है. अन्य सभी कॉलम अवश्य भरें.

नाम : _____ **एनरोलमेंट नंबर :** _____

लिंग : स्त्री ☐ **पुरुष** ☐ **ट्रांसजेंडर** ☐ **आयु वर्ग : 18-30** ☐ **31-40** ☐ **41-50** ☐ **50 से ऊपर** ☐

नागरिकता : प्रदेश _____ **देश** _____

प्रवेश वर्ष : _____ **आजिविका के लिए कार्यरत : हाँ** ☐ **नहीं** ☐

कृपया अपनी राय नीचे दिए गए बिंदुओं के सामने सही खाने में सही (✓) का निशान लगाकर दें.
{अ–अच्छा, सा–सामान्य, ख–ख़राब}

	इकाई 1			इकाई 2			इकाई 3			इकाई 4		
	अ	सा	ख	अ	सा	ख	अ	सा	ख	अ	सा	ख
अध्ययन सामग्री पर्याप्त है.												
भाषा सरल है.												
विषय अच्छी तरह समझाती है.												
आपके ज्ञान और कौशल को बढ़ाती है.												
इकाई के अंत में सारबिंदु अध्ययन दुहराने के लिए उपयोगी सिद्ध हुए हैं.												
स्वमूल्यांकन के लिए पर्याप्त प्रश्नों का समावेश है.												
परीक्षोपयोगी प्रश्न पर्याप्त हैं.												
अध्ययन सामग्री उपयोगी सिद्ध हुई है.												

आपकी सलाह या सूचना (यदि कोई हो तो) _____

	इकाई 5			इकाई 6			इकाई 7			इकाई 8		
	अ	सा	ख	अ	सा	ख	अ	सा	ख	अ	सा	ख
अध्ययन सामग्री पर्याप्त है.												
भाषा सरल है.												
विषय अच्छी तरह समझाती है.												
आपके ज्ञान और कौशल को बढ़ाती है.												
इकाई के अंत में सारबिंदु अध्ययन दुहराने के लिए उपयोगी सिद्ध हुए हैं.												
स्वमूल्यांकन के लिए पर्याप्त प्रश्नों का समावेश है.												
परीक्षोपयोगी प्रश्न पर्याप्त हैं.												
अध्ययन सामग्री उपयोगी सिद्ध हुई है.												

	इकाई 9			इकाई 10			इकाई 11			इकाई 12		
	अ	सा	ख	अ	सा	ख	अ	सा	ख	अ	सा	ख
अध्ययन सामग्री पर्याप्त है.												
भाषा सरल है.												
विषय अच्छी तरह समझाती है.												
आपके ज्ञान और कौशल को बढ़ाती है.												
इकाई के अंत में सारबिंदु अध्ययन दुहराने के लिए उपयोगी सिद्ध हुए हैं.												
स्वमूल्यांकन के लिए पर्याप्त प्रश्नों का समावेश है.												
परीक्षोपयोगी प्रश्न पर्याप्त हैं.												
अध्ययन सामग्री उपयोगी सिद्ध हुई है.												

आपकी सलाह या सूचना (यदि कोई हो तो) _____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

	इकाई 13			इकाई 14		
	अ	सा	ख	अ	सा	ख
अध्ययन सामग्री पर्याप्त है.						
भाषा सरल है.						
विषय अच्छी तरह समझाती है.						
आपके ज्ञान और कौशल को बढ़ाती है.						
इकाई के अंत में सारबिंदु अध्ययन दुहराने के लिए उपयोगी सिद्ध हुए हैं.						
स्वमूल्यांकन के लिए पर्याप्त प्रश्नों का समावेश है.						
परीक्षोपयोगी प्रश्न पर्याप्त हैं.						
अध्ययन सामग्री उपयोगी सिद्ध हुई है.						

आपकी सलाह या सूचना (यदि कोई हो तो) _____

BAOU
Education for All

યુનિવર્સિટી ગીત

સ્વાધ્યાયઃ પરમં તપઃ
સ્વાધ્યાયઃ પરમં તપઃ
સ્વાધ્યાયઃ પરમં તપઃ

શિક્ષણ, સંસ્કૃતિ, સદ્‌ભાવ, દિવ્યબોધનું ધામ
ડૉ. બાબાસાહેબ આંબેડકર ઓપન યુનિવર્સિટી નામ;
સૌને સૌની પાંખ મળે, ને સૌને સૌનું આભ,
દશે દિશામાં સ્મિત વહે હો દશે દિશે શુભ-લાભ.

અભણ રહી અજ્ઞાનના શાને, અંધકારને પીવો ?
કહે બુદ્ધ આંબેડકર કહે, તું થા તારો દીવો;
શારદીય અજવાળા પહોંચ્યાં ગુર્જર ગામે ગામ
ધ્રુવ તારકની જેમ ઝળહળે એકલવ્યની શાન.

સરસ્વતીના મયૂર તમારે ફળિયે આવી ગહેકે
અંધકારને હડસેલીને ઉજાસના ફૂલ મહેંકે;
બંધન નહીં કો સ્થાન સમયના જવું ન ઘરથી દૂર
ઘર આવી મા હરે શારદા દૈન્ય તિમિરના પૂર.

સંસ્કારોની સુગંધ મહેંકે, મન મંદિરને ધામે
સુખની ટપાલ પહોંચે સૌને પોતાને સરનામે;
સમાજ કેરે દરિયે હાંકી શિક્ષણ કેરું વહાણ,
આવો કરીયે આપણ સૌ
ભવ્ય રાષ્ટ્ર નિર્માણ...
દિવ્ય રાષ્ટ્ર નિર્માણ...
ભવ્ય રાષ્ટ્ર નિર્માણ

DR. BABASAHEB AMBEDKAR OPEN UNIVERSITY
(Established by Government of Gujarat)
'Jyotirmay' Parisar,
Sarkhej-Gandhinagar Highway, Chharodi, Ahmedabad-382 481
Website : www.baou.edu.in

9789355984890